आई.एस.एस.एन. 0975-4083

रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

PEER-REVIEWED RESEARCH JOURNAL
UGC JOURNAL NO. (OLD) 2138, IMPACT FACTOR 4.875
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक-20, हिन्दी संस्करण, वर्ष-10, मार्च 2021

2021

www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0975-4083

रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal

UGC Journal No. (Old) 2138
Impact Factor 4.875
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715204

अंक-20 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-10 | मार्च 2021

प्रोफेसर ब्रजगोपाल
प्रधान सम्पादक
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

डॉ. अखिलेश शुक्ल
ऑनरेरी सम्पादक
प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल
अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका

Experts & Members of Advisory Board

- Prof. Hemanta Saikia, Assistant Professor, Department of Rural Development,Debraj Roy College, Circuit House Road, Golaghat, Assam, India.Pin-785621
  jio84hemant@gmail.com
- Dr. K. S. Tiwari, Professor, Regional Director, Regional Centre Bhopal, IGNOU, Bhopal
  kripashankar19954@gmail.com
- Dr. Puran Mal Yadav, Department of Sociology, Mohan Lal Sukhadia University
  UDAIPUR – 313001 (Rajasthan)
  pnyadav1964@gmail.com
- Dr. Ram Shankar. Professor of Political Science, RDWVV Jabalpur University, (M.P.)
  rs_dubey@yahoo.com
- Prof. Anjali Bahuguna, Department of Economics, School of Humanities and Social Sciences (SHSS),, HNB Garhwal University, (A Central University), Srinagar-246174 (Garhwal)
  anjali shss@gmail.com
- Dr. Sanjay Shankar Mishra, Professor of Commerce, Govt. TRS PG College, Rewa (M.P.)
  ssm6262@yahoo.com
- Dr. Pramila Shrivastava, Associate Professor, Department of Economics, Govt. Arts College Kota (Raj),
  dr21pramila@gmail.com
- Dr Alka Saxena, D. B. S. College, Kanpur (U.P.)
  alknasexna65@yahoo.com
- Dr. Deepak Pachpore, Journalist
  deepakpachpore@gmail.com
- Dr. C. M. Shukla, Professor of History Government Maharaja College, Chhatarpur District Chhatarpur(M.P.),
  rajan.19shukla@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ आर्टस एण्ड मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेज (ISSN-0975-4083) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च तथा सितंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस. एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका Peer-Reviewed हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।

  शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक,
- मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010(फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
- **researchjournal.journal@gmail.com**
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00	-सदस्यता शुल्क -	
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय, नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: लीनेज ऑफसेट
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)
E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com
www.researchjournal.in
दूरभाष - 7974781746

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

भारत अनेक वर्षों तक गुलाम रहा है और ज्ञात और अज्ञात स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के त्याग और बलिदान के कारण हमें आजादी प्राप्त हुई है। भारतीय स्वोतंत्रता संग्राम की लड़ाई सन 1857 से 1947 तक चली। भारत में विभिन्न जातियों और विभिन्न संस्कृतियों के लोग आए और यही रच बस गए हैं। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है–

हेथाय आर्य हेथाय अनार्य, हेथाय द्राविड़ चीन,
शक हूण दल पाठान मुगल, एक देहे होलो लीन।

अर्थात् विभिन्न जातियाँ अपने अस्तित्व को विस्मृत कर मुख्यधारा में शामिल होती चली गईं। अंत में ब्रिटिश लोग आए और उन्हों ने लगभग 200 साल तक भारत पर शासन किया। वर्ष 1757 ने प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिशजनों ने भारत पर राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया। देश की आजादी के 75 साल पूरे होने जा रहे हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए 75वीं वर्षगांठ के कार्यक्रमों की शुरुआत भारत सरकार और प्रदेश सरकारों ने की है। आजादी के अमृत महोत्सव का यह कार्यक्रम 15 अगस्त 2023 तक चलेगा।

अहमदाबाद में स्थित साबरमती आश्रम से आजादी महोत्सव की शुरुआत हो गई है। इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने देश की जनता को संबोधित करते हुए कहा कि, आज जब मैं सुबह दिल्ली से निकला तो बहुत ही अद्‌भुद संयोग हुआ। अमृत महोत्सव के प्रारंभ होने से पहले आज देश की राजधानी में अमृत वर्षा भी हुई और वरुण देव ने आशीर्वाद भी दिया। ये हम सभी का सौभाग्य है कि हम आजाद भारत के इस ऐतिहासिक कालखंड के साक्षी बन रहे हैं। आज दांडी यात्रा की वर्षगांठ पर हम बापू की इस कर्मस्थली पर इतिहास बनते भी देख रहे हैं और इतिहास का हिस्सा भी बन रहे हैं। आज आजादी के अमृत महोत्सव का प्रारंभ हो रहा है, पहला दिन है। हमारे यहां मान्यता है कि जब कभी ऐसा अवसर आता है तब सारे तीर्थों का एक साथ संगम हो जाता है। आज एक राष्ट्र के रूप में भारत के लिए भी ऐसा ही पवित्र अवसर है। आज हमारे स्वाधीनता संग्राम के कितने ही पुण्यतीर्थ, कितने ही पवित्र केंद्र, साबरमती आश्रम से जुड़ रहे हैं।

महात्मा गांधी 1915 ई. से 1919 ई. तक देश के सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन में अंग्रेजी सरकार के एक सहयोगी के रूप में ही कार्य करते रहे, किंतु 1920 ई. में गांधीजी के राजनीतिक जीवन में एक परिवर्तनकारी मोड़ आया। कुछ घटनाओं और अन्य परिस्थितियों ने उन्हें सहयोगी से असहयोगी बना दिया। सितम्बर 1920 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने सरकार के साथ असहयोग और मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत निर्मित व्यवस्थापिका सभाओं के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। आन्दोलन शुरू करने से पहले गांधी जी ने कैसर–ए–हिन्द पुरस्कार को लौटा दिया, अन्य सैकड़ों लोगों ने भी गांधी जी के पदचिह्नों पर चलते हुए अपनी पदवियों एवं उपाधियों को त्याग दिया। राय बहादुर की उपाधि से सम्मानित जमनालाल बजाज ने भी यह उपाधि वापस कर दी। असहयोग आन्दोलन गांधी जी ने 1 अगस्त, 1920 को आरम्भ किया। पश्चिमी भारत, बंगाल तथा उत्तरी भारत में असहयोग आन्दोलन को अभूतपूर्व सफलता मिली। विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए अनेक शिक्षण संस्थाएँ जैसे काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बनारस विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ एवं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय आदि स्थापित की गईं।

आर्थिक दुर्दशा, राजनीतिक असंतोष और सकार के तीव्र दमनचक्र के कारण देश का वातावरण उग्र हो गया था, जिसमे स्वाधीनता प्राप्ति के लिए कोई नया कदम उठाना आवश्यक हो गया था यह कदम था- सविनय अवज्ञा। 12 मार्च, 1930 ई. को प्रातः 6 बजकर 30 मिनट में गाँधीजी ने नमक कानून तोड़ने के उद्देश्य से अपने चुने हुए 79 साथियों को लेकर गुजरात के समुद्र तट पर स्थित दाण्डी नामक गांव को प्रस्थान किया और 6 अप्रैल को उन्होंने दाण्डी समुद्र तट पर स्वयं नमक कानून का उल्लंघन कर सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। गाँधी जी के इस कार्य से देश भर में अपूर्व उत्साह आरै जोश की लहर फैल गई । स्थान-स्थान पर नमक बनाकर ब्रिटिश कानून की धज्जियाँ उड़ाई गयीं।

भारत छोड़ो आंदोलन की एक विशेषता यह थी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्य सभी प्रमुख नेता जेलों मे बंद थे। अतः इसे समाजवादियों तथा नौजवानों के नेतृत्व ने सफलतापूर्वक चलाया जिसने यह सिद्ध कर दिया कि भारत अब जाग गया है। अब इसे स्वतंत्र होने से नही रोका जा सकता। 200 साल तक अंग्रेजों का गुलाम रहने के बाद भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली थी।

भारत की स्वतंत्रता अनेक लोगों के त्याग और बलिदान के कारण प्राप्त हुई है, इसी त्याग और बलिदान के कारण हम राजनीतिक और मानसिक तौर पर आजाद हुए और हमारे लोगों के दिल और दिमाग में राष्ट्रीयता का विचार पैदा एवं मजबूत हुआ है। अगर ऐसा न होता, तो हम लोग अपनी जाति, समुदाय व धर्म आदि के आधार पर ही सोचते रह जाते। आज हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के त्याग और बलिदान का सम्मान करते हुए अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ते जाएं। हर व्यक्ति की जो जिम्मेदारी है, उस जिम्मेदारी को पूर्ण करें, परस्पर एक-दूसरे से प्रीति रखें तब हम वास्तव में भारत का असली विकास कर सकते हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने भी लिखा है

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

भारत के प्रत्येक नागरिक को यह प्रण लेना चाहिए तभी हम भारतीय संविधान एवं रामराज्य की संकल्पना को पूर्ण कर सकते हैं।

प्रोफेसर ब्रजगोपाल
प्रधान संपादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

01.	महिला पुलिसकर्मियों की समस्याओं का विश्लेषण (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन) **प्रियंका तिवारी** **अखिलेश शुक्ल**	09
02	छात्र – छात्राओं में मादक पदार्थों का सेवन, प्रभाव एवं समस्यायें (सागर नगर के महाविद्यालयों के विशेष संदर्भ में) **रश्मि दुबे**	15
03.	महिला सशक्तिकरण : चुनौतियाँ एवं अवसर **नीलम शर्मा** **बिन्नी खेड़ा**	20
04.	राजस्थान के जनजातीय समुदाय का सामाजिक–आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन का अध्ययन **विक्रम सिंह**	24
05.	महिला स्व सहायता समूह की कार्यप्रणाली का अध्ययन **चांदनी जायसवाल**	27
06.	सेलफोन का सामाजिक जीवन पर प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) **मधुलिका श्रीवास्तव** **राकेश तिवारी**	30
07.	वैदिक कालीन समाज में महिलाओं के अधिकार **नीरज गंगवार**	36
08.	लैंगिक असमानता **कैलाश सोलंकी**	45
9.	इमेनुअल कांट के राजनीतिक दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता **सुधा गुप्ता**	48
10.	छतरपुर जिले में पान कृषि की उत्पत्ति एवं विकास **नीना चौरसिया**	54
11.	बौद्ध साहित्य में वर्णित सामाजिक जन–जीवन में पर्यावरण **अनित्य गौरव** **अजय कुमार यादव**	58
12.	भारतीय सभ्यता के उत्थान में राजस्थान का योगदान **अविनाश कुमार**	64
13.	मराठों में 'कम्पू' व्यवस्था का आगमन **अंतिमा कनेरिया**	70
14.	गुप्तकालीन भारत में ताम्र निर्मित बुद्ध की महाप्रतिमा : एक ऐतिहासिक विमर्श **अमोल कुमार**	73
15.	गढ़वाल चित्रशैली का अद्‌भुत सौन्दर्य **निशा गुप्ता**	78
16	समाचार पत्र में विज्ञापन की भूमिका **अमित शुक्ल**	81

17.	छत्तीसगढ़ के युवा कवियों के समकालीन काव्य का स्वरूप **शैलेन्द्र कुमार ठाकुर** **कृष्णा चटर्जी, गिरिजा साह**	85
18.	शुभदा मिश्रा की कहानियों में नारी चेतना के आयाम **उर्मिला शुक्ला, मधुलता बारा, अपर्णा सिंह**	93
19.	ध्वनि की अवधारणा: एक अध्ययन **रामेश्वर पाण्डेय** **प्रज्ञा ओझा**	97
20.	छात्तीसगढ़ी लोकगीतों में अभिव्यक्त 'राम' का स्वरूप **श्रीदेवी चौबे** **ऋचा शुक्ला**	100
21.	उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रतिरोध में हिंदी उपन्यास **अनिता प्रजापत**	109
22.	महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ का शताब्दी वर्ष और प्रेमचन्द **निशा राठौर** **अभिषेक कुमार गुप्ता**	115
23.	दुष्चिंता, तनाव व विषाद को दूर करने में श्रीमद्भागवद्गीता की भूमिका **सुरभि मिश्रा**	118
24.	हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्रों की राजनीति में भूमिका **उर्मिला शुक्ल** **मधुलता बारा** **मल्लिका मिश्रा**	121
25.	छत्तीसगढ के समकालीन युवा कवि **शैलेन्द्र कुमार ठाकुर** **कृष्णा चटर्जी** **गिरिजा साह**	127
26.	साहित्य के उपकरण **मधुकर राठोड**	132
27.	"शिक्षा के अधिकार का मध्यप्रदेश के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में क्रियान्वयन :झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले के विशेष संदर्भ में" **माया रावत**	
28.	उच्च शिक्षा की चुनौतियॉ,समस्याएँ एवं निदान **सुशील कुमार मिश्रा**	139
29.	शिक्षा का निजीकरण-समाधान या समस्या **सिद्धार्थ मिश्रा**	153
30.	चयनात्मक प्राणायाम से छात्राओं के हीमोग्लोबीन के स्तर के प्रभाव का अध्ययन **वनिता चंद्रात्रे**	157
31	बिहार में बढ़ता कृषि उत्पादन एवं कृषि विकास की संभावनाए **शैलेन्द्र मालाकार**	164
32	बौद्ध धर्म में प्रतिमांकन **बृजेश स्वरूप कटियार**	169

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

महिला पुलिसकर्मियों की समस्याओं का विश्लेषण (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन)

• प्रियंका तिवारी
•• अखिलेश शुक्ल

सारांश- सारांश- कानून और व्यवस्था को बनाये रखने एवं नियंत्रित करने वाला संगठन पुलिस है। यह संगठन राज्य की अन्तरंग सरकार है। भाषा की दृष्टि से पुलिस शब्द ग्रीक शब्द पुलिटिया और समानार्थी लेटिन शब्द POLITIA से बना है। "POLITIA" से उत्पन्न शब्द पुलिस है। पुलिस शब्द से अभिप्राय है कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना। जनता की सुख-सुविधाओं, स्वास्थ्य नैतिक आचरण, सुरक्षा एवं समृद्धि की व्यवस्था करना आदि भी पुलिस की ही जिम्मेदारी है। जन-समूह के हित में शासन द्वारा निर्मित नीतियों एवं सिद्धान्तों को परिचालित करना भी पुलिस का ही कर्तव्य है। पुलिस का संस्कृत अनुवाद है, ''रक्षी'' (वह जो रक्षा करता हो)। रक्षी शब्द से ही आरक्षी (पुलिस) शब्द बना है। प्राचीन भारतीय साहित्य में समाज की सेवा एवं रक्षा करने वाले ऐसे बल का उल्लेख ग्रंथों एवं वेदों में मिलता है। आधुनिक समय में पुलिस संगठन नागरिक अधिकारियों का वह समूह है जिसका मुख्य कार्य शांति और व्यवस्था स्थापित करना, अपराधों की रोकथाम करना तथा कानूनों को लागू करना है।

मानव समाज में प्रारंभ से ही किसी न किसी प्रकार की चौकसी करने वाला संगठन अवश्य रहा होगा। यह भी माना जाता है कि प्रारंभिक समाज में यह संगठन अत्यंत सरल और सामान्य रहा होगा, किन्तु सभ्यता के विस्तार के साथ-साथ जैसे जनसंख्या बढ़ती गयी और आवागमन तथा संचार के साधनों का विकास हुआ वैसे ही वैसे यह संगठन तकनीकी और जटिल बनता गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में महिला पुलिस की समस्याओं का अध्ययन कर तथ्यों को जानने का प्रयास किया गया है

मुख्य शब्द- पुलिटिया, आरक्षी, शांति, व्यवस्था, वेतन, भत्ते, कर्तव्य

प्रस्तावना- वर्तमान समसामयिक समाज में अपराधों पर रोकथाम के लिए जनता महिला पुलिस से प्रभावी अपेक्षाएं रखने रखी है। गंभीर अपराधों को करने की दिशा में अब पुरुषों के साथ साथ महिलाओं का भी प्रतिशत बढ़ा है। आज महिलाएं भी गंभीर अपराध कार्य करने लगी है और नई नई तकनीक का प्रयोग भी करने लगी है। अपराधी महिलाओं से निपटने के लिए आज महिला पुलिस की आवश्यकता समाज में और ज्यादा प्रतीत होने लगी है। भारतीय पुलिस आयोग ने महिलाओं के प्रति अपराध और महिलाओं द्वारा किए जा रहे अपराध को रोकने की दिशा में महिला पुलिस की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण निरूपित किया है।[1] भारतीय पुलिस आयोग कि इस अनुशंसा को देखते हुए केंद्र शासित प्रदेशों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में महिला पुलिस कर्मियों की भर्ती अधिकाधिक की जाने लगी। महिला सेल का अलग से गठन किया गया।[2] प्रत्येक राज्यों में महिला पुलिस थाने अलग से स्थापित किए गए हैं। म.प्र. में इस दिशा में उल्लेखनीय विकास हुआ है। वर्तमान परिवेश में आज महिलाएं पुलिस की नौकरी किसी दबाव में या आवश्यकता के कारण नहीं बल्कि स्वयं चुनौती के रूप में स्वीकार कर रही हैं। महिलाएं आज पुलिस

• शोधार्थी, समाजशास्त्र, शोध केन्द्र- शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)
•• अखिलेश शुक्ल प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

विभाग में आरक्षक से लेकर पुलिस के उच्च पदों पर आसीन हैं और अपनी भूमिका का दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन कर रही है। आज अधिकांश महिला आरक्षक भी उच्च शिक्षा प्राप्त है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा - पुलिस बल में महिलाओं को सम्मिलित करने का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रथम प्रयास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। अमेरिका में पुलिस विभाग महिलाओं के प्रवेश से संबंधित प्रभाव के संबंध में अनेक अध्ययन किए गए हैं, जिनमें से हीगिंस (1961), ओविंग्स (1969), तथा हार्न (1975) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय स्तर पर पुलिस सम्बंधित विषयों पर अरुण प्रसाद मुर्कजी, ए.पी. मोहम्मद अली, बी. रामन, बी.पी. शाह, बी.आर. लाल, बी.एल. बोहरा, किरण बेंदी, एस.अखिलेश आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। 2008 में अखिलेश शुक्ल भारत में पुलिस संगठन नामक पुस्तक में महिला पुलिस की संगठनात्मक इसकी विवेचना प्रस्तुत की थी। संगठनात्मक विवेचना प्रस्तुत करते हुए डॉ शुक्ल ने महिला पुलिस के दायित्वों एवं कर्तव्यों का विवेचन किया है।[3]

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्यों में यह पता लगाना है कि–

1. क्या अन्य विभागों की तुलना में महिला पुलिसकर्मी को मिलने वाले वेतन व सुविधाएं से वह संतुष्ट नहीं है?
2. क्या महिला पुलिसकर्मी अपनी वेतन से बचत कर पाती हैं?
3. क्या महिला पुलिसकर्मी अपने कर्तव्यों के कारण अपनी पहचान बना पाई हैं।
4. क्या महिला पुलिसकर्मी अपनी कार्यावधि से संतुष्ट हैं?
5. क्या महिला पुलिसकर्मी अपने कार्य को बेहतर मानती हैं?
6. क्या महिला पुलिसकर्मी अपनी कार्यावधि से संतुष्ट है?
   इन तथ्यों से संबंधित आंकड़ों को एकत्रित कर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना शोध का मुख्य उद्देश्य है।

उपकल्पना - अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर शोध अध्ययन के संदर्भ में शोधार्थी की परिकल्पना निम्नानुसार है–

1. अन्य विभागों की तुलना में महिला पुलिसकर्मी को मिलने वाले वेतन व सुविधाएं से वह संतुष्ट नहीं है।
2. महिला पुलिसकर्मी अपनी वेतन से बचत नहीं कर पाती हैं।
3. महिला पुलिसकर्मी का जॉब अन्य जॉबों की तुलना में सर्वोत्तम है?
4. महिला पुलिसकर्मी अपने कर्तव्यों के कारण अपनी पहचान बना पाई है।
5. अधिकांश महिला पुलिसकर्मी अपनी कार्यावधि से संतुष्ट हैं।

शोध पद्धति- शोध अध्ययन में तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के उपयोग किया गया है। शोध अध्ययन का अध्ययन का क्षेत्र रीवा संभाग है। शोध क्षेत्र के लिए रीवा संभाग का चयन इसलिए किया गया है क्योंकि महिला पुलिसकर्मियों की संख्या रीवा संभाग में लगभग 1500 है, जिसमें से 300 महिला पुलिसकर्मियों का चयन उद्धेश्य पूर्ण सविचार निदर्शन प्रणाली से किया गया और साक्षात्कार अनुसूची द्वारा इनका साक्षात्कार लेकर तथ्यों का संकलन किया गया है। रीवा संभाग भारत के मध्य प्रदेश राज्य की एक प्रशासनिक भौगोलिक इकाई है, जो उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र से लगी हुई है। जिला रीवा, संभाग का प्रशासनिक मुख्यालय है।

यह अध्ययन समाजशास्त्र की वैज्ञानिक शोध पद्धति के अन्तर्गत किया गया है। जिसमें अवलोकन, साक्षात्कार विधि का प्रयोग करते हुये अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संग्रहण किया गया है। अध्ययन की चयनित इकाइयों का विवरण निम्नवत है–

तालिका क्रमांक 01

अध्ययन की चयनित इकाइयाँ (महिला पुलिस)

पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)
राजपत्रित महिला पुलिस अधिकारी	10
महिला निरीक्षक	10
महिला उपनिरीक्षक	15
महिला सहायक उपनिरीक्षक	25
महिला प्रधान आरक्षक	40
महिला आरक्षक	200
योग	300

तथ्यों का विश्लेषण एवं सारणीयन- महिला पुलिसकर्मियों की समस्याओं से संबंधित साक्षात्कार द्वारा निम्नलिखित उत्तर प्राप्त हुए और उनका विश्लेषण निम्नलिखित तालिकाओं में प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका 02

अन्य विभागों की तुलना में क्या आप अपने कार्य व वेतन से संतुष्ट हैं?

	संख्या	प्रतिशत
हाँ	114	38 प्रतिशत
नहीं	186	62 प्रतिशत
योग	300	100 प्रतिशत

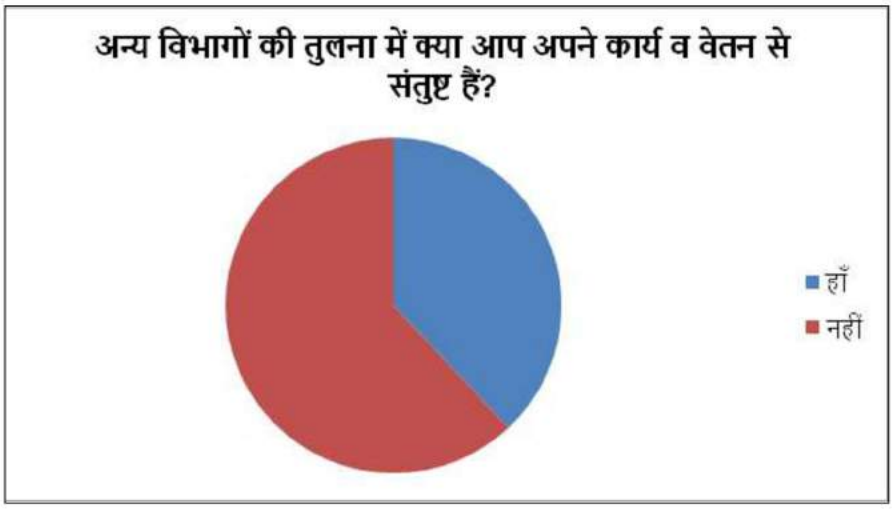

उपर्युक्त प्रश्न द्वारा प्राप्त उत्तर चौकानें वाले प्राप्त हुए जिसमें मात्र 38 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी ही अपने वेतन से संतुष्ट हैं, जबकि 62 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी वेतन से असंतुष्ट हैं। असंतुष्ट उत्तरदाताओं ने प्राप्त परिलब्धियों से आवश्यकता पूर्ति करने में असमर्थता बताते हुए कहा कि बढ़ती मंहगाई के कारण संतानों की शिक्षा, गृहस्थी की

दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में परिवार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जनता की सुरक्षा में चौबीस घंटे ड्यूटी करने वाली महिला पुलिस कर्मियों को नाश्ते का अलाउंस रुपए 15 और भोजन का भत्ता रुपए 50 मिलता है। आज के समसामयिक हाइटेक जमाने में भी पुलिस को कागजों में साइकिल पर गश्त बता उसी मान से भत्ता दिया जाता है। थाने में आरक्षक व प्रधान आरक्षकों को गश्त व डाक ले जाने के लिए 18 रुपए साइकिल खर्च के मान से पेट्रोल खर्च दिया जाता है। जबकि एस. आई., ए. एस. आई. को जांच के लिए खुद की गाड़ी में स्वयं के पैसे का पेट्रोल फूंकना पड़ता है। यह भत्ता भी वेतन के साथ ही जुड़कर आता है। पुलिसकर्मियों से अपेक्षाएं ज्यादा है और उसकी तुलना में उनका वेतन और भत्ते कम है। पेट्रोल रुपए 100 के ऊपर है और जब की गश्त के लिए सिर्फ रुपए 18 पुलिसकर्मी को मिलते हैं। प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि परिकल्पना क्रमांक 01 अन्य विभागों की तुलना में महिला पुलिसकर्मी को मिलने वाले वेतन व सुविधाएं से वह संतुष्ट नहीं है, सत्य पाई जाती है।

तालिका 03

क्या आप अपने वेतन से बचत कर पाते हैं?

राय	संख्या	प्रतिशत
हाँ	72	24 प्रतिशत
नहीं	228	76 प्रतिशत
योग	300	100 प्रतिशत

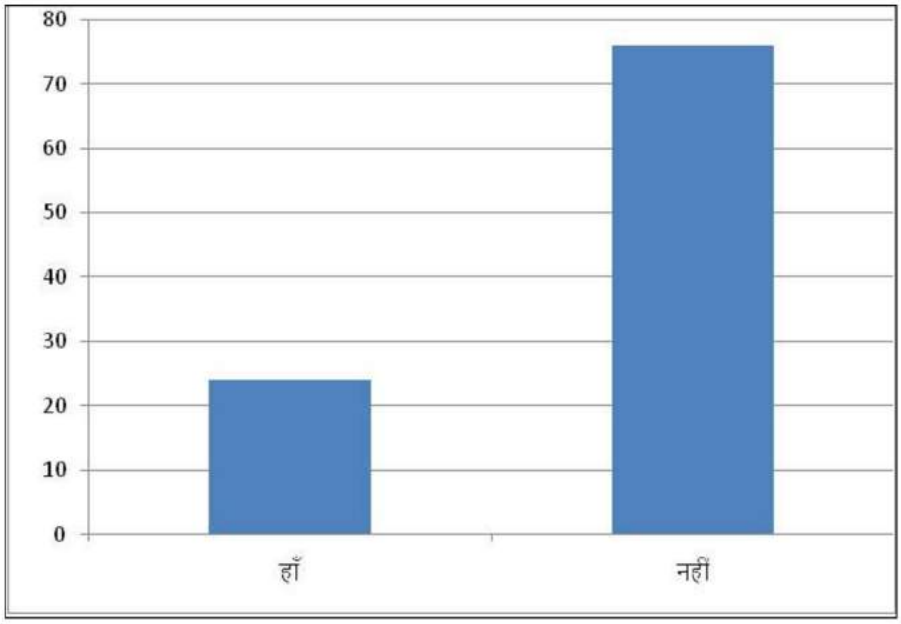

क्या आप अपने वेतन से बचत कर पाते हैं। प्रस्तुत प्रश्न के जवाब में केवल 24 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी ने यह माना कि वे वेतन से कुछ बचत कर पाते हैं, जबकि 76 प्रतिशत पुलिसकर्मियों द्वारा बचत के संबंध में नहीं में उत्तर प्राप्त हुआ, जो प्रशासन के समक्ष प्रस्तुत कर विचाराधीन होना आवश्यक है। वेतन से बचत न कर पाने का मूल कारण यह समझ में आया कि महंगाई बहुत ज्यादा है और उसकी तुलना में वेतन कम है। इस तरह परिकल्पना क्रमांक 02 महिला पुलिसकर्मी अपनी वेतन से बचत नहीं कर

पाती हैं, सत्य साबित होती है।

तालिका 04

क्या आप सोचते हैं कि आपका जॉब अन्य जॉबों की तुलना में सर्वोत्तम है?

राय	संख्या	प्रतिशत
हाँ	222	74 प्रतिशत
नहीं	78	26 प्रतिशत
योग	300	100 प्रतिशत

इस प्रश्न के जवाब में 74 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी अपने जॉब को सर्वोत्तम मानती है, जबकि 26 प्रतिशत नहीं मानती। अपने जॉब को सर्वोत्तम न मानने वालों ने इसका कारण प्राप्त सुविधाओं में कमी, अवकाश सम्बन्धी समस्या, बिगड़ती छवि, अपर्याप्त वेतन, समयाभाव तथा समाज का बढ़ता अविश्वास माना। अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह बताया कि उन्होंने पुलिस की नौकरी देशभक्ति और जनसेवा जनसेवा की भावना से ज्वाइन की है, इसलिए वह अपने जॉब को सर्वोत्तम मानती हैं। इस तरह परिकल्पना क्रमांक 03 सत्य साबित होती है।

तालिका 05

क्या आप अपने कार्य द्वारा कोई पहचान बना पाए हैं?

राय	संख्या	प्रतिशत
हाँ	234	78 प्रतिशत
नहीं	66	22 प्रतिशत
योग	300	100 प्रतिशत

अपने कार्य द्वारा स्वयं की पहचान बना पाने के प्रश्न के संबंध में 78 प्रतिशत पुलिस कर्मचारियों द्वारा हाँ में उत्तर प्राप्त हुए और 22 प्रतिशत द्वारा नहीं में। अधिकांश उत्तरदाताओं ने यह बताया की इस वर्ष कोविड-19 का प्रभाव रहा है और कोविड-19 की समस्या को सुलझाने में महिला एवं पुरुष पुलिसकर्मियों ने अपना अहम योगदान दिया है, जब लॉकडाउन में लोग अपने घरों में थे, तो पुलिसकर्मी व्यवस्था बनाने एवं लोगों की सहायता करने के लिए ड्यूटी कर रहे थे। पुलिस के इस कार्य ने लोगों के बीच अपनी एक स्वयं की पहचान बनाई है। कई पुलिसकर्मियों ने आते- जाते हुए श्रमिकों के रुकने एवं भोजन आदि की व्यवस्था भी की है, जिस को जनता ने सराहा है। उक्त तथ्य के विश्लेषण से परिकल्पना क्रमांक 04 महिला पुलिसकर्मी अपने कर्तव्यों के कारण अपनी पहचान बना पाई है साबित होती है।

तालिका 06

क्या आप अपनी कार्यावधि से संतुष्ट हैं?

राय	संख्या	प्रतिशत
हाँ	138	46 प्रतिशत
नहीं	162	54 प्रतिशत
योग	300	100 प्रतिशत

कार्यावधि से संतुष्टि के प्रश्न में 46 प्रतिशत महिला पुलिसकर्मी संतुष्ट हैं किन्तु 54 प्रतिशत पुलिसकर्मी असंतुष्ट हैं। उनके अनुसार कार्यावधि का निर्धारण होना अत्यंत

आवश्यक है। आमतौर पर किसी भी सरकारी विभाग में कार्यत किसी भी व्यक्ति की डिचूटी आठ घंटे की होती है, वहीं प्राइवेट संस्थानों में भी वर्किंग टाइम आठ से नौ घंटे के बीच का रही रहता है, लेकिन पुलिसकर्मियों को रोजाना 14 घंटे से ज्यादा डिचूटी करनी पड़ती हैं। संयुक्त राष्ट्र के मानक के अनुसार प्रति एक लाख नागरिक पर 222 पुलिसकर्मी होने चाहिए, लेकिन भारत में यह आंकड़ा 144 ही है। मतलब, हर 450 भारतीयों पर एक पुलिसकर्मी की तैनाती होनी चाहिए लेकिन यह आंकड़ा बढ़कर 694 हो गया है। इस तरह परिकल्पना क्रमांक 05 असत्य साबित होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) पुलिस और समाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अवस्थी डॉ. अमरेश, (1995) भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
3. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) आधुनिक भारत और पुलिस की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

छात्र - छात्राओं में मादक पदार्थो का सेवन, प्रभाव एवं समस्यायें (सागर नगर के महाविद्यालयों के विशेष संदर्भ में)

• रश्मि दुबे

सारांश- वर्तमान समय में कालेज और विश्वविद्यालय स्तर के छात्र - छात्राओं में नशे की प्रवृति अधिकतर पायी जाती है। इसका प्रतिशत कम या अधिक कुछ भी हो सकता है। नगरीय शिक्षण संस्थाओं के छात्रों में नशे की प्रवृत्ति का प्रतिशत तुलनात्मक रूप से अधिक है। वर्तमान में विद्यार्थियों द्वारा नशा एक फैशन सनक या आधुनिकता के रूप में लिया जाता है। नशा करना कोई नई समस्या नहीं है वरन इसके मूल में भारतीय सामाजिक ढांचे में होने वाला परिवर्तन छिपा हुआ है। पूर्व में हमारा समाज बहुत संगठित था व्यक्तित्व के विकास में परिवार की अहम भूमिका थी पर सूचना प्रोद्योगिकी के विकास के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के बजाय गैजेट्स से अपनी समस्या का समाधान ढूढता है जहां भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। वर्तमान में शिक्षण संस्थाएं कमजोर नियमों के कारण नशाखोरी एवं असामाजिक कृत्य के अड्डे बनते जा रहे हैं। जहां विद्या अध्ययन की कामना रखने वाले विद्यार्थी बुरी संगत एवं दिखावे के साथ - साथ सामाजिक दबाव का शिकार बनकर नशा संस्कृति से जुड़ जाते हैं। वर्तमान में छात्र-छात्राओं में नशा एक गंभीर सामाजिक समस्या है तथा देश,समाज व परिवार के लिए नशा एक अभिशाप है। यह एक ऐसी बुराई है जिससे इंसान का अनमोल जीवन समय से पहले ही मौत का शिकार हो जाता है। नशे के लिए समाज में शराब,गांजा,अफीम,स्मैक जैसे घातक मादक दवाओं और पदार्थो का उपयोग किया जा रहा है। इसमें व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक तथा आर्थिक हानि के साथ-साथ वह अपने वातावरण को भी दूषित करता है। साथ में परिवार वालो को भी इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है और ऐसे व्यक्ति समाज में अपनी प्रतिष्ठा भी खो देते हैं। नशा करने वाले व्यक्ति समाज के लिए अभिशाप बन जाता है।

मुख्य शब्द- मादक पदार्थ, स्वास्थ्य, युवा, व्यसन, मद्यपान

किसी भी समाज के लिए मद्यपान या नशा एक अभिशाप है। यह एक ऐसी बुराई है, जिससे इंसान का अनमोल जीवन समय से पहले ही मौत का शिकार हो जाता है। नशे के लिए समाज में शराब, गांजा, भांग, अफीम, जर्दा, गुटखा, तम्बाकू और धूम्रपान सहित चरस, स्मैक, कोकीन, ब्राउन शुगर जैसे घातक मादक दवाओं और पदार्थों का उपयोग किया जा रहा है। इन जहरीले और नशीले पदार्थों के सेवन से व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक हानि पहुंचने के साथ ही साथ इससे सामाजिक वातावरण भी प्रदूषित होता ही है साथ ही स्वयं और परिवार की सामाजिक स्थिति को भी बहुत नुकसान पहुंचता है। नशे के आदी व्यक्ति को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। नशा या मद्यपान करने वाला व्यक्ति परिवार के लिए बोझ स्वरूप हो जाता है उसकी समाज एवं राष्ट्र के लिये उपादेयता शून्य हो जाती है। वह नशे से अपराध की ओर अग्रसर हो जाता है तथा शांतिपूर्ण समाज के लिए अभिशाप बन जाता है। नशा अब एक अन्तर्राष्ट्रीय विकराल समस्या बन गई है। मद्यपान से आज स्कूल जाने वाले छोटे-छोटे बच्चो से लेकर बड़े-बुजुर्ग विशेषकर युवा वर्ग बुरी तरह प्रभावित हो रहे हैं। इस अभिशाप से समय रहते मुक्ति पा लेने में ही मानव

• प्राध्यापक, समाजशास्त्र शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोतर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

समाज की भलाई है। जो इसके चंगुल में फंस गया वह स्वयं तो बर्बाद होता ही है साथ ही साथ उसका परिवार भी बर्बाद हो जाता है। आज कल अक्सर यह देखा जा रहा हैकि युवा वर्ग इसकी चपेट में दिनों – दिन आ रहा है, वह तरह–तरह के नशे जैसे– तम्बाकू, गुटखा, बीड़ी, सिगरेट ओर शराब के चंगुल में फंसता जा रहा है। जिसके कारण उनका कैरियर चौपट हो रहा है। दुर्भाग्य है कि आजकल नौजवान शराब और धूम्रपान को फैशन और शौक के चक्कर में अपना रहे हैं। इन सभी मादक पदार्थों के सेवन का प्रचलन किसी भी स्थिति में किसी भी सभ्य समाज के लिए वर्जनीय होना चाहिए।

नशीले पदार्थों का अनावश्यक उपयोग लगातार बढ़ रहा है। वर्तमान में युवकों में मादक– द्रव्यों का उपयोग एक फैशन बन गया है। परिणामत: उत्तेजना अनुभव के लिए नवयुवक धीरे–धीरे इन नशीले पदार्थों के आदी हो जाते है। विश्वविद्यालयों के छात्रावासों के छात्रों में नशीली दवाईयों पर निर्भरता बढ़ रही है। इन मादक द्रव्यों में अफीम, हीरोइन,मरिजुआना, हशीश, प्रमुख है। अपराधशास्त्रियों ने आँकड़ों के आधार पर वह निष्कर्ष निकाला है कि इन नशीली दवाईयों के सेवन का अपराध से घनिष्ट सम्बन्ध हैं। न्यूयार्क में किये गये एक सर्वेक्षण से पता चला कि मादक–द्रव्यों की बिक्री बढ़ने के साथ–साथ अपराधों की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है। वर्तमान दौर में बढ़ते हुए मादक द्रव्य व्यसन के साथ–साथ समाज में बाल अपचारी भी बढ़ रहे हैं। अगर युवाओं की नशीले पदार्थ के सेवन की प्रवृति पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता है तो यह प्रवृति हमें एक दिन उस विश्व में लाकर खड़ा करेगी जहां चारों ओर अपराधी ही अपराधी नजर आयेंगे। मादक द्रव्य व्यसन की भयंकरता को दृष्टिगत रखते हुए डॉ. परिपूर्णानन्द वर्मा ने मदिरा और अपराध तथा ड्रग्स और अपराध को जुड़वां बहनें कहा है। मदिरा अर्थात शराब तथा ड्रग्स एक प्रकार के उतक–जहर हैं, जो एक बार के सेवन से भी हृदय की धड़कन को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। निरन्तर मद्यपान एवं मादक – द्रव्यों के सेवन को आंशिक आत्महत्या माना जा सकता है। मद्यपान से व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक पतन हो जाता है व उसका सम्पूर्ण जीवन बिखर जाता है। अमेरिका की विधि संविदा के अनुसार वह व्यक्ति जो किसी नशीले पदार्थों का उपयोग करता है, परिणाम स्वरूप नैतिकता स्वास्थ्य सुरक्षा एवं जनकल्याण को क्षति पंहुचाता है। मादक पदार्थों का सेवन युवा वर्ग को शनै: शनै: समाप्त कर रहा है। व्यक्ति परिवार और सामाजिक विघटन के लिये उत्तरदायी विघटनकारी शक्तियों में नशा सर्वाधिक विस्फोटक है नशा कोई भी हो वह जीवन की गतिशीलता को कम करता है, मनुष्य को असामाजिकता की और उन्मुख करता है भारतीय गुरूकुल पद्धति जो कल तक स्वर्णिम पद्धति के रूप में विख्यात थी, उसे आज युवाओं ने ड्रग्स के नशे में विस्तृत कर दिया है। भारतीय मानक शोध संस्थान के सर्वे के अनुसार सर्वाधिक नशा हमारे विश्वविद्यालय परिसर में पाया जाता है।

गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने जिन शिक्षण संस्थाओं को विद्या अध्ययन की छावनी की उपमा दी थी, वहां आज सिगरेट और शराब का प्रचलन सामान्य बात है। मादक पदार्थों के सेवन से परिवार, समाज तथा मित्र सब प्रभावित हो रहे हैं। इस संबंध में है सागर नगर में उच्च शिक्षा अध्ययनरत छात्र–छात्राओं का चयन किया गया जिसमें 2500 विद्यार्थियों को निदर्श के रूप में चुना गया और ऑन लाइन / ऑफ लाइन उनसे आंकड़े एकत्रित करने

का प्रयास किया गया। देश, समाज, स्वास्थ आदि पर मादक पदार्थों के सेवन का क्या बुरा प्रभाव पड़ता है यह जानकारी निदर्शित विद्यार्थियों से प्राप्त की तो निम्न आंकड़े प्राप्त हुये।

मादक पदार्थों का बुरा प्रभाव

क्र.	निम्न पर बुरा प्रभाव पड़ता है	आवृत्ति		प्रतिशत		कुलयोग (प्रतिशत)
		छात्र	छात्रा	छात्र	छात्रा	
1	परिवार पर	200	400	8.00	16.00	24.00
2	स्वास्थ्य पर	350	300	14.00	12.00	26.00
3	मित्रों पर	200	150	8.00	6.00	14.00
4	समाज पर	100	200	4.00	8.00	12.00
5	शैक्षणिक परिसर	150	200	6.00	8.00	14.00
6	कोई उत्तर नहीं	00-	250	00.00	10.00	10.00
	कुलयोग	**1000**	**1500**	**40.00**	**60.00**	**100.00**

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 26.00 प्रतिशत विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया है कि मादक द्रव्य व्यसन से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। 24.00 प्रतिशत छात्र छात्राओं ने परिवार पर बुरे प्रभाव की बात को स्वीकारा जबकि 14.00 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बताया कि मादक पदार्थों का बुरा प्रभाव शैक्षणिक परिसर व मित्रों पर पड़ता है। संपूर्ण समाज की बात पूछने पर सिर्फ 12.00 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हां में उत्तर दिया शायद वे समाज को परिवार शैक्षणिक परिसर से अलग समझ रहे होंगे। 10.00 विद्यार्थियों से यह पूछने पर कि मादक पदार्थों के सेवन से क्या क्या बुरे प्रभाव होते है, कोई भी उत्तर नहीं दिया। इससे स्पष्ट है कि भले ही विद्यार्थी नशा कर रहे हों पर इसके बुरे प्रभाव से भी परिचित हैं।

आज नशे के गिरफ्त में हर वर्ग का व्यक्ति है और वह कब कैसे किस उम्र में इसकी चपेट में आ गया स्वंय समझ ही नहीं पाया निदर्शित छात्र – छात्राओं से जब यह पूछा गया कि वे किस उम्र में नशे की गिरफ्त में आये तो इसका उनके पास कोई जवाब नहीं था, पर उनके स्कूल कॉलेज को जब माध्यम बनाकर आंकड़े एकत्र किये तो निम्न जानकारी प्राप्त हुई –

मादक पदार्थों के सेवन का विवरण

क्र.	स्वरूप	आवृत्ति		प्रतिशत		कुलयोग (प्रतिशत)
		छात्र	छात्रा	छात्र	छात्रा	
1	प्राथमिक स्कूल	40	00	1-60	0-00	1-60
2	माध्यमिक स्कूल	55	20	2-20	0-80	3-00
3	हाई स्कूल	235	280	9-40	11-20	20-60
4	महाविद्यालयीन स्तर	670	1200	26.80	48.00	74.80
	कुलयोग	1000	1500	40.00	60.00	100.00

उपरोक्त तालिका से यह विदित होता है कि प्राथमिक स्कूल से मादक पदार्थों के सेवन करने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत 1.60 है, 3.00 प्रतिशत विद्यार्थी ने बताया कि उन्होंने माध्यमिक स्तर पर मादक पदार्थों का सेवन प्रारंभ कर दिया था, 20.60 प्रतिशत विद्यार्थियों ने हाई स्कूल से मादक पदार्थ के सेवन की बात स्वीकार की जबकि 74.80

प्रतिशत विद्यार्थियों ने महाविद्यालय स्तर पर मादक पदार्थो का सेवन प्रारंभ कर दिया जो निदर्श का सर्वाधिक प्रतिशत है अर्थात महाविद्यालयों में मादक पदार्थो का सेवन करने वाले अधिकाधिक छात्र-छात्रायें किसी न किसी प्रकार के नशे में गिरफ्त है।

नशा एक ऐसी बुराई है जिससे इंसान का अनमोल जीवन समय से पहले ही मौत का शिकार हो जाता है। नशे के लिये समाज में शराब, गांजा, भांग, अफीम, जर्दा, गुटखा, तम्बाकू और धूम्रपान बीड़ी, सिगरेट, हुक्का चिलम सहित स्मैक, कोकीन, ब्राउन शुगर जैसे घातक मादक दवाओं और पदार्थों को उपयोग किया जा रहा है। इस जहरीले और नशीले पदार्थो के सेवन से व्यक्तियों को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक हानि पंहुचने के साथ ही परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति को भी बहुत नुकसान पंहुचता है। नशा के आदी व्यक्ति परिवार के लिए बोझ स्वरूप हो जाता है। उसकी समाज के लिए उपयोगिता शून्य हो जाती है। निदर्शित विद्यार्थियों ने जब नशे की बात को स्वीकारा तो उनसे यह पूछने का प्रयास किया गया कि वे किस रूप में नशे का सेवन करते है।

मादक पदार्थों के सेवन का स्वरूप

क्र.	स्वरूप	आवृत्ति		प्रतिशत		कुलयोग (प्रतिशत)
		छात्र	छात्रा	छात्र	छात्रा	
1	गोली के रूप में	70	45	2.80	1.80	4.60
2	धूम्रपान	400	330	16.00	13.20	29.20
3	पान के साथ	50	05	2.00	0.20	03.53
4	पेय के रूप में	355	220	13.00	8.80	21.80
5	उत्तर नहीं	155	900	6.20	36.00	42.20
	कुलयोग	**1000**	**1500**	**40.00**	**60.00**	**100.00**

आज मादक पदार्थो के सेवन करने के अनेक उपाय अपनाये जाने लगें हैं। इसी को ध्यान में रखकर जब निदर्शित विद्यार्थियों से जानकारी प्राप्त की तो सर्वाधिक 42.20 प्रतिशत छात्र- छात्राओं ने नशा करने की बात तो मानी पर वो उसका उपयोग किस रूप में करते हैं इसका उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया 29.20 प्रतिशत छात्र-छात्राओं ने धूम्रपान के माध्यम से नशे की बात बतायी। 21.80 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बताया कि वे पेय के रूप में नशे का सेवन करते हैं। 4.60 प्रतिशत विद्यार्थियों ने गोली के रूप में नशे की बात बतायी तथा 3.53 प्रतिशत विद्यार्थियों ने बतया कि वे पान के साथ नशीली वस्तुओं का सेवन करते हैं।

युवा वर्ग पढ़ा लिखा और शिक्षित है। नशे की गिरफ्त में है, पर वह मानता है कि नशा एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय समस्या है तथा उच्च शिक्षा से संबंधित होने के कारण समाज व राष्ट्र की समस्या से परिचित हैं। निदर्शित विद्यार्थियों से जब यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या नशा को आप एक राष्ट्रीय समस्या मानते है, तो निम्न आंकड़े प्राप्त हुये।

नशा एक राष्ट्रीय समस्या है

क्र	स्वरूप	आवृत्ति		प्रतिशत		कुलयोग (प्रतिशत)
		छात्र	छात्रा	छात्र	छात्रा	
1	हां	900	1300	36.00	52.00	88.00
2	नहीं	100	200	04.00	08.00	12.00
	कुलयोग	**1000**	**1500**	**40.00**	**60.00**	**100.00**

अध्ययन के दौरान जब निदर्शित विद्याथियों से यह पूछा गया कि क्या नशा एक राष्ट्रीय समस्या है तो 88.00 प्रतिशत विद्यार्थियों ने इस बात को स्वीकारा पर 12.00 प्रतिशत विद्यार्थी नशे को राष्ट्रीय समस्या नहीं मानतें वे इसे व्यक्तिगत समस्या मानते है।

अध्ययन के दौरान प्राप्त आंकड़ों से एक बात तो स्पष्ट है कि 88.00 प्रतिशत विद्यार्थी नशे को एक राष्ट्रीय समस्या मानते हैं, इसके बाद भी वो नशा करते है। आज का युवा वर्ग किसी भी परिस्थिति के साथ समझौता नहीं करना चाहता तथा आसानी से उसका हल ढूंढने का प्रयास करता है और सारी समस्यायों का निदान वह नशे के रूप में करना चाहता है। नशा उतरने के बाद वह जरूर स्वास्थ्य, परिवार व समाज के बारे में सोचता है, पर जब उसे तनाव घेरने लगता है और फिर वह नशे में डूबकर अपने को तनाव मुक्त करता है तो फिर काल्पनिक दुनिया व स्वप्न लोक में खो जाता है। मादक पदार्थों का लगातार सेवन व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है। व्यक्ति की आयु कम हो जाती है। परिवार पर भी नशा का प्रभाव अच्छा नहीं होता है, परिवार के सदस्यों का नैसर्गिक विकास रूक जाता है नशे से शिक्षण संस्थायें भी प्रभावित होती हैं। मादक पदार्थो के दुरूपयोग को न केवल विपथगामी व्यवहार के रूप में बल्कि एक सामाजिक समस्या की तरह भी देखा जा सकता है। कुछ पश्चिमी देशों ने मादक द्रव्यों के सेवन को लम्बे समय से एक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या माना है। परन्तु भारत ने केवल पिछड़े ड़ेढ़ दशक से ही इसे सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकारा है। आज जरूरत है समय रहते यदि हमने युवा पीढ़ी को नशे के दुष्परिणामों से परिचित नहीं कराया तो पूरे समाज व राष्ट्र का विनाश हमें अपनी आंखों ये देखने के लिये मजबूर होना पड़ेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. एनरेट ए. वेनिक : ए नावल एप्रोज टू ड्रग एजुकेशन, हेम्पशायर, यूनाइटेड स्टेट, जून 1974
2. सिंह. डॉ. एम.एन. : नशे का फैलता जाल, समाज कल्याण, नई दिल्ली फरवरी 1994
3. राम आहूजा: सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2000
4. आनन्द प्रकाश सिंह : सामाजिक समस्यायें और अपराध, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
5. आउट लुक (पत्रिका): बेपरवाह सेक्स विशेषांक, ए.बी. 6 सफदर जंग एनक्लेव, नई दिल्ली फरवरी 2011
6. इण्डिया टुडे (पत्रिका): महिलाओं का मन मांगे मोर विशेषांक, लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड नोएडा, दिल्ली, दिसम्बर 2013
7. लाइव इण्डिया (पत्रिका): नशाखोरी एक भयावह सच विशेषांक, समूह जीवन कार्यालय पुणे से प्रकाशित, दिसंबर 2014

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

महिला सशक्तिकरण : चुनौतियाँ एवं अवसर

•नीलम शर्मा
••बिन्नी खेड़ा

सारांश- वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण एक ऐसा प्रचलित शब्द है जिसकी चर्चा हर क्षेत्र में हो रही है। महिला सशक्तिकरण का सही अर्थ समझने से पहले हमें सशक्तिकरण शब्द के अर्थ को समझना होगा। सशक्तिकरण का अर्थ स्वयं की योग्यता से है अर्थात व्यक्ति स्वयं में इतना योग्य हो कि वह बिना किसी पर निर्भर रहे स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो और अपना विकास कर सके। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं की स्वयं की योग्यता व निर्णय लेने की क्षमता से है, जिससे वह आत्मनिर्भर होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो और परिवार, समाज व राष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक पहचान बना सके और अपने साथ-साथ देश के विकास में योगदान कर सके।

मुख्य शब्द- महिला सशक्तिकरण, आत्मनिर्भर, जागरूक

प्राचीन समय से ही भारत एक ऐसा देश रहा है जो विश्व पटल पर अपनी अद्‌भुत विशेषताओं के कारण चर्चा का विषय रहा है। प्राचीन भारत में भी महिलाओं का समाज में अग्रणी स्थान था, यद्यपि कई ऐसे क्षेत्र थे जिसमें उनका हस्तक्षेप नगण्य था तथापि वो पुरूषों के समकक्ष थीं। चाहे राजनीति हो, सामाजिक या धार्मिक कार्यक्रम हो हर जगह वह पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहती थीं और सशक्तिकरण शब्द को चरित्रार्थ करती थीं। वह पुरुषों के दबाव से दूर अपना व राष्ट्र का विकास कर रही थीं। समय के साथ स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आता गया और वह एक शून्य में विलिन होती गयीं। कुछ स्त्रियों जिन्होंने बंधनों में रहना स्वीकार नहीं किया को छोड़कर बाकि स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। आजादी के उपरान्त उसे उसके अधिकारों का ज्ञान कराया गया, उसको उन्नत करने के लिए योजनाएँ व कार्यक्रम बनाए गए, अभियान चलाए गए, तब वर्तमान समय में नारी का एक नया रूप उभर कर सामने आया जो उसके विकास का द्योतक है।

मेरे इस अध्ययन का मुख्य उद्‌देश्य महिलाओं की वास्वविक स्थिति का अध्ययन करना है। महिला सशक्तिकरण शब्द जिस तरह से आज समाज में प्रचलित है और इस शब्द को जिस तरह से राजनैतिक व समाजिक स्तर पर लोग अपने स्वार्थ के लिए भुना रहे हैं उस शब्द की वास्तविकता से लोगो को अवगत कराना है। क्या वास्तविक रूप से आज यह शब्द अपने सही मायने पा गया है? क्या आज महिलाएँ सही अर्थो में सशक्त हो पायी हैं? क्या आज भी उसने पुरुषों के वर्चस्व को पूर्णत: खत्म कर दिया है? ऐसे कुछ प्रश्न हैं, जिनका उत्तर आज भी अधूरा है।वो आज भी अपने अस्तित्व के लिए लड़ रही है। इस विषय के माध्यम से में महिला सशक्तिकरण से जुड़े कुछ ऐसे ही पहलुओं पर प्रकार डालना चाहती हूँ।

इस शोध पत्र की कार्यप्रणाली वर्णनात्मक है। इस शोध के अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनो तरह के स्रोतो की सहायता ली गई है। इन स्रोतो के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि किस तरह से महिलाओं ने पारीवारिक, सामाजिक, राजनैतिक

•सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग
••कार्यालय सहायक, दी आईआईएस विश्वविद्यालय

व आर्थिक स्तर पर अपनी स्थिति को बदला है और सशक्तिकरण शब्द को आत्मसात किया है। साथ ही इस शोध के माध्यम से महिला सशक्तिकरण में आ रही चुनौतियों व उनको मिलने वाले अवसरों पर भी प्रकाश डाला है।

इस सर्वेक्षण से पता चलता है कि पुरतान युग में समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी । तब उसके लिए सशक्तिकरण शब्द का उपयोग करना व्यर्थ ही होगा क्यों कि उसका भी समाज में पुरुषों के बराबर ही स्थान था। उसे भी उतने अधिकार प्राप्त थे जितने पुरुषों को । प्राचीन काल में हमारे गणमान्यों ने स्त्रियों के वामा रूप की परिकल्पना की थी, जिसका अर्थ होता है कि वह पुरुषों के साथ मिलकर सम्पूर्णता को प्राप्त करे। बल्कि उसका स्थान पुरुषों से कही बढ़कर था तभी तो प्राचीन युग में मातृ सत्तात्मक परिवार की व्यवस्था थी, जहाँ पुत्र की पहचान माता के नाम से होती थी । नारी को समाज का मुख्य आधार माना जाता था। उसका हर क्षेत्र में हस्तक्षेप था तथापि उसकी कुछ सीमाएँ भी थी । धीरे–धीरे समय के साथ महिलाओं की स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आता गया। नर ने नारी के अस्तित्व को निगल लिया। उसको घर की चारदिवारी के अन्दर कैद कर दिया गया साथ ही उसके सभी अधिकार छीन लिए गए। वह एक भोग्या बनकर रह गई जिसका काम अपने परिवार की देखरेख करना था वह पुरुषों की मात्र एक गुलाम बनकर रह गई थी। कालान्तर में महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती गई समाज में कई भेदभावपूर्ण रिवाजों के साथ– साथ सती प्रथा, दहेज प्रथा, नगर वधु व्यवस्था, यौन व घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा का बोलबाला हो गया। समाज में महिलाओं की ऐसी स्थिति को देखते हुए कई समाज सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिए आवाज उठायी व ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जिससे उनमें अपने उत्थान के प्रति चेतना जागे। शायद यही वो कारण थे जिसके लिए महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता पड़ी और सही अर्थो में यही महिला सशक्तिकरण की दिशा में उठाया हुआ पहला कदम था।

महिलाओं को स्वयं इस बात का ज्ञान हो गया था कि यदि उन्हें समाज में अपना एक अलग स्थान बनाना है तो उन्हें स्वयं जागरूक होना पड़ेगा। तत्कालीन भारत में महिलाओं के बढ़ते प्रभाव का वर्णन आशा शुक्ल तथा कुसुम त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक में इस तरह किया है–"हमारी इतिहास की किताबों में सरोजनी नायडू, ऐनी बेसेंट, अरूणा आसफ अली और उषा मेहता जैसी महिलाओं के योगदान का उल्लेखनीय विवरण है, लेकिन ऐसी हजारों अनजानी, अनसुनी महिलाएँ हैं जो अनेकों निषेधों व अवरोधों को पार कर सड़को पर उमड़ पड़ी थी। उन्होंने अपने को समूह में संगठित किया था, वे देशभक्ति गीत गाते हुए प्रभात फेरी निकालती थीं, प्रचारात्मक कार्यक्रम संचालित करती थीं तथा विदेशी शराब व विदेशी कपड़े बेचने वाली दुकानों का घेराव करती थीं। वे उदारता के साथ कांग्रेस को कपड़े और गहने दान करती थीं। वे घरों में खादी बुनती थीं, इसके उपयोग के लिए प्रचार करती थी एवं पुलिस आक्रमण तथा कैद को भी झेलती थीं।"

कालान्तर मे 19वीं शताब्दी के अंत में महिला सशक्तिकरण का स्वर प्रखर रूप से चारों ओर फैल गया। सशक्तिकरण शब्द ने एक व्यापक अर्थ को परिभाषित किया जिसका उद्देश्य महिलाओं का चहुमुखी विकास करना और उसको घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर पुनः पुरुषों के समकक्ष खड़ा करना था। साथ ही कुछ ऐसे कारण भी थे जिनके लिए महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता पड़ी जैसे –

- बिना महिला सशक्तिकरण के हम समाज में व्याप्त अन्याय, असमानताओं, लिंग

भेद जैसी समस्याओं को दूर नहीं कर सकते।

- महिलाओं को सुरक्षा व संरक्षण प्रदान करने के लिए महिला सशक्तिकरण आवश्यक है।
- महिलाओं के खिलाफ हो रहे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक उत्पीड़न को रोकने के लिए भी इसकी आवश्यकता है ।
- महिलाओं को उनके अधिकारों का ज्ञान कराने व उन्हें कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए भी महिला सशक्तिकरण अवश्यंभावी है।

इस दिशा में आजादी के बाद से लेकर अब तक सरकार ने भी कई ठोस कदम उठाये हैं क्योकि कोई भी देश तब तक तरक्की नहीं कर सकता जब तक उस देश की महिलाएँ सशक्त न हों। महिला सशक्तिकरण को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस तरह परिभाषित किया है "लोगों को जगाने के लिए महिलाओं का जागृत होना जरूरी है। एक बार जब वो अपना कदम उठा लेती हैं तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ता है और राष्ट्र विकास की ओर उन्मुख होता है।" महिला सशक्तिकरण महिलाओं को गरिमा और स्वतंत्रता के साथ जीना सीखता है साथ ही उनमें नेतृत्व की क्षमता का विकास करता है। यह महिलाओं को आत्म सम्मान के साथ जीना सिखाता है। जिससे वे अपने को आर्थिक रूप से सुदृढ़ कर देश की वित्तीय व्यवस्था में अपना योगदान कर सकती हैं।

महिलाओं को सशक्त करने में शिक्षा के विकास का एक अमूल्य योगदान रहा है क्योकि बिना शिक्षा के प्रसार के नारी अपनी शक्तियों व अधिकारों के ज्ञान से वंचित थी । इस दिशा में जहाँ जन चेतना कार्यक्रमों ने अपनी अहम भूमिका निभायी वहीं सरकार ने भी स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई नए कार्यक्रमों को चालू किया ताकि देश की हर महिला चाहे वह गाँव की रहने वाली हो या शहर की शिक्षित हो सके। वहीं सरकार ने कई ऐसी नीतियों व कानूनों का निर्माण भी किया है जो महिलाओं को सशक्त करने में कई हद तक सहायक हुए हैं जैसे–

- नारी उत्पीड़न व घरेलू हिंसा को रोकने के लिए कानून बनाना
- राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्तर पर पुरूषों के समान महिलाओं को अधिकार प्रदान करना
- पुरुषों के समान ही महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सेदारी का प्रावधान बनाना
- महिलाओं को मुख्य धारा में लाने वाले तंत्रों की प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करना
- स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए नए-नए कार्यक्रम लागू करना।
- विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं को बढ़ावा देना।
- बालिका विवाह, भ्रूण हत्या, प्रसव पूर्व लिंग जांच, यौन शोषण, बालिका व्यापार आदि को रोकने के लिए कानूनों का निर्माण करना और महिला सशक्तिकरण को और बढ़ावा देना।
- महिलाओं के उत्थान के केन्द्रिय व राज्य स्तर पर विभिन्न परियोजनाओं में सहायता के लिए निजी क्षेत्र में पूँजी निवेश को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के उत्थान के लिए पंचायतीराज व स्थानीय स्व-शासन को जागरूक करना ताकि ग्रामीण महिलाएं भी सरकार द्वारा महिलाओं के लिए चलायी जा रही योजनाओं से लाभान्वित हो सके।
- भारत की संसद ने भी महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कई कानून पारित किए

है जैसे समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम.1956, चिकित्सीय गर्भ समापन कानून 1971, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, सती निवारण आयोग अधिनियम.1987, बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006, गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (विनियमन और दुरूपयोग की रोकथाम)अधिनियम 1994 एवं कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम 2013।

- दिल्ली में पैरामेडिकल छात्रा के बलात्कार एवं हत्या से जुड़े निर्भया केस में सरकार ने किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) विधेयक 2000 में संशोधन करके नया विधेयक 2015 पारित किया जिसके अंतर्गत अपराध के लिए सजा दिए जाने के लिए निर्धारित किशोर की आयु 18 वर्ष से घटाकर 16 वर्ष कर दी गई है।

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि महिला सशक्तिकरण महिलाओं को समाज व दुनिया में जगह बनाने का एक महत्वपूर्ण जरिया है। पर इसके लिए अभी हमें बहुत कुछ करना बाकी है। यदि सही अर्थो में हमें इस शब्द को सार्थक करना है तो जरूरी है हमें समाज में व्याप्त पुरुष श्रेष्ठता व पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति का जड़ से मिटाना। एक ऐसे समाज का निर्माण करना जहाँ महिलाओं को पुरुषों के समान विकास के समान अवसर मिले और वह पुरुषों के सहारे के बिना भी खड़ी हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. कुमार, राकेश, (2001) नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा
2. कस्तवार, रेखा, (2006) स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, राजकमल प्रकाशन प्र.लि., नई दिल्ली
3. जोशी, डॉ. गोपा, (2006) भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दि.वि.वि., नई दिल्ली
4. कुमार, राधा, (2002) स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
5. शुक्ला, प्रो.आशा, त्रिपाठी कुसुम, (2004) स्त्री संघर्ष के मुद्दे, स्त्री अध्ययन विभाग, बरकतुल्ला वि.वि., भोपाल

समाचार-पत्र -

6. हिन्दुस्तानटाइम्सईपेपर, 4 फरवरी 2017
7. बीबीसीहिन्दी, 17 फरवरी 2017

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

राजस्थान के जनजातीय समुदाय का सामाजिक-आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन का अध्ययन

• विक्रम सिंह

सारांश- आदिवासी जनजातियों का जीवन अत्यधिक संघर्षमय एवं कठोर है क्योंकि इनको जीवन निर्वाह के साधन बहुत कठिनाई से प्राप्त होते है। क्षेत्र में पानी का स्तर बहुत गहरा है। करीब 70-80 फिट तक भी कुओं में पानी नहीं मिलता है। बड़े तालाबों का अभाव, सिंचाई सुविधाओं का अभाव है। इन लोगों की कमजोर आर्थिक स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारण यहाँ का भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण है। खेती योग्य भूमि की कमी के कारण अधिकाशंत लोग वनों के सहारे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। प्रारम्भ में ये लोग पशुपालन शिकार तथा वनों की उपज पर निर्भर थे। परन्तु वर्तमान में स्थायी खेती करने लगे है कुछ लोग पशुपालन व मुर्गीपालन करते हैं साथ ही पुरूष वर्ग नगरों में जाकर नौकरी व मजदूरी करने लगे हैं।

मुख्य शब्द- संघर्षमय, पशुपालन

परिचय- समाज चाहे आधुनिक हो या आदिम प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ व्यवस्था का समावेष प्रारम्भ से ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु रहा है एवं इसी आवश्यकता पूर्ति एवं व्यवस्था में सामाजिक-आर्थिक संरचना सदैव सम्बद्व तथा अन्योन्याश्रित होकर रही है।

जिस प्रकार शरीर के अनेक अंग हैं तथा प्रत्येक अंग के अलग-अलग कार्य होते हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं है। अपितु वे एक-दूसरे के साथ अन्त संबंधित है। इसी प्रकार जनजाति का सामाजिक-आर्थिक संगठन भी एक-दूसरे पर निर्भर रहते हुए क्रियाशील तथा व्यवस्थित है। चूंकि अधिकांश वन्य जातियों की अर्थव्यवस्था जीविकोपार्जन जीवन धारण से संबंधित रही है, जीवन धारण करने की आवश्यकता वस्तुओं का संग्रहण करना, वितरण तथा उपभोग करना ही उनकी आर्थिक क्रियाओं का मूलभूत आधार तथा लक्ष्य है। अत- यह स्वाभाविक ही है, कि चयनित क्षेत्रों की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था भी पूर्णरूपेण प्राकृतिक सम्पदा तथा साधनों फल-फूल, पशु पक्षियों, पहाड़ वनों तथा वनस्पतियों पर निर्भर है तो समस्त आर्थिक आवश्यकताएँ भी समाज में मूलभूत आधार परिवार के संयुक्त भी है।[1]

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोधपत्र में जनजाति की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित पहुलुओं तथा आय, भूस्वामित्व, मुख्य तथा सहव्यवसाय शिक्षा स्तर, पारिवारिक शिक्षा स्तर विभिन्न पहलुओं को आधार मानकर क्षेत्रीय अध्ययन में प्राप्त तथ्यों को यहाँ प्रस्तुत किया गया।

जनजाति समुदाय का सामाजिक जीवन- राजस्थान का दक्षिण क्षेत्र जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है, यहाँ की स्थानीय परम्पराएँ व संस्कृति प्रत्येक जिज्ञासु का स्वाभाविक रूप से धन आकृष्ट करती है। समाज या सामाजिक संरचना फाउन्डेशन हेतु कहे जाने वाले परिवार व नातेदारी आज भी जनजाति समुदाय में कायम है। वास्तव में यह जनजाति समुदाय में अन्तर्निहित परिवार, विवाह, विविध स्वरूप गोत्र, टोटम, खानपान आवास-व्यवस्था, उत्सव एवं त्यौहार आदि की ही देन है जो इन्हें विशिष्ट समाज एवं संस्कृति के रूप में स्थापित करती है। इस क्षेत्र में आदिवासी समुदाय इनके मुख्य व्यक्ति तथा आदिवासी प्रमुख सामाजिक रूप

• एम.ए.अर्थशास्त्र, सी-9, दुर्गा नर्सरी रोड, उदयपुर (राज.) 313001

पूर्ण रूप से सुनियोजित रहते है। इनके रीति रिवाज एवं परम्परा तथा सामाजिक प्रथाएँ आदिवासी समाज के ही हैं। लेकिन अब धीरे-धीरे गैर आदिवासी प्रथाएँ भी अपनी जगह बना रही हैं, तथा इसका प्रभाव इनके सामाजिक जीवन पर पड़ रहा है।[2]

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उनके आर्थिक भाग्यशाली पड़ोसियों, गैर आदिवासी के साथ बढ़ते हुए सम्पर्क की वजह से आदिवासी समाज की जीवनशैली में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है इन जनजातियों में कुछ जनजातियों ने जबरदस्त गति से प्रगति की है। गैर आदिवासी समाज के सम्पर्क आने पर इस आदिवासी समाज में जैसे कि सामाजिक एवं आर्थिक जिसमें पहनावा, रहन-सहन व कृषि संबंधी कार्यों में जबरदस्त गति से प्रगति हुई है। इन परिवर्तनों को उनके जीवन के अन्य सम्बन्ध विशेषताओं जैसे की सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं व कृषि सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करेगा महत्वपूर्ण है।

आदिवासी समाज में लड़के व लड़कियों को वास्तविक स्वंतत्रता तथा कही भी घूमने-फिरने की छूट होती है। इस क्षेत्र की आदिवासी महिलाओं को कहीं भी घूमने-फिरने की छूट होती है। जंगल में लकड़ी काटने, खरीददारी करने, मेलों में अकेले जा सकती हैं। लेकिन अब धीरे-धीरे इस क्षेत्र पर तथा आदिवासी समाज पर अन्य धर्मों तथ बाहरी वातावरण का प्रभाव पड़ रहा है और अब महिलाओं पर रोक-टोक लगने लगी है, तथा इन्हें घर तक सीमित करा जा रहा है, उनकी आजादी उनसे छीनी जा रही है।[3]

रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण एवं सरकार के सम्बन्ध में शायद ही आदिम समाज में ऐसी कोई जाति है, जो सादगी तथा स्वभाव में आदिवासी समाज की तुलना कर सकें। अर्थात जनजाति समुदाय के लोग रहन-सहन तथा खान-पान में सदैव साधारण ही रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र में जनजाति के लोग विविध संस्कृति से सरोवार हैं यहॉ की आदिवासी महिलाओं की मुख्य वेशभूषा, लुगड़ी काँचली तथा लंहगा है तथा आभूषणों में अधिकतर चाँदी के आभूषण पहनती हैं। शारीरिक आकर्षण हेतु शरीर गुदवाने की प्रथा है। किन्तु अब समय के साथ-साथ आधुनिकता के प्रभाव तथा हिन्दू धर्म की महिलाओं की देखा-देखी कई आदिवासी महिलाओं ने अपनी पारम्परिक वेशभूषा को छोड़ साड़ी पहनाना शुरू कर लिया है।

अब वे मांग भरने, बिन्दी लगाने तथा मंगलसूत्र पहनने लगी हैं, तथा साथ ही आदिवासी समाज की पहचान शरीर गुदवाने की प्रथा भी समाप्त होती जा रही है। अधिकांश जनजातियों की जनसंख्या बिखरी हुई आवास व्यवस्था में निवास करती है। कुछ समुदाय पहाड़ियों के मध्य निवास स्थान का निर्माण करते हैं। तो कुछ कृषि भूमि के समीप, सामान्यता वे पहाड़ियों तथा नदियों की घाटियों पर भी निवास करते हैं जो कि एक समान कुछ नातेदारी तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता पर आधारित है। समय परिवर्तन के साथ क्षेत्र के लोगों में काफी बदलाव आया है। उनकी जीवन शैली आधुनिकता से प्रभावित हो रही है। लोगों का बच्चों की बुनियादि स्कूली शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ गया है। तथा प्राथमिक शिक्षा की दस साल पहले की स्थिति में काफी सुधार आया है तो यहॉ के शैक्षिक विकास के लिए सकारात्मक पहल की जा सकती है। लेकिन उच्च शिक्षा को अभी भी महत्व नहीं दिया जाता है। क्षेत्र में उच्च शिक्षित लोगों की कमी है।

स्कूल शिक्षा के बाद बच्चों से स्कूल छुड़वाकर लड़कों को काम में लगा दिया जाता है तथा लड़कियों पर घर गृहस्थी की जिम्मेदारी सौंप दी जाती है या उनकी शादी करवा दी जाती है। साथ ही लोगों के अफसरशाही से डर तथा जागरूकता के निम्न स्तर ने उन्हें

सरकार द्वारा बनाई गई कई योजनाओं से विमुख रखा है तथा उनकी अशिक्षा के उच्च स्तर ने इन्हें सरकार के संगठनात्मक तथा संरचनात्मक कार्यों से दूर रखा हुआ है, जबकि यदि लोग चाहें तो शिक्षा एवं जागरूकता द्वारा सरकार प्रणाली पर दबाव डालकर अपने हक को प्राप्त करने के प्रयास कर सकते हैं।[4]

जनजातीय समुदाय का आर्थिक रूवरूप जीवन - राज्य में आदिवासी जनसंख्या का बहुत बड़ा अनुपात राज्य में आदिवासियों पर ही निर्भर है। क्षेत्र की आदिवासी जनसंख्या का बहुत बडा अनुपात उनके खाद्य सुरक्षा और आय के लिए कृषि पर निर्भर है जनजातीय लोग बहुत ही सादा जीवन जीते हैं जंगल तथा खेल इनके जीवन यापन का मुख्य स्त्रोत होते हैं तथा यही इनकी अर्थव्यवस्था की रीढ़ भी होती है। यही दोनो क्षेत्र आदिवासियों की 90 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार प्रदान करते हैं बाकि 10 प्रतिशत जनसंख्या व्यापार अर्थशास्त्र कपड़ों का व्यापार व जमीद जायदाद के व्यापार में उतर जाते हैं।[5]

इस प्रकार के आदिवासी जनजातियों का जीवन अत्यधिक संघर्षमय एवं कठोर है क्योंकि इनको जीवन निर्वाह के साधन बहुत कठिनाई से प्राप्त होते है। क्षेत्र में पानी का स्तर बहुत गहरा है। करीब 70-80 फिट तक भी कुओं में पानी नहीं मिलता है। बड़े तालाबों का अभाव, सिंचाई सुविधाओं का अभाव है। इन लोगों की कमजोर आर्थिक स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारण यहाँ का भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण है। खेती योग्य भूमि की कमी के कारण अधिकाशंत लोग वनों के सहारे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। प्रारम्भ में ये लोग पशुपालन शिकार तथा वनों की उपज पर निर्भर थे। परन्तु वर्तमान में स्थायी खेती करने लगे है कुछ लोग पशुपालन व मुर्गीपालन करते हैं साथ ही पुरुष वर्ग नगरों में जाकर नौकरी व मजदूरी करने लगे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. दोषी शम्भूलाल, प्रोसेसेज ऑफ ट्राईबल यूनिफिकेशन एण्ड एण्टिग्रेशन नई दिल्ली।
2. शर्मा सी एल (1998) भील समाज कला और संस्कृति मालती प्रकाशन, जयपुर।
3. बोस एन के (1980) ट्राईबल लाइफ इण्डिया नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली।
4. व्यास एम एन (1992) द ट्राइबल ऑफ राजस्थान श्शनशाइन ऑन अरावली, उदयपुर।
5. पाटील अशोक डी (1998) भील जनजीवन और संस्कृति मध्यप्रदेश, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

महिला स्व सहायता समूह की कार्यप्रणाली का अध्ययन

•चांदनी जायसवाल

सारांश- महिला स्वसहायता समूह, समरूप निर्धन महिलाओं द्वारा, स्वेच्छा से गठित एक समूह है जिसमें समूह के सदस्य अपने आप से जितनी भी बचत आसानी से कर सकते हैं उसका अंशदान उत्पाद, उपभोग अथवा आपातकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऋण देने के लिए परस्पर सहायक होते हैं। महिला स्वसहायता समूह, एक जैसी आर्थिक स्थिति वाले महिलाओं का एक छोटा सा समूह होता है जिसमें समूह की महिला स्वेच्छा से नियमित रूप से थोड़ी थोड़ी राशि बचाती हैं जो सामूहिक निधि में योगदान के लिए पारस्परिक रूप से सहायक होती हैं।

मुख्य शब्द- स्वसहायता समूह, एस.एच.जी., आपातकालीन

महिला स्वसहायता समूह की आवश्यकता- महिला स्वसहायता समूह की आवश्यकता महिलाओं में जागरूकता लाना, शिक्षा को बढ़ाना, आत्मसम्मान में वृद्धि करना, निर्णय लेने में योग्य बनाना, आत्म विश्वास में वृद्धि करने तथा समूह की महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए अति आवश्यक है।

महिला स्व सहायता समूह की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य है अध्ययन हेतु सूक्ष्म स्तर पर उज्जैन जिले का चुनाव किया गया है। स्व सहायता समूह की अवधारणा का शासकीयकरण करते हुए भारत सरकार द्वारा अप्रैल 1999 से ग्रामीण विकास मंत्रालय की स्वर्ण जंयती ग्राम स्वरोजगार योजना लागू की तत्पश्चात् जून 2011 में भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एन.आर.एल.एम.) को स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के पुर्नगठित रूप में शुरू किया था। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए एन आर एल एम व एन यू एल एम के शासकीय विभागों के अंतर्गत बनाए गए महिला स्व सहायता समूहों को अध्ययन हेतु लिया गया है।

प्रतिदर्श संरचना - ऐसे समूह व गांवो का चयन सविचार निदर्शन के द्वारा विकासखण्डवार किया गया और ऐसे गाँवों को चुना गया जिनकी जनसंख्या 1000 से 2000 के मध्य हो।

विकासखण्डवार गाँव व समूह चयन की स्थिति

विकासखण्डवार	गाँव	प्रतिशत	समूह	प्रतिशत
उज्जैन	15	28	30	30
तराना	05	11	05	05
महिदपुर	11	21	30	30
खाचरौद	03	06	05	05
घटिया	11	23	25	25
बड़नगर	05	11	05	05
कुल	50	100	100	100

समंकों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकी विधियों में, 'प्रतिशत' ''सहसम्बन्ध'' एवं

• शोधार्थी, वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

सार्थकता परीक्षण हेतु 'काई-वर्ग' का उपयोग किया गया। शोध पत्र दोनो ही प्रकार के समंको पर आधारित है।

महिला स्व सहायता समूह की कार्यप्रणाली- महिला स्वसहायता समूह का गठन एवं विकास एक प्रक्रिया के रूप में होता है इसलिए सामुदायिक कार्यकर्ताओं तथा समूह के सदस्यों के लिए आवश्यक है कि वह इस विकास प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में निहित विभिन्न गतिविधियों को भली भाँति समझते हुए अपनी भूमिका अदा करें। महिला स्व सहायता समूह की आत्मा नियमित बैठकों में निवास करती है। अत: निश्चित अंतराल से समूह की नियमित बैठक होना आवश्यक है। यह अंतराल प्रति सप्ताह/पाक्षिक/माह हो सकता है। बैठक में समूह की सभी महिलांए उपस्थित रहे यह प्रयास किया जाए। समूह की बैठक ईश्वर की वन्दना या प्रेरणा गीत से प्रारंभ होना चाहिए ताकि कार्य शान्तिपूर्वक निष्ठा से निष्पादित हों। समूह की बैठकें लोकतांत्रिक ढंग से हो यह आवश्यक है अर्थात् सभी सदस्यों को अपने विचार-विमर्श के बाद आम सहमति से निर्णय लिए जाएं। प्रत्येक सदस्य द्वारा की गई बचत एवं दिए गए ऋण की राशि के बारे में भी अनिवार्य रूप से नियमित बैठकों में बताया जाए। समूह के सदस्य अपना रिकार्ड स्वयं रख सकें, उसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। यदि समूह के सभी सदस्य अशिक्षित है तो यह दायित्व सदस्यों के परिवार के किसी शिक्षित व्यक्ति को दिया जा सकता है।

तालिका क्र 1

नियमित बैठक के आधार पर वर्गीकरण

क्रं.	नियमित बैठक में हिस्सा लेती है	उत्तरदाताओं की संख्या				कुल	प्रतिशत
		ग्रामीण	प्रतिशत	शहरी	प्रतिशत		
1	हाँ	190	95	180	90	370	85
2	नहीं	10	5	20	10	30	15
	कुल	200	100	200	100	400	100

तालिका क्र. 2

बैंक से संयोजन की स्थिति

क्र.	बैंक में खाता खुला है	उत्तरदाताओं की संख्या				कुल	प्रतिशत
		ग्रामीण	प्रतिशत	शहरी	प्रतिशत		
1.	हाँ	195	97.5	194	97	389	97.25
2.	नहीं	05	2.5	6	3	11	2.75
	योग	200	100	200	100	400	100

स्रोत- सर्वेक्षण से प्राप्त समंको के आधार पर

तालिका क्रमांक 2 में बैंक से महिला स्वसहायता समूह की संयोजन स्थिति को दर्शाया गया है। कुल 97.25 प्रतिशत महिलाओं का बैंक में खाता खुला हुआ है और 2.75 प्रतिशत महिलाओं ने बैंक में खाता नहीं खुलवाया है।

निष्कर्ष - महिला स्वसहायता समूह की महिलाओं का सर्वेक्षण के दौरान जानकारी मिली कि वे जिन आर्थिक चिंताओं से ग्रस्त थी उनकी संतुष्टि उन्हें रोजगार क्षेत्र में प्राप्त हुई महिलाऐं अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करने के लिए स्वरोजगार कर रही है जैसे दोने पत्तल बनाना,

अगरबत्ती बनाना, जूट, कॉटन के पर्स बनाना, सिलाई करना, बुनाई करना आदि। इन कार्यों से वे अपने परिवार के लिए आर्थिक सहायता कर सकती है, जिससे उनके परिवार की और स्वयं की आर्थिक स्थिति सुधरे। विशेष रूप से महिला स्वसहायता समूहों ने तो कोविड-19 के कठिन समय में अपने साहस से आत्मनिर्भर होने की राह खुद चुनी। महिला स्वसहायता समूहों ने बड़ी संख्या में म.प्र. के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कोरोना वायरस के संक्रमण को रोककर लोगों की जिन्दगी बचाने में अहम भूमिका अदा की। महिला स्वसहायता समूहों ने पीपीई किट्स भी तैयार किए। ग्रामीण आजीविका मिशन ने ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निर्धन परिवारों की महिला सदस्यों को स्वसहायता समूहों से जोड़कर उनके सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण के प्रयास किए है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. एम. गुरूलिंगा, रोल ऑफ एन.जी.ओ. इन इम्प्रवमेंट ऑफ वूमन इन कर्नाटक, कुरूक्षेत्र, 2002
2. भरत डोंगरा, वूमन सेल्फ हेल्प ग्रुप, केण्डलगिं स्प्रीट ऑफ इन्टरप्रेनरशिप कुरूक्षेत्र, 2002
3. मे. एन. विलाम्बा, वूमन माईग्रेंट वर्कस ट्रांसफामिंग लोकल कम्यूनिटीस डेवलमेंट, वाल्यूम 45 नं. 4 मार्च 2002
4. अंजू गुप्ता एण्ड गुप्ता, प्रमेत सेल्फ हेल्प ग्रुप-एफ फ्रेण्ड ऑफ पुअर, पॉलीटिकल इकॉनामी जनरल ऑफ इण्डिया, 2003
5. माधवी पाटीदार, ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक सशक्तिकरण में स्व.सहायता समूह की भूमिका एक अध्ययन : (झाबुआ जिले की महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में), 2008

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

सेलफोन का सामाजिक जीवन पर प्रभाव (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

•मधुलिका श्रीवास्तव
•राकेश तिवारी

सारांश- भारतीय समाज की सबसे बड़ी भूमिका है, सामाजिक संबंधों में घनिष्ठता का होना। विश्व पटल पर भारत सामाजिक संबंधों को बनाए रखने एवं बरकरार रखने के लिए प्रसिद्ध है और यह संबंध बनाने एवं निर्वाह करने की परंपरा सदियों से भारत की विशेषता विद्यमान रही है। सामाजिक संबंधों को निर्वहन करने में विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ एवं सामाजिक संस्कृतियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती आई हैं। सामाजिक संस्था में विवाह एक ऐसी संस्था है, जो अनेक रिश्तों का निर्माण करती है तथा उन रिश्तों को सामाजिक रूप से निर्वहन करने का उत्तरदायित्व भी निभाती हैं। इन्हीं दूरियों को वर्तमान में कम करने में सेलफोन की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस शोध पत्र में सेल फोन का सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द- सामूहिक समर्थन, सामाजिक पहचान

प्रस्तावना- भारतीय समाज में संस्कृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार से अभौतिक संस्कृति के साथ ही भौतिक संस्कृति भी सामाजिक संबंधों में प्रगाढ़ता लाने में सहायक होती है। इसी भौतिक संस्कृति के अंतर्गत एक नाम आता है, सेलफोन का जिसे वर्तमान में सामाजिक संबंधों को बनाए रखने की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है।

केरी स्टाफिंग (2007)[1] ने अपने अध्ययन में बताया कि सेलफोन पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों को घनिष्ठ एवं अटूट बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। सेलफोन संबंधों को बेहतर बनाने में उपयोग किया जाने वाला दूरवाणी यंत्र है। सेलफोन सामाजिक संबंधों को मजबूत बनाने में एवं अपने अनुभवों को बांटने में भावनात्मक सहायता करता है। के.पी. श्रीवास्तव (2005)[2] के अनुसार सेलफोन का उपयोग एक व्यक्ति को सामूहिक समर्थन एवं सामाजिक पहचान दिलाने में मदद करता है। सेलफोन सामाजिक संबंधों के द्वारा हमारे पारिवारिक एवं व्यक्तिगत संबंधों में सुधार करता है एवं सामाजिक रिश्तों को बरकरार रखने में सहायक होता है।

सेलफोन दूर-दराज के संबंधों को बनाए रखने एवं उनसे मानसिक एवं भावनात्मक रूप से जुड़े रहने में सहायता करता है। परिवार के सदस्यों से समय-समय पर सलाह लेना एवं देना दोनों सेलफोन के कारण सरल हो गया है। बोल्टन (2006)[3] एवं स्टीव जॉब्स (2012)[4] ने कहा कि सेल फोन समय के साथ चलने एवं परिवार के सदस्यों से सामाजिक रूप से जुड़े रहने में कारगर है। डेविड (2012)[5] ने कहा कि सेलफोन भौतिक संस्कृति में परिवर्तन का एक विकसित परिणाम है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया ने सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन लाया है। वर्तमान परिवेश में हमारे पास सामाजिक संबंधों को निभाने के लिए कम समय है, इस कमी को दूर करने के लिए सेल फोन महत्त्वपूर्ण संचार उपकरण के रूप में आता है।

विभिन्न शोधकर्ताओं ने सेल फोन के सामाजिक संबंधों पर प्रभाव को लेकर

• प्राध्यापक समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
•• शोधार्थी समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

अध्ययन कार्य किया जा रहा है। जिसमें सेलफोन को बरकरार रखने में मदद करता है। किसी भी स्थान एवं किसी भी समय किसी से भी संपर्क करना सेलफोन के द्वारा ही संभव हो सकता है। माता-पिता के प्रति कर्तव्य, भाई-बहनों के लिए एक सलाहकार, बच्चों के प्रति जिम्मेदारी, पति-पत्नी के लिए विश्वास एवं रिश्तेदारों के कुशलता की जानकारी, ये सभी भूमिका सेलफोन के द्वारा ही बड़ी आसानी से निर्वहन किये जाते हैं।

सामाजिक संबंध सेलफोन के आने से पहले भी सरलता से निभाये जाते थे और छोटी-मोटी बातों से प्रभावित भी होते थे किन्तु सेलफोन के आने से संपर्क की सुविधा और भी अधिक सरल हो गई है। जहाँ सेल फोन संबंधों को बनाये रखने में सहायक है वहीं सेलफोन का प्रभाव सामाजिक संबंध को बिगाड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। हर पल की जानकारी का प्राप्त होना व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करता है। पत्नियों के द्वारा पति के हर कार्य का जानना आवश्यक हो जाता है तथा माता-पिता भी अपनी बेटियों के घर-गृहस्थी में अधिक रुचि रखना तनाव का कारण बन जाता है, और यह केवल सेल फोन के कारण ही नजर आता है।

लिंग रिच (2012)[6] एवं पॉल सी. रोजेनब्लाट (2010)[7] ने अपने अध्ययन में कहा कि सेल फोन सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार एवं संबंध की आवश्यकता को कम कर दिया है। सेलफोन पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों में एक दूसरे से अलग कर रहा है। सेलफोन रिश्तों को प्रभावित कर रहा है। माता-पिता एवं बच्चों के बीच सेलफोन को लेकर वाद-विवाद होना एक आम बात हो गया है। संवाद का यह सहज माध्यम सामाजिक, पारिवारिक ही नहीं मानसिक और प्रोफेशनल परेशानियां पैदा कर रहा है। सेलफोन इतना अहम हो गया है कि परिवार के सदस्यों से कहीं ज्यादा सेल फोन आदमी के लिए जरूरी लगने लगता है।

रीड एवं रीड (2004)[8] एवं ली युंग (2008)[9] ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि सेलफोन समाज में इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है कि व्यक्ति अधिक लोगों से जुड़ने की कोशिश में सामाजिक रिश्तों को कम कर रहा है। सामाजिक संबंधों का कमजोर होना व्यक्ति की असफलता को दर्शाता है। लैरी मैजीड (2009)[10] ने अपने अध्ययन में देखा कि सेलफोन रिश्तों में कड़वाहट पैदा करता है। उन्होंने सेल फोन को परिवार से अलग रखने का सलाह दिया है ताकि रिश्तों में मधुरता बरकरार रहे। इस प्रकार से देखा जाए तो सेलफोन सामाजिक संबंधों को दोनों प्रकार से प्रभावित कर रहा है, संबंधों को जोड़ने में भी तथा संबंधों को तोड़ने में भी सेल फोन अहम भूमिका निभा रहा है। सेलफोन एक उपयोगी संचार साधन है, इसे उपयोग के लिए सोच-समझ एवं कुशलता की आवश्यकता होती है ताकि सेलफोन के लाभ तो मिलते रहे लेकिन सामाजिक संबंध नकारात्मक रूप से प्रभावित न हो।

सेलफोन का सामाजिक संबंधों पर प्रभाव को जानने के लिए सर्वप्रथम उत्तरदाताओं के मूल निवास स्थान एवं उनके रिश्तेदारों के संबंध में जानना आवश्यक है, क्योंकि आजकल एकाकी परिवार का प्रचलन है। परिवार के शेष रिश्तेदार एक ही शहर या दूसरे शहर या गांव में रहते हैं। कभी-कभी नौकरी के सिलसिले में भी व्यक्ति को अपना मूल निवास स्थान को छोड़ना पड़ता है। उपरोक्त परिस्थितियों में व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों से किस प्रकार संपर्क साधे। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रारम्भ में इसी बात को जानने का मुख्य प्रयास किया गया है। तत्पश्चात सेल फोन के सामाजिक संबंधों पर प्रभाव को ज्ञात किया गया है।

उत्तरदाताओं का मूल निवास स्थान - प्रत्येक व्यक्ति का एक मूल निवास स्थान होता है। कभी-कभी व्यक्ति अपने मूल निवास स्थान पर आजन्म निवास करता है किन्तु

कभी-कभी उसे मूल निवास स्थान से बाहर जाना पड़ता है। मूल निवास स्थान के संबंध में रितु सेन ने लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति का किसी न किसी समुदाय से संबंध रहता है और यही समुदाय उसका मूल स्थान होता है।[11] मूल निवास स्थान व्यक्ति का जन्म स्थल होता है। भारतीय समाज में मूल निवास स्थान का बहुत महत्त्वपूर्ण है। विवाह के समय दोनों पक्षों का मूल निवास स्थान को पूछा जाता है विभिन्न जाति समूह एवं जनजाति समूह अपने मूल निवास स्थान के नाम से ही पहचाने जाते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन रीवा नगर निगम क्षेत्र के विशेष संदर्भ में प्रस्तुत है। उत्तरदाता समूह में कुछ उत्तरदाता का मूल स्थान रीवा शहर ही है किन्तु कुछ उत्तरदाता रीवा शहर के बाहर ग्रामीण क्षेत्रों के मूल निवासी हैं और कुछ शहर के आस-पास के मूल निवासी हैं। उत्तरदाताओं के मूल निवास स्थान संबंधी जानकारी को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका क्रमांक -1

उत्तरदाताओं का मूल निवास स्थान

क्र.	मूल निवास स्थान	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	रीवा नगर निगम	130	65
2.	रीवा ग्रामीण क्षेत्र	40	20
3.	शहर के आस-पास	30	15
	योग	200	100

उपरोक्त तालिका में उत्तरदाताओं से प्राप्त उनके मूल निवास स्थान संबंधी आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 65 प्रतिशत उत्तरदाता का मूल निवास स्थान रीवा नगर निगम ही है। 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने रीवा के ग्रामीण के बाहर अपना मूल निवास स्थान का होना बताया शेष 15 प्रतिशत उत्तरदाता रीवा नगर निगम आस-पास के मूल निवासी हैं किन्तु कार्य क्षेत्र रीवा शहर के नगर के अंदर होने के कारण यहीं निवासरत है।

अत: सर्वाधिक उत्तरदाता अध्ययन क्षेत्र रीवा नगर निगम क्षेत्र के मूल निवासी हैं, किन्तु उनके रिश्तेदार ग्रामीण क्षेत्र एवं आस-पास के बाहर निवास करते हैं।

मूल निवास स्थान में परिवार के सदस्य - सामाजिक जीवन रिश्तों के डोर से बंधी होती है। व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों से संवेगात्मक रूप से जुड़ा होता है। आधुनिक संघर्षशील जीवन में परिवार के सभी सदस्यों का साथ-साथ रहना संभव नहीं है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति को अपने मूल निवास स्थान से गांव जाना पड़ता है, ऐसी परिस्थिति में परिवार के शेष सदस्य मूल निवास स्थान पर ही रहते है। मूल निवास स्थान में माता-पिता, भाई-बहन, दूर के रिश्तेदार रहते है, कभी-कभी पत्नी एवं बच्चे भी मूल निवास स्थान में ही रहते है।

उत्तरदाताओं के मूल निवास स्थान पर परिवार के कौन-कौन से सदस्य रहते हैं, इस संबंध में प्राप्त तथ्यों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है-

तालिका क्रमांक - 2

मूल निवास स्थान में परिवार के सदस्य

क्र.	परिवार के सदस्य	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	माता-पिता एवं भाई-बहन	95	47.5
2.	दूर के रिश्तेदार	80	40
3.	अन्य	25	12.5
	योग	200	100

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 47.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मूल निवास स्थान में उनके माता-पिता एवं भाई-बहन रहते हैं। 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मूल निवास स्थान में उनके दूर के रिश्तेदार निवासरत हैं तथा 12.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया है कि उनके मूल निवास स्थान में उनके अन्य अर्थात तृतीयक श्रेणी के रिश्तेदार रहते हैं। तृतीयक श्रेणी के रिश्तेदार से आशय है भाई-बहनों के ससुराल पक्ष एवं वे रिश्तेदार जिनसे खून का संबंध नहीं होता किन्तु वे सामाजिक संबंधों के अंतर्गत आते हैं।

मूल निवास स्थान में हमेशा आना जाना - अपने मूल निवास स्थान से प्रत्येक व्यक्ति का हमेशा लगाव रहता है। चाहे वह वहां कम समय बिताया हो या अधिक समय तक रहा हो, जो परिवार या जिस परिवार का व्यक्ति अपने मूल निवास स्थान से अन्य स्थान में भ्रमण किया हो उसका अपने मूल निवास स्थान में जाना-आना होता ही रहता है। परिवार का साथ एवं संपर्क ही सामाजिक जीवन का आधार होता है। व्यक्ति की मूलभूत जरूरतों में परिवार की सर्वाधिक आवश्यकता होती है और परिवार अपने पैतृक निवास स्थान से जुड़ा होता है।

शोधाध्ययनान्तर्गत उत्तरदाताओं में जिन उत्तरदाताओं का मूल निवास स्थान रीवा नगर निगम के बाहर है इनका वहां हमेशा जाना-आना लगा रहता है या नहीं इस संबंध में शत प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनका मूल निवास स्थान में हमेशा आना जाना होता है। अत: सभी उत्तरदाता अपने मूल निवास से जुड़े हुए हैं।

रिश्तेदारों से संपर्क का स्वरूप- संपर्क, संबंध का पर्याय रूप है। जितना अधिक किसी से संपर्क होगा, उतना ही अधिक संबंध मजबूत बनेगा। वर्तमान समय में संचार के विकसित साधनों ने संपर्क को अत्यधिक आसान बना दिया है। पहले पास एवं दूर के रिश्तेदारों से संपर्क बनाने के लिए स्वयं जाना पड़ता था या किसी मध्यस्थ को इस कार्य हेतु चयन किया जाता था। इसके धन एवं समय दोनों अधिक खर्च होते थे। सन् 1854 में विधिवत डाक सेवा अस्तित्व में आया। तब पत्र व्यवहार के द्वारा रिश्तेदारों से संपर्क किया जाता था तब भी समय अधिक लगता था। फिर सन् 1855 टेलीग्राम संचार, संप्रेषण में शामिल हुआ जो अंग्रेजी भाषा में सेवा प्रदान करता था। सन् 1980 में हिन्दी भाषा में टेलीग्राम सेवा प्रारंभ हुआ यह भी डाक सेवा के अंतर्गत आता था।

ग्राह्मवेल ने सन् 1876 में टेलीफोन का अविष्कार करके संपर्क को और भी अधिक आसान बना दिया। घर बैठे दूर के रिश्तेदारों से संपर्क तत्काल होने लगा। संपर्क के इस कड़ी में मार्टिन कूपर ने सन् 1973 में सेलफोन (मोबाइल) का आविष्कार कर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में संचार क्रांति का बिगुल बजाया, जिसने सामाजिक संपर्क को सहज बना दिया।

वर्तमान में सेल फोन के द्वारा संपर्क अधिक किया जाता है। अपने सभी रिश्तेदारों से सेल फोन पर भी संपर्क करके सामाजिक संबंधों की भूमिकाएँ बखूबी निभायी जाती हैं। रीचर्ड (2004)[12] एवं वाटसन (2008)[13] ने अपने अध्ययन में इस बात को सही ठहराया है कि अधिकांश लोग सेलफोन के द्वारा ही अपने रिश्तेदारों से संपर्क करते हैं। मोबाइल फोन कम खर्च एवं कम समय में अधिक से अधिक लोगों से संपर्क करने में मदद करता है।

ताजोरा एक्सेल (2011)[14] ने बताया कि सेलफोन द्वारा संपर्क करना दूर रहकर भी करीब होने का अहसास दिलाता है। इसलिए सेलफोन पर रिश्तेदारों से संपर्क करना आत्मिक संतुष्टि प्रदान करता है।

सामाजिक जीवन में रिश्तेदारों से संपर्क बनाने के विभिन्न तरीके हैं। उत्तरदाताओं

के द्वारा इस संबंध पर प्राप्त तथ्यों को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है कि–

तालिका क्रमांक –3

रिश्तेदारों से संपर्क का स्वरूप

क्र.	रिश्तेदारों से संपर्क	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	पत्र व्यवहार के द्वारा	3	1.5
2.	स्वयं जा कर	65	32.5
3.	सेल फोन से बात करके	132	66
योग		200	100

रिश्तेदारों से संपर्क का स्वरूप- उक्त तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 66 प्रतिशत उत्तरदाता रिश्तेदारों से संपर्क करने के लिए सेलफोन का उपयोग करते हैं। 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता स्वयं जाकर रिश्तेदारों से संपर्क करते हैं। शेष 1.5 प्रतिशत उत्तरदाता पत्र व्यवहार के द्वारा अपने रिश्तेदारों से संपर्क स्थापित करते हैं। वर्तमान में पारिवारिक रिश्तेदारों के घर जाकर संपर्क करने में कमी आना इस बात को दर्शाता है कि सेलफोन रिश्तेदारों से संपर्क का आसान माध्यम है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि शोध पत्र के अध्ययन से दृष्टिगोचर होता है कि उत्तरदाताओं में जिन उत्तरदाताओं का मूल निवास स्थान रीवा नगर निगम के बाहर है इनका वहां हमेशा जाना–आना लगा रहता है या नहीं इस संबंध में शत प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनका मूल निवास स्थान में हमेशा आना जाना होता है। वर्तमान में पारिवारिक रिश्तेदारों के घर जाकर संपर्क करने में कमी आना इस बात को दर्शाता है कि सेलफोन रिश्तेदारों से संपर्क का आसान माध्यम है। जिससे समाज में सामजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक तथा अन्य गतिविधियों में सेलफोन का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा जिससे एक दूसरे से आसानी से सम्पर्क में रहकर अपनी गतिविधियों को सुचारू रूप से संचालित कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. केरी, स्टाफिंग (2007); पारिवारिक रिश्तों में सेल फोन की भूमिका, MMM और GSM एसोसिएशन (gsma) 23 ब्राइटन, यूके, पृ. 43–47.
2. श्रीवास्तव, के.पी.(2005) सामाजिक संबंध एवं सेल फोन, शोध पत्र, Vol.(5)No.3, पृ. 162–166.
3. बोल्टन, (2006); सेल फोन का सामाजिक संबंधों पर प्रभाव, सूचना संचार सोसायटी, ब्रिटेन, पृ. 56.
4. स्टीव जॉब्स, (2006); स्वस्थ प्रौद्योगिकी के साथ अपने परिवार का संबंध, शोध प्रबंध, सन फ्रांसिसको विश्वविद्यालय, पृ. 89.
5. डेविड (2012); सेल फोन प्रौद्योगिकी और रिश्ते, सामाजिक आंदोलन और शिक्षा पर प्रभाव, न्यू मीडिया सोसायटी स्वीडन, 12(1), पृ. 13–14.
6. लिंग, रिच, (2012); नई तकनीकी, नये संबंध, न्यू मोबाइल संचार, वर्ल्ड प्रेस, संगठन पृ. 102–105.
7. पॉल, सी. रोजेनब्लाट (2010); सेल फोन के उपयोग से परिवार के रिश्तों को खतरा, यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा, पृ. 67.
8. रीड, एवं रीड (2004); सेल फोन का सामाजिक संबंधों पर नकारात्मक प्रभाव, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, 3 (Vol) पृ. 201–203.

9. ली युंग, (2008); अवकाश में सेल फोन की लत, s.b. संचार बार्न्स-ईस, न्यूयार्क, रूटलेज पृ. 359-381.
10. लैरी, मेजीड, (2009); जीवन के लिए प्रौद्योगिकी एवं रिश्ते, शोध पत्र, CBSA अमेरिका, पृ. 564-569.

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

वैदिक कालीन समाज में महिलाओं के अधिकार

• नीरज गंगवार

सारांश- ऋग्वैदिक समाज महिलाओं के अधिकारों का खजाना था इसलिए दयानंद सरस्वती ने कहा था 'वेदों की ओर' लौटो क्योंकि उस समाज में महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्त थी, वह शिक्षा की अधिकारी थी, विवाह अपनी पसंद से कर सकती थी, विवाह करना है या नहीं करना है इस बात का निर्णय स्वयं कर सकती थी, उन्हें ऋग्वेद में ऋचाएं लिखने तथा शिक्षिका बनने का भी अधिकार प्राप्त था। मुख्य रूप से उसे राजनीति में इतने अधिकार दिए गए थे, जितने आज भी नहीं दिए गए हैं वह राजनीतिक संस्थाओं में भाग ले सकती थी तथा उसमें बोल सकती थी तथा न्याय करने और युद्ध आदि में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इसलिए वैदिक समाज को आदर्श समाज माना जाता है, जिसमें महिलाओं के कर्त्तव्यों के साथ अधिकार भी दिए गए हैं, आज के समाज को वैदिक समाज से सीखने की आवश्यकता है जिससे महिलाओं को उनके पूर्ण अधिकार मिल सके।

मुख्य शब्द- ऋचाएं, राजनीतिक संस्था, वैदिक समाज, कर्त्तव्य

प्रस्तावना- महिलाएं सम्पूर्ण मानव समाज की आधारशिला रही हैं, क्योंकि यह समाज की विद्यमानता था और निरन्तरता के लिए अनिवार्य भी था कि महिलाओं को समाज में मुख्य स्थान दिया जाये। जिस समाज में महिलाओं का सम्मान होता है उस समाज में देवताओं का निवास होता है। भारतीय समाज में महिलाओं के संघर्ष- विघर्श, विकास-ह्रास, उदय-विलय तथा अप्रतिष्ठा-प्रतिष्ठा की एक लंबी कहानी रही है।[1] विश्व में चाहे कोई भी सभ्यता हुई उन सब में भारतीय सभ्यता में महिलाओं को सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त था, वह अपने त्याग तपस्या के बल पर समाज को प्रकाशमान करती रही हैं। महिलाएं, पुत्री, पत्नी व माता के रूप में समाज में अपने कर्त्तव्यों को करती हुई दिखाई गई हैं। वैदिक कालीन साज में संयुक्त परिवार की प्रथा थी, जिसमें माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री आदि के साथ ही साथ अन्य सम्बन्धी भी रहते थे, वह साथ-साथ भोजन करते, धार्मिक कार्य करते सभी का सम्पत्ति पर समान अधिकार होता था। परिवार पितृसत्तात्मक होते थे, इसीलिए महिलाओं को कर्त्तव्य तो अधिक करने होते, किन्तु अधिकार स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं देते थे वैसे तो अधिकार और कर्तव्य सिक्के के दो पहलू हैं एक के बिना दूसरा अधूरा है। किन्तु महिलाओं को बाल्यकाल में ही कर्त्तव्य को करने की शिक्षा दी जाती है उसे बताया जाता है कि उनका परिवार व समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं। किंतु उन्हें यह नहीं बताया जाता है कि उसके क्या-क्या अधिकार है। फिर भी वैदिककालीन समाज में महिलाओं को शिक्षा, विवाह, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण अधिकार दिये गये थे। उस समय में महिलायें पुरूषो से कम न थी। वे वेद में ऋचायें भी लिखा करती थी तथा स्वतन्त्र रूप से जीवन जीती थी। उन्हें विचार रखने, भ्रमण करने तथा जीवन साथी को चुनने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक समाज में महिलाओं को अन्य काल से अधिक अधिकार प्रदान थे।[2] वैदिक कालीन समाज में महिलाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई थी, उसके जन्म लेने पर पुत्र की भाँति नामकरण किया जाता था। अतः उसे यह अधिकार प्राप्त था कि उसका नामकरण संस्कार किया जायें इससे स्पष्ट होता है कि पुत्र

• एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली (उ.प्र.)

की भाँति उसके भी संस्कार किए जाते थे। महिलाओं को पुरूष की भाँति तो अधिकार नहीं दिये गये थे। फिर भी वैदिक काल में महिलाओं को बहुत अधिकार दिये गये थे, ऋग्वेद में कन्या को दुहित कहा गया, ऐसा माना जाता है कि कन्या दूध दुहने का काम करती थी। गौ की रक्षा करने का मुख्य कार्य का अधिकार कन्या के हाथ में ही होता था, इस तरह दूध, दही, घी आदि की व्यवस्था करने का अधिकार उसके ही हाथ में रहता था।[3]

वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था वह पुरूष की भाँति शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। ऋग्वेद में उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता 'ब्रहाचारी' शब्द मिलता है, इसको धर्म का अध्ययन करने के अर्थ में प्रयुक्त समझा जाता है। इस तरह ब्रहाचारी का अर्थ है 'आत्मसंयम से रहना', अत: विद्यार्थी जीवन में ही संयम से रहा जाता था, ऋग्वेद में उल्लेंख मिलता है कि ब्रहाचर्य के द्वारा कन्या जवान पति को प्राप्त करती है। अत: कन्या को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था वह वैदिक मन्त्रों का अध्ययन करती थी। उनका भी उपनयन संस्कार किया जाता था और गुरूकुल में रहकर अध्ययन कार्य करती थी। ऋग्वेद में कहीं स्थानों पर विदुषी महिलाओं ने ऋचाओं की रचना कि थी जैसे विश्ववारा ऋग्वेद के एक सूक्त 5/58 की रचयिता थी, उसने अन्य कई सूक्तों की रचना की थी। इसमें अग्नि देवता भी प्रशंसा की गयी है, विश्ववारा ऐत्रयी परिवार की कन्या थी। इसीलिए ऋग्वेद का पंचम मण्डल ऐत्रेयी मण्डल के नाम से जाना जाता है।[4]

ऋग्वेद में अपाला नामक विदुषी महिला का उल्लेख है जिसने 8/9 सूक्त की रचना की थी। यह सात चरणों में विभक्त है यह सभी इन्द्र देवता को समर्पित है। इसी प्रकार घोषा काक्षीवती ऋग्वेद के दशम मण्डल के 10/39–40 सूक्तों की रचियता थी। लोपामुद्रा को अगस्त्य के साथ स्तुतिगान रचित करने का श्रेय प्राप्त है।[5] काक्षीवान की एक पत्नी रोमशा थी, उन्होंने भी ऋग्वेद में सूक्तों की रचना की थी, वही सविता की पुत्री सूर्या भी एक विदुषी थी। जिसने सोम के साथ अपने विवाह सम्बन्ध को स्पष्ट किया था। इसी प्रकार वसुकार की पत्नी इंद्राणी ऋग्वेद के दशम मण्डल में अनेक स्तुतिगान तथा श्लोको को रचा था। इस तरह ऋग्वेद में महिलाओं को अध्ययन की पूर्ण स्वतन्त्रता दी हुई थी उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त थे कि वह अध्ययन करें रचना लिखे अपने विचारों को व्यक्त करें वह पुरूष की भाँति गुरू के समीप रहकर शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारिणी थी।[6]

वैदिक कालीन समाज में महिलाओं को विवाह के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता प्राप्त थी, वह अविवाहित भी रहने की अधिकारी थी। तथा अपने पंसद का वर चुन कर विवाह भी कर सकती थी। कन्या का विवाह पूर्ण युवा होने पर किया जाता था तथा ऋतुमती के बाद ही विवाह किया जाता था कुमारी सूर्या का उदाहरण मिलता है कि उसने अपनी पसंद से अश्विनीद्वय को अपने पति के रूप में चुना था। सभ्य व सुसंस्कृत महिला अनेक पुरूषों में से एक को अपने पति के रूप में चुनने की अधिकारिणी होती थी। कहीं–कहीं उदाहरण मिलते है कि स्वयंवर प्रथा भी संभवत: वैदिक काल में प्रचलित थी। किन्तु ऐसा माना जाता था कि जो कन्या विवाह करती है, वह अपने पिता को स्वर्ग का भागी बनती है क्योंकि कन्यादान का अधिकार वह अपने पिता को प्रदान करती है। यह उसके लिए सौभाग्य की बात होती थी।[7]

वैदिक काल में अंतरजातीय विवाह भी होते थे, ऋग्वेद में ऋषि च्यवन का विवाह राजकुमारी सुकन्या के साथ हुआ था। ऋग्वेद में भ्रातहीन होने पर महिला का विवाह नहीं करना चाहिए, शास्त्रकारों ने अभ्रातमती कन्या से विवाह करने को निषेध किया है ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि अन्य व्यक्ति से उत्पन्न पुत्र अपना नहीं होता, उसे प्रमादी लोग ही

अपना मानते है। ऐसी स्थिति में पुत्र के अभाव में अपनी औरस कन्या को ही उत्तराधिकारी पिता के द्वारा बनाना चाहिए। ऋग्वेद में अनेक कन्याओं के उदाहरण मिलते है जिन्होने विवाह नहीं किया और आजीवन पिता के घर में रहकर अध्ययन कार्य में लगी रही।[8] अपाला, घोशा ऐसी विदुषी महिलाएं थी जिन्होंने विवाह नहीं किया। ऐसी कन्याओं को 'अमाजु कन्या' कहा जाता था। इन कन्याओं को ऋग्वैदिक समाज में यह अधिकार प्रदान किए थे कि वह आजीवन अविवाहित रहें सके।[9]

ऋग्वैदिक समाज में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान था, विवाह के अवसर पर वधू को यह आशीर्वाद दिया जाता था कि तुम गृह की साम्राज्ञी बनों। विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तान की प्राप्ति को माना जाता था। महिला को ईश्वर का आर्शीवाद प्राप्त है कि सन्तान की उत्पत्ति उसके अधिकार में है। वह इस मानव जाति को उत्पन्न करने की अधिकारिणी है। ऋग्वेद काल में तलाक लेने का महिला को अधिकार था, उसका पति बीमार, नपुंसक, विदेश में रहने वाला, सन्यासी या दुराचारी हो तो वह उससे तलाक ले सकती थी। पति की मृत्यु होने पर भी पत्नी की स्थिति दयनीय नहीं होती थी, उस समय में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था।[10] उस समय में कुछ विधवा विवाह नहीं किया करती थी। किन्तु उन्हें पति की सम्पत्ति का अधिकार नहीं मिलता था। फिर भी वह विवाह न करके अपना जीवन जीने के लिए स्वतन्त्र अधिकार रखती थी। कहीं-कहीं इस बात का उल्लेख मिलता है कि पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को सम्पत्ति में अधिकार दिया जाये, पुत्र विहीन विधवा को सम्पत्ति के अधिकार को स्पष्टता से उल्लेख नहीं किया गया है। किन्तु वह पति की सम्पत्ति के भोग की अधिकारिणी अवश्य होती थी[11]

विधवा होने पर महिलाओं के पास दो अधिकार प्राप्त थे, वह पुर्नविवाह कर सकती थी या वह नियोग प्रथा के द्वारा सन्तान की प्राप्ति करती थी, जिसके पालन पोषण में अपना जीवन लगा देती थी। जो विधवा पुर्नविवाह करती थी उसे 'पुनर्भ' कहा जाता था किन्तु, ऋग्वैदिक समाज में नियोग प्रथा का अधिक प्रचलन था, जिस महिला के सन्तान न हो और उसके पति की मृत्यु हो जाये तो वह अपने देवर या अन्य निकट सम्बन्धी से सन्तान प्राप्त कर सकती थी, इस प्रथा को ही नियोग प्रथा कहा जाता था। ऋग्वैदिक काल में बहुपति प्रथा का प्रचलन नहीं था किन्तु बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन था, पत्नी पति की मृत्यु के बाद ही दूसरा विवाह कर सकती थी।[12]

ऋग्वैदिक समाज में विवाह को एक धार्मिक संस्कार समझा जाता था। इसमें महिला को विवाह करने व न करने तथा वर का चुनाव करने के अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार महिलाएँ अपनी इच्छा अनुसार अपना जीवन साथी चुन सकती थी। अर्न्तजातीय विवाह के भी उदाहरण मिलते है।[13] विवाह के समय दहेज तो नहीं दिया जाता था किन्तु पिता अपनी पुत्री के लिए उपहार दिया करता था उपहार में गाय दी जाती थी। जब कन्या अपना जीवन साथी चुनती थी, तो विवाह योग्य धनवान युवक वस्त्र और सुवर्णमय अलंकारों से अपने शरीर को सजातें थे, जिससे प्रभावित होकर उनसे विवाह के लिये हां कर दे, इससे यह सिद्ध होता है कि विवाह करने या न करने का निर्णय कन्या को ही होता था। पुरूष की उसमें नहीं चलती थी। विभद और कमध ने स्वयंवर प्रथा के द्वारा विवाह किया था। ऋग्वेद में उदाहरण मिलते है कि कन्या की बिक्री भी हो सकती थी। अयोग्य वर कन्या के पिता को अधिक धन देकर कन्या को खरीद सकता था। इस प्रकार का विवाह असुर विवाह कहा जाता था समाज में इस बात का प्रचलन था कि छोटी बहन हमेंशा बड़ी बहन से बाद में ही विवाह करे। यदि छोटी बहन का विवाह बड़ी बहन पहले हो जाये तो बड़ी बहन 'दिधिशु' और उसका पति 'दिधिशु पति' कहा जायेगा।[14]

वैदिक आर्य सुरक्षित व समृद्ध गृहस्थी व अधिक संतति की इच्छा रखते थे, इसलिये वह विवाह को अधिक महत्व दिया करते थे, वैदिक समाज में विवाह को एक संस्कार माना जाता था। इसलिये विवाह करना व्यक्ति का कर्त्तव्य होता था, परन्तु किसी भी प्रकार को कोई बन्धन नहीं था। जब समाज में तीन ऋणों का प्रचलन हुआ था तो विवाह का महत्व अधिक बढ़ गया अव यह व्यक्ति का धार्मिक कर्त्तव्यमाना जाने लगा। पितृ ऋण से मुक्ति विवाह करके संतान प्राप्त करके ही की जा सकती थी। एकाकी पुरूष स्त्री की कामना करता है जिसके मिलने से वह संतान उत्पन्न कर सकें, वह धन को प्राप्त करके कर्म कर सके यदि वह उसे प्राप्त नहीं करता तो वह अपने आपको अपूर्ण ही मानता है। वह कहता है, कि मन ही उसकी आत्मा है, वाणी स्त्री है, प्राण संतान है और नेत्र मनुष्य के वित्त है। इस प्रकार महिला व पुरूष दोनों को विवाह द्वारा पूर्णत: मिलन है। विवाह करना उनका विशेषाधिकार था।[15]

वैदिक संहिता में यज्ञ का महत्वपूर्ण स्थान है उस समय में सम्पूर्ण भारतीय जन जीवन यज्ञ भावनाओं से ओतप्रोत था महिलाओं को धार्मिक अधिकार प्राप्त था, वह स्वतंत्र रूप से धार्मिक कार्य किया करती थी। कोई भी पुरुष अपनी पत्नी के बिना यज्ञ नहीं कर सकता था उसका यज्ञ तभी पूर्ण माना जाता था जब वह अपनी पत्नी को साथ लेकर करता था ऋग्वैदिक मंत्रों में 'शुद्वा:', 'पूता' तथा 'यज्ञीय', महिलाओं के लिए कहा गया, जिन का अर्थ है महिलाएं समाज में यज्ञ कराना, भाग लेने तथा अपनी योग्यता अनुसार यज्ञ करने की अधिकारी नहीं होती थी। उस समय में विदुशी नारी यज्ञाधिकार से वंचित न थी उसे अध्ययन मनन चिंतन की पूर्ण स्वतंत्रता थी, उस समय में ब्रह्म वादिनी शास्त्रार्थ कुशल नारियों के नाम मिलते है।[16]

समाज में पति-पत्नी संयुक्त रूप से अनुष्ठानों को किया करते थे ऋग्वेद के पंचम मंडल में तथा प्रथम मंडल में 27वें सूक्त में संयुक्त रूप से यज्ञ करने का उल्लेख है। ऋग्वेद में उदाहरण मिलता है कि विश्ववारा एक विदुषी महिला थी जो प्रतिदिन प्रात: स्वयं यज्ञ करती थी। इसी प्रकार ऋग्वेद के आठवें मंडल के 91वें सूक्त में पता चला है कि एक कन्या यज्ञ में देवराज इंद्र को सोमरस प्रदान करती थी। गृहस्थ जीवन में संपत्ति में भोग पति-पत्नी समान रूप से अधिकारी होते थे "नमो व पितरों" पितरों शब्द माता-पिता दोनों के लिए आया है जिसमें ब्रह्-ज्ञान के लिए प्रार्थना की गई है इसी प्रकार ऋग्वेद में महिला को चतुश्कपर्दा कहा गया जिसका अर्थ होता है यज्ञीय वेदी के निर्माण को कुशलता से करने वाली महिला उसे यज्ञ कार्यों का पूर्ण ज्ञान था सभी सामग्री व क्रिया में काम आने वाले सामान को महिला के द्वारा ही पूर्ण किया जाता था उसे यज्ञ करने, कराने का अधिकार जन्म से ही प्राप्त था[17]

वैदिक समाज में महिलाएं शिक्षित थी वह वैदिक मंत्रों उच्चारण को आसानी से कर सकती थी वैदिक काल में पूजा के लिए मंदिर व मूर्तियां नहीं होते थे इसलिए देवी देवताओं की आराधना करने का एकमात्र उपाय यज्ञानुष्ठान ही होते थे, इसलिये उपनयन संस्कार के बाद महिलाएं वैदिक मंत्रों की ही तो शिक्षा लिया करती थी, वह पुरुषों के भांति सन्ध्योपासना भी करती थी वैदिक काल में महिलाएं धार्मिक कार्य में बहुत अधिक रुचि लिया करती थी पत्नी के बिना पति के किसी भी धार्मिक कार्य की पूर्ति नहीं होती थी ऋग्वेद में गृह प्रवेश के समय यह कहा गया है कि पति पत्नी वृद्धावस्था तक देव पूजा करें और धार्मिक कार्यों को साथ में करते हुए स्वर्ग को प्राप्त करें। महिलाएँ अच्छा पति मिले इसके लिए भी प्रार्थना किया करती थी। वही जिस महिलाओं का विवाह हो जाता था वह अपने दाम्पत्य - जीवन को सुखी बनाने के लिऐ धार्मिक क्रियाएं करती थी। वह पुत्र प्राप्ति के लिए भी तथा सुखी प्रसव के लिए धार्मिक कार्य करती थी। वैदिक समाज में महिलाएं अच्छी खेती के लिये भी अनेक

प्रकार के धार्मिक कार्य करती थी। चैत्र मास के तीसरे दिन कन्या देवी गौरी की पूजा किया करती थी। वह सभी मिलकर समान मन्त्र बोलती थी तथा अच्छी फसल होने की कामना किया करती थी, महिलाए, यज्ञ स्थल में कुटिया बनाती थी तथा यज्ञ के लिए दूध के लिए गाय की व्यवस्था किया करती थी।[18]

महिलाओं द्वारा केवल देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञों को करने का ही अधिकार नहीं था बल्कि वह शत्रु को समाप्त करने वाले यज्ञ भी किया करती थी विदुषी महिलाएँ यज्ञ में निमंत्रित की जाती थी यज्ञ भूमि का सारा प्रबंध महिलाओं के द्वारा ही किया जाता था। उस समय में शाम गान का कार्य भी महिलाओं के अधिकार में था। ऋग्वेद में एक स्थान पर इंद्राणी बड़े ही गर्व से करती हैं कि उसने वैदिक रीतियाँ प्रारंभ कर दी है यहां तक की कुछ ऐसे यज्ञ भी होते थे जिसको पूर्ण महिलाएँ ही करती थी 'रूद्र याग यज्ञ' जिसे अविवाहित कन्या अपने भावी वैवाहिक जीवन को सुखी रखने के लिए करती थी, 'सीतायज्ञ' शस्य वृद्धि के लिए महिलाओं द्वारा किया जाता था तथा 'रूद्र बली यज्ञ' पशुओं की बुद्धि के लिए महिलाओं द्वारा किया जाता था। महिलाएं यह तीन यज्ञ स्वयं ही किया करती थी इसमें पुरुष की कोई भी भागीदारी नहीं होती थी[19]

मानव जीवन में ज्ञान कर्म तथा उपासना तीनों का ही महत्व है और वैदिक साहित्य में मंत्रों का विशेष महत्व होता है इन मंत्रों को सीखने की महिला पूर्ण अधिकारी थी, महिलाओं को सन्यास आश्रम में जाने की स्वतन्त्रता थी, वह सन्यासी बनाने का पूर्ण अधिकार रखती थी ऋग्वेद के दशम मंडल में 'अरण्यानी' नामक शब्द मिलता है जिसका अर्थ है सन्यास आश्रम को प्राप्त किया उसने जिज्ञासा रखने वाली सुशिक्षित व विदुषी नारी। इस प्रकार वैदिक काल में महिलाओं को पुरुषों के समान धार्मिक अधिकार प्राप्त थे वह स्वतंत्र रूप से अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकती थी उस समय की महिलाएं बहुत विदुषी भी थी उनका धार्मिक कार्यो में अधिक मन लगा करता था।[20]

प्राचीन काल से ही महिलाओं को आर्थिक अधिकार नहीं दिए गए हैं वह धन के लिए पुरुष पर ही निर्भर रहती थी, किंतु मध्य वर्ग में महिलाएं गृह उद्योग का कार्य किया करती थी ऋग्वेद में सूत कातने का एक उदाहरण मिलता है। उस समय में महिलाएं रूई धुनती, सूत कातती, वस्त्र बुनती और कसीदा भी काढ़ती थी। इन तथ्यों के समर्थन में अनेक मन्त्र उपलब्ध होते है। खेत में पुत्र की भांति कार्य करने व उसकी रखवाली का अधिकार भी महिलाओं को मिला हुआ था। वैदिक युग में पति–पत्नी का सम्पत्ति पर संयुक्त अधिकार होता था, किंतु इससे महिलाओं को कोई लाभ प्राप्त न हो सका पैतृक संपत्ति पर पुत्र का अधिकार होता था, पुत्री को संपत्ति से अधिकार नहीं दिया गया है, इसी प्रकार पत्नी को भी गृह संपत्ति में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। ऐसा माना गया है कि वह अवला है वह संपत्ति की रक्षा नहीं कर सकती है किंतु संपत्ति को संयुक्त रूप से भोग ने का अधिकार था, वह दान करने की अधिकारिणी होती थी।[21]

वैदिक काल में विधवा को भी अपने पति की संपत्ति का अधिकार न था, धीरे–धीरे उन्हें अधिकार दिये जाने लगे थे। इसलिए उस समय में नियोग प्रथा चल रही थी क्योंकि पुत्र की प्राप्ति के बाद वह संपत्ति उसको ही मिल जाती थी जिस महिला का कोई नहीं होता था तो उसका पुत्र नाना की संपत्ति का अधिकारी माना जाता था। ऐसा समाज में प्रचलन था कि पति–पत्नी के जीवन निर्वाह की संपूर्ण व्यवस्था करें, पत्नी की भांति पुत्री को भी पिता की संपत्ति में दान करने का अधिकार था। वैदिक काल में कुछ महिला आजीवन अविवाहित

रहती थी जो पिता के घर में ही रहती थी। कहीं –कहीं ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि उन्हें पिता की संपत्ति में अधिकार था भाई के होने पर भी उन्हें संपत्ति में अधिकार दिया जाता था जिस माता–पिता की पुत्री ही संतान होती थी तो वैदिक काल में उसे संपत्ति का अधिकार प्राप्त था।[22]

वैदिक काल में भी स्त्री धन का प्रचलन था पिता, माता, भाई द्वारा विवाह के समय जो धन महिला को मिलता था वह स्त्री धन कहा जाता था। बाद में पति द्वारा जो उपहार महिलाओं को मिलते थे उसे भी स्त्री धन की श्रेणी में लिया जाता था। उस धन पर महिलाओं का पूर्ण अधिकार होता था। स्त्रीधन का उपभोग वह महिला स्वयं ही करती थी विशेष परिस्थिति में पति अपनी पत्नी की अनुमति के बाद स्त्री धन का उपयोग कर सकता था। स्त्रीधन के अंतर्गत बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण, जवाहरात आदि आते थे। वैदिक काल में स्त्री धन को 'पारिणाहा' कहा गया है। उसका विनिमय में महिलाएं स्वतंत्र पूर्वक कर सकती थी उस धन पर उसका एकाधिकार माना जाता था। इस तरह स्त्री धन महिलाओं का अपना धन होता था जिसे वह अपनी इच्छा से खर्च कर सकती थी। माता की मृत्यु के बाद उस धन पर उसकी पुत्री का अधिकार होता था, पुत्र को उसका अधिकार नहीं दिया गया है।[23]

ईश्वर की सर्वोच्च कृति महिला होती है इसलिए इस समाज में उसे उच्च कोटि का स्थान प्राप्त होता है। वैदिक काल से ही महिलाओं को कलात्मक दृष्टि से कार्यों का अधिकार प्राप्त था। वैदिक साहित्य में वर्णन मिलता है कि महिलाएं विशेष प्रकार के वस्त्र व आभूषण का निर्माण करके उन्हें धारणा किया करती थी उनके मुख्य वस्त्र नीवि वासस एवं अधिवास हुआ करते थे। यज्ञ के समय महिलाएं 'रसना' नामक वस्त्र धारण करती थी। एक अन्य वस्त्र था, जिसे चंद आत्मक कहा जाता था, जिसे कुश से बनाया गया था। महिलाएं पुरुषों की तरह उण्णीय धारण करने कि अधिकारी थी। ऋग्वेद में इंद्राणी द्वारा साम्राज्ञी के रूप में उण्णीय धारण करने का वर्णन है। पेशस एक बहुमूल्य वस्त्र था जिसे सुनहरे तारों से काढ़ा जाता था, इसको धनी महिलाएं ही धारण करती थी। इस तरह उन्हें अपने को सजाने संभालने का भी अधिकार प्राप्त था, वैदिक महिलाएं परिधान कला पर अधिक ध्यान दिया करती थी।[24]

वैदिक काल में महिलाओं को आभूषण रखने का अधिकार प्राप्त था वह विभिन्न प्रकार के आभूषण रखती थी तथा उन्हें धारण करती थी ऋग्वेद में हार को निष्क कहा जाता था उसका उल्लेख ऋग्वेद में अनेक बार हुआ है मुद्रिका, हिरण्य बाहु, अंगद आदि अनेक प्रकार के आभूषण थे, जिसको महिलाएं स्वतंत्र रूप से धारण करती थी महिलाओं को सजने का और अपने सौंदर्य को बनाए रखने का तथा उसके लिए विभिन्न प्रकार के सामान इस्तेमाल करने का अधिकार वैदिक काल से ही प्राप्त था। वह अपने लिए आभूषण बनाती थी तथा उन पर महिलाओं का भी अधिकार होता था उसे माता–पिता एवं पति के उपहार में भी आभूषण मिल जाते थे जिस पर उसका विशेषाधिकार होता था।[25]

वैदिक काल में महिलाओं को राजनीतिक व प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे, उस समय में जो राजनीतिक संस्थाएं थी उनमें वह भाग ले सकती थी। वैदिक कालीन संस्था थी 'सभा', 'समिति' तथा विदथ, महिलाएं 'सभा' नामक संस्था में भाग लेती थी, यह एक राजनीतिक संस्था थी किंतु समिति नामक संस्था में महिलाओं के प्रवेश के प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं।[26] विदथ वैदिक काल की एक सामाजिक व धार्मिक संस्था थी, जिसमें महिलाओं का संबंध बहुत अधिक था वह पुरुषों से अधिक उस में भाग लेती थी इस संस्था में धार्मिक रूप से जो विवाद हो जाते थे उनका न्याय किया जाता था।[27] इसमें महिलाओं के प्रवेश के बहुत से साक्ष्य प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर पता चलता है कि घोषा विदथ नामक संस्था में

गई थी एक मंत्र में उल्लेख मिलता है कि आज अधिष्ठित तथा सम्मानित महिलाएं विदथ में जाया करती थी। ऋग्वेद के ही एक मंत्र में वर्णन मिलता है कि सूर्या विदथ में उपस्थित सभी महिलाओं को बोलने का निर्देश देती है।[28]

वैदिक काल में 'समाना' नामक एक परिषद थी, यह परिषद एक राजनीतिक परिषद थी, इसमें महिलाओं को स्वतंत्र रूप से भाग लेने का अधिकार ऋग्वेद में दिया गया है।[29] विदथ नामक संस्था में महिलाओं का राजा के साथ ही नहीं परंतु स्वतंत्र रूप से भाग लेने के साक्ष्य ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं इस तरह महिलाओं को राजनीति में भाग लेने तथा बोलने तथा न्याय करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था वैदिक काल में महिलाएं राजनीति में भाग लेने की अधिकारी थी वैदिक कालीन महिलाएं राजनीति एवं शुद्ध कला की शिक्षा भी अर्जित करती थी उस समय महिलाएं शासन संचालन के योग्य हुआ करती थी, वह राजा को उचित सलाह दिया करती थी तथा अपने पति के राजनीतिक व सामाजिक कार्य में सचिव का कार्य भी करने का अधिकार रखती थी।[30] एक स्थान पर प्रमाण मिलता है कि नगरों के प्रबंध, आंतरिक सुरक्षा तथा सफाई का कार्य महिलाओं के द्वारा ही किया जाता था।[31]

ऋग्वेद के 26 वें 27 वें मंत्रों से ज्ञात होता है कि राजा की पत्नी दूसरों को न्याय एवं राजनीति की शिक्षा दिया करती थी तथा अपने पति के समान महिलाओं की समस्याओं को सुना करती थी तथा उस पर निर्णय लिया करती थी।[32] इस तरह नारी के द्वारा दिए गए न्याय से राज प्रबंध की सुस्थिरता का प्रतिपादन किया करती थी, वैदिक महिलाएं पुरुष के समान विद्याओं में परिचित थी। विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका आदि कार्य में महिलाएं बहुत निपुण थी।[33] महिलाएं युद्ध में भाग लिया करती थी विश्वारा अपने पति के साथ युद्ध स्थल में जाकर उनकी सहायता करती थी उसी में युद्ध में उनका पैर टूट गया था। वृत्रासुर के साथ उसकी माता दनु भी युद्ध में गयी थी जो कि इंद्र द्वारा मारी गई थी। नमुची के साथ महिलाओं की एक पूर्ण सेना थी।[34] ऋग्वेद के कई स्थानों पर महिला योद्धाओं का वर्णन मिलता है सरमा एक दूत के रूप में इंद्र द्वारा पणि असुर के पास गई थी, ऐसा माना जाता है की वैदिक युग में अनार्य राज्यों में स्त्रियां भी सेना में भर्ती की जाती थी। इस तरह महिलाओं को राजनीतिक व प्रशासन में पूर्ण अधिकार प्राप्त थे, महिलाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनेक अधिकार प्राप्त थे वह अप्रत्यक्ष रूप से अनेक क्षेत्रों में भाग लिया करती थी उन्हें पूर्ण अधिकार दिए गए थे।[35] वैदिक काल में राजा को चार रानियां रखने का अधिकार प्राप्त था उसकी मुख्य रानी महिशी कहलाती थी। जिसको रात्नियों में स्थान प्राप्त था। वह राजनीति में अपना योगदान दिया करती थी, महिशी राजा की प्रिय पत्नी होती थी अन्य तीन पत्नी परिवक्ता, ववाता तथा पालागलि आदि होती थी उनका भी राज्य में मुख्य स्थान होता था वह राजनीति व प्रशासन में पूरा सहयोग दिया करती थी। तथा अपने अधिकारों का उपयोग करती थी। वैदिक संहिता में महिलाओं को ज्योतिष शास्त्र का भी ज्ञान था।[36] महिलाओं को भी ज्ञान शास्त्र में रुचि थी वह अपने इस शक्ति को राष्ट्र को ज्ञान प्रदान करती थी, महिलाओं को शिक्षिका होने का भी अधिकार प्राप्त था।[37]

यज्ञ संस्कृति पर आधारित ऋग्वैदिक समाज परम्पर सौहार्द और सामंजस्य पर बल देने वाला नैतिक नियम व मर्मादाओं में बंधा हुआ था जिसमें सभी के सुख, समृद्धि व अभ्युदय की कामना की जाती थी। उस समाज में सामूहिक व व्यक्तिगत कर्त्तव्य व अधिकारों की बात कि जाती थी।[38] वैदिक समाज से ही संघटक व संस्थागत आधारों का स्वरूप का निर्धारण हो चुका था। व्यक्ति की उन्नति उसके गुण तथा योग्यता के आधार पर

निर्भर होती थी। वैदिक समाज में मानव जीवन के लक्ष्यों का निर्धारण पहले ही कर दिया जाता था, उसमें स्त्री पुरूष सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति, सृष्टि चक्र व विवाह आदि के अधिकार उसे प्रदान कर दिये गये थे। माता, पुत्री, पत्नी के रूप में नारी का इतना बड़ा सम्मान था कि उसने अपने पृथक अधिकार के बारे में सम्भवना कभी कल्पना भी नहीं की होगी। पिता, पति, पुत्रादि अभिभावकों की मंगल मयी कामना वाली नारी ने अपने आर्दशमय अलौकिक जीवन से समाज को जगमग दिया था।[39]

इस तरह कहा जा सकता है कि ऋग्वैदिक समाज महिलाओं के अधिकारों का खजाना था इसलिए दयानंद सरस्वती ने कहा था 'वेदों की ओर' लौटो क्योंकि उस समाज में महिलाओं को स्वतंत्रता प्राप्त थी, वह शिक्षा की अधिकारी थी विवाह अपनी पसंद से कर सकती थी विवाह करना है या नहीं करना है इस बात का निर्णय स्वयं कर सकती थी, उन्हें ऋग्वेद में ऋचाएं लिखने तथा शिक्षिका बनने का भी अधिकार प्राप्त था। मुख्य रूप से उसे राजनीति में इतने अधिकार दिए गए थे जितने आज भी नहीं दिए गए हैं वह राजनीतिक संस्थाओं में भाग ले सकती थी तथा उसमें बोल सकती थी तथा न्याय करने तथा युद्ध आदि में भाग लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इसलिए वैदिक समाज को आदर्श समाज माना जाता है जिसमें महिलाओं के कर्त्तव्यों के साथ अधिकार भी दिए गए हैं, आज के समाज को वैदिक समाज से सीखने की आवश्यकता है जिससे महिलाओं को उनके पूर्ण अधिकार मिल सके।[40]

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. वैदिक वाड.मय में नारी पृ. 54-सुषमा शुक्ला
2. द पोजिशन ऑफ वीमेनइन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ.200- ए.एस. अल्तेकर
3. हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन पृ. 258- पी.न. प्रभु
4. ऋग्वेद:1.117.19
5. इण्डियन हिस्टारिका क्वाटरली भाग 29.-पृ.188
6. विमेन इन ऋग्वेद पृ. 183- बी.एस. उपाध्याय
7. वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी पृ.196 -श्रीमती स्कॉलास्तिका कुजूर
8. वही पृ. 198
9. वैदिक वाड.मय में नारी पृ. 67 -सुषमा शुक्ला
10. वही पृ.68
11 ऋग्वेद-8.91-1
12. वही-4.37.3
13. वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय साहित्य में नारी- पृ. 57- श्रीमती स्कॉलास्तिका कुजूर
14. वही पृ.58
15. वही पृ.59
16. वैदिक सहिताओं में नारी- पृ.186-डॉ. मालती शर्मा
17. वही पृ.187
18. वैदिक संस्कृति और उसका सातत्य पृ.-168-सीताराम दुवे
19. सृष्टि-उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना पृ. 172-डॉ. विष्णुकान्त वर्मा
20. ऋग्वेद -10-85-13
21. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ. 239-ए.एस. अल्तेकर
22. हिन्दू परिवार मीमांसा पृ. 265- प्रो. हरिदत्त वेदालंकार
23. ऋग्वेद 1.167.3
24. वही 1.167.6
25. स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन ऐन्श्येन्ट इण्डिया पृ. 141- ए.एन.अल्तेकर

26. वही पृष्ठ 161
27. हिन्दू राज्य शास्त्र पृष्ठ 285- अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
28. ऋग्वैदिक ऋशिका पृ. 178-डॉ. इला घोष
29. वही पृष्ठ 179
30. वही पृष्ठ 201
31. वही पृष्ठ 204
32. वैदिक वाडण्तय में नारी पृ. 61-सुषमा शुक्ला
33. वही पृष्ठ 63
34. पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृष्ठ 241-ए.एस. अल्टेकर
35. वही पृष्ठ 245
36. वैदिक साहिताओं में नारी-195-डॉ. मालती शर्मा
37. वही पृष्ठ 197
38. ऋग्वैदिक ऋशिका पृ. 208- डॉ. इला घोश
39. वही पृष्ठ 209
40. वही पृष्ठ 210

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

लैंगिक असमानता

• कैलाश सोलंकी

सारांश- भारतीय समाज की परम्परागत सामाजिक संरचना से जुड़ी समस्याओं में लिंग पर आधारित असमानता प्रमुख समस्या है। असमानता एवं विशमता सभी समाजों में एक सार्वभौमिक विशेषता हैं। दुनिया में ऐसा कोई भी समाज नहीं है, जिसमें सभी लोग और समूह एक - दूसरे के पूरी तरह समान हों। यह असमानता सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा जैविकीय आदि सभी क्षेत्रों में दिखाई देती हैं समाज के सभी लोगों की शारीरिक और मानसिक कुशलता एक - दूसरे से भिन्न होने के कारण उनके बीच कुछ असमानताएं विकसित हो जाती है। इसी असमानताओं के कारण समाज में सामाजिक मूल्यों, सामाजिक व्यवस्थाओं और सांस्कृतिक प्रतिमानों के द्वारा व्यक्तियों को जीवन में विकास के समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं। सामाजिक असमानताओं का सम्बन्ध सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था से होता है। इसी सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था के कारण समाजों में जन्म, वंश, लिंग, आयु, जाति अथवा प्रजाति के आधार पर विभिन्न समूहों को मिलने वाले अधिकार ओर जीवन के अवसर एक - दूसरे से भिन्न होते है।

मुख्य शब्द- लैंगिक असमानता, सामाजिक संरचना, कुशलता, सामाजिक मूल्य

भारतीय संविधान में जाति, लिंग ओर धर्म पर आधारित असमानताओं के पूर्ण उन्मूलन का उल्लेख मिलता है, लेकिन कानून द्वारा लैंगिक विभेदों को दूर करने के बाद भी हमें परिवार, विवाह, सम्पति, शिक्षा ओर व्यवसाय आदि के क्षेत्र में कानूनों द्वारा स्त्रियों और पुरुषों के विभेद की समस्याएं देखी जा सकती हैं।

लिंग एक सामाजिक – सांस्कृतिक शब्द है– इसका संबंध पुरुष और स्त्री के कार्य और व्यवहार से है। लैंगिक असमानता का अर्थ– स्त्री व पुरुष के बीच असमान की स्थिति का होना। लैंगिक असमानता शब्द का उपयोग जैविकीय तथा सामाजिक दोनों अर्थो के किया जाता है। जैविकीय आधार पर लिंग का तात्पर्य एक विशेष जैविकीय रचना से है, जिसमें विशेष प्रकार की शारीरिक और मानसिक विशेषताओं से होता है। दूसरा सामाजिक मूल्यों ओर मापदण्डों से है, जिसमें सांस्कृतिक आधार पर स्त्रियों व पुरुषों में से किसी एक को एक –दूसरे से अधिक प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। उन्हें वैवाहिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में अधिक अधिकार देते हैं। सामाजिक विषमताओं को जन्म देने वाली प्रमुख विशेषताएं–

- सामाजिक विषमता एक सार्वभौमिक धारणा
- समय के साथ परिवर्तन
- विषमता की प्रकृति का सामाजिक होना
- विषमता का विकास समाजीकरण के द्वारा

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लैंगिक असमानता को निम्न आधार पर स्त्री व पुरुष के बीच विभेद किया जा सकता है–

- राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों के अधिकार

• समाजशास्त्र (समाजशास्त्र विभाग), शासकीय आदर्श महाविद्यालय हरदा जिला हरदा

- सामाजिक एवं पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं – पुरुषों की भूमिका
- स्त्रियों के प्रति मनोभाव एवं व्यवहार
- समाज में सामाजिक सहभागिता
- वैयक्तिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता

सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में असमानता - भारत में सैद्वान्तिक रूप से स्त्रियों को ही सभी तरह की प्रसन्नता, समृद्वि और सफलता का मूल मानते है। (यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता), परन्तु व्यवहार में महिलाओं को उन अधिकारों से भी वंचित रखा जाता है, जो उन्हें सामाजिक आदर्श नियमों और कानूनों द्वारा प्राप्त हैं।

1. **पुरुषों के अधीन सामाजिक प्रस्थिति -** सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की प्रस्थिति पुरुषों से अधिक होती है। विभिन्न उत्सवों, समारोहों एवं आयोजनों में सम्मिलित होने के लिए उतनी ही अनुमति होती है, जितनी उसे उनके पिता, पति या भाई के द्वारा दी जाती है।
2. **परिवार एवं विवाह से संबंधित -** भारतीय समाज में महिलाओं से घरेलू कार्यो एवं परिवार के सदस्यों की सेवा की अपेक्षा की जाती है। उसे सास, ससुर, पति, ननद,बच्चे आदि के साथ सामंजस्य बैठाकर चलना होता हैं। माता, पत्नी एवं सहनशीलता की भूमिका मे महिलाओं का व्यक्तित्व ही दब जाता है। वैवाहिक दृष्टि से बाल विवाह के कारण बुरे स्वास्थ्य, अकाल मृत्यु आदि के रूप में महिला को भूगतने पड़ते है।
3. **सामाजिक शोषण -** महिलाओं का सामाजिक शोषण उन्हें परिवार में तरह–तरह की कटुता या अत्याचार का सामना करना पड़ता हैं। उन्हें परिवार के पूरे दायित्वों को पूरा करने पर भी उसकी प्रस्थिति दासी के समान ही देखी जाती है।
4. **पर्दा प्रथा-** भारत में पर्दा प्रथा होने के कारण भी महिलाएं शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाती है।
5. **नैतिक शोषण -** महिलाओं को गुमराह करके उन्हें वेश्यावृति के लिए बाध्य करना, रेलों व बसों, बाजारों में महिलाओं से छेड़छाड़ पर भी सामान्य लोगों को ध्यान न देना, विज्ञापनों में स्त्रियों को अर्द्धनग्न तस्वीरों के प्रदर्शन को रोकने के लिए कोई प्रभावकारी कानून का न होना।
6. **शिक्षा में विषमता -** शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाओं को समाजों में पुरुषों के अपेक्षा कम पढ़ाने का दर्जा प्राप्त दिया जाना।
7. आर्थिक दृष्टि से पुरुषों को अपने द्वारा उपार्जित धन का उपयोग करने के लिए सभी तरह की स्वतंत्रता है। परन्तु स्त्रियों को आर्थिक रूप से पुरूषों पर आंशिक या पूरी तरह से निर्भर होती है। महिलाओं को नौकरी करने पर भी विवाह के पहले पिता और विवाह के बाद पति का अधिकार बना रहता है।

भारतीय समाजों में लिंग असमानता के तौर पर देखा जाये तो सम्पति अधिकार से पृथक्कता, महिलाओं द्वारा महिलाओं पर अत्याचार, धार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्र में भिन्नता, महिला प्रतिभा का शोषण, समानता और सामजस्य में भिन्नता, रोजगार के क्षेत्र में विभेद करना, बाल विवाह, लड़कियों की अपेक्षा, दहेज प्रथा , शिशु कन्याओं की हत्या, अकेलापन आदि के क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को निम्न स्तर पर देखा जाता है। जिसके कारण भी हमें लिंग असमानता या विषमता के कारण देखने को मिलते है। राजनीतिक क्षेत्रों में

स्त्रियों की भागीदारी बहुत कम देखने को मिलती है। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के अतिरिक्त अनेक दूसरे क्षेत्रों में भी लैंगिक असमानता की समस्या बनी हुई है, धार्मिक दृष्टि से सभी वृत, उपवास और धार्मिक क्रियाएं स्त्रियों द्वारा ही पूरी की जाती है, शिक्षा और धर्म मूल्यों के कारण स्त्रियॉ वृतों और उपवास को महत्व न देने पर परिवार मे विरोध की दशा पैदा की जाती है। लैंगिक असमानता के कारण परिवार और समाज में स्त्री–पुरूषों के बीच विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न होने लगती है, जिसके फलस्वरूप विवाह विच्छेद की बढ़ती दर एवं बच्चों का दोषपूर्ण समाजीकरण इसी दशा का परिणाम है।

लैंगिक असमानता के कारण -

1. महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार हो सकता है, लेकिन आजिविका उपार्जित करने से स्त्रियों में मानसिक तनाव बढ़ जाने से सन्तुलित विकास नहीं हो सकेगा।
2. लैंगिक असमानता को समाप्त करने से विवाह – विच्छेद की दर बढ़ जायेगी।
3. भारतीय सामाजिक मूल्यों और धर्म के विरूद्ध मानने के कारण।
4. आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में स्त्रियों की सहभागिता बढ़ने से परिवार के विघटन की अधिक सम्भावना के कारण।
5. स्त्रियॉ मानसिक रूप से अधिक संवेगात्मक होने के कारण पूर्ण समानता की दशा में उनके शोषण की सम्भावना अधिक होने के कारण।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. अशोक डी. पाटिल एवं डॉ. एस.एस. भदौरिया : भारतीय समाज, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल – 2019।
2. डॉ. मनोज कुमार सिंह : शिक्षा और समाज, आदित्य पब्लिशर्स, दिल्ली – 2009।
3. डॉ. गुप्ता एवं शर्मा : समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा – 2002।
4. डॉ. जी. के. अग्रवाल : साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा – 2019।
5. महिला सशक्तिकरण विशेषांक: राष्ट्रीय ग्रामीण विकास, हैदराबाद –2016।
6. लवानिया, एम.एस. : भारतीय महिलाओं को समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिशर्स, जयपुर –2004।
7. महिला सशक्तिकरण : नये आयाम (प्रेरणा), www.premabharti.com
8. डॉ. माधवीलाल दुबे : समाजशास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल – 2018।

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

इमेनुअल कांट के राजनीतिक दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता

•सुधा गुप्ता

सारांश- प्रसिद्ध दार्शनिक इमेनुअल कांट भी ग्रीन की तरह एक आदर्शवादी विचारक है। उसके बहुत से राजनीतिक विचार आज भी समूचे विश्व के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार पर उसके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। यही नहीं विश्व को युद्ध की विभीषिका से बचाने तथा सर्वत्र शान्ति स्थापित करने हेतु उसने युद्ध एवं शान्ति सम्बन्धी जो विचार दिए हैं, वे अमूल्य हैं। वह गणराज्य को शासन की आदर्श पद्धति मानता है एवं राज्य के विकास एवं शांति के लिए लोकतांत्रिक शासन का समर्थक है। आज हम देखते हैं विश्व के अधिकांश देश लोकतांत्रिक शासन के ही पक्षधर हैं। आज विश्व में सर्वत्र राजनीतिक अतिवाद एवं सामाजिक संघर्ष फैला हुआ है, फलतः चारों ओर अराजकता, अशान्ति, आतंकवाद, मानवाधिकारों का घनघोर उल्लंघन जैसी विकराल समस्याएँ व्याप्त हैं। इन सभी समस्याओं के समाधान हेतु कांट के राजनीतिक विचार दिशा निर्देशक की तरह हैं और प्रासंगिक है। परन्तु उसके सारे विचार उसके दार्शनिक विचारों पर आधारित हैं। अतः उसके दार्शनिक विचारों का समुचित अध्ययन करके ही उसके राजनीतिक विचारों को समझा जा सकता है।

मुख्य शब्द- गरिमा, स्वतंत्रता, समानता, अधिकार, अराजकता, अशान्ति, आतंकवाद

प्रसिद्ध आदर्शवादी विचारक इमेनुअल कांट (Immenual Kant) का जन्म 22 अप्रेल 1724 को पूर्वी जर्मनी के एक नगर में हुआ था। टी.एच. ग्रीन की तरह कांट भी एक उदारवादी आदर्शवादी विचारक हैं। उसने एक ओर तो राज्य को व्यक्ति के कल्याण के लिए आवश्यक माना तो दूसरी ओर व्यक्ति के व्यक्तित्व की गरिमा, उसकी स्वतंत्रता एवं उसकी महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। हीगेल, ब्रेडले, बोसांके जैसे आदर्शवादियों ने राज्य को सर्वोपरि मानकर व्यक्ति को राज्य के अधीन बना दिया था। उनकी दृष्टि में व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्व नहीं है। राज्य जैसी पूर्ण संस्था में ही आत्मसात होकर व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। परंतु ग्रीन की भांति कांट इसका विरोध करता है, एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता का समर्थन करता है। इसके अतिरिक्त कांट ने युद्ध एवं शान्ति जैसे विषयों पर भी अमूल्य विचार दिए हैं। वास्तव में कांट के राजनीतिक विचार आज पूरे विश्व के लिए प्रासंगिक हैं।

परन्तु कांट के राजनीतिक विचारों को समझने के लिए पहले हमें उसके दार्शनिक विचारों को जानना आवश्यक है। अपनी प्रसिद्ध कृति 'शुद्ध बुद्धि मीमांसा' (Critique of Pure reason) में कांट ने बताया कि हम इस दृश्य जगत के इन्दिय गोचर बाह्य रूप को ही जान सकते हैं किन्तु उसकी वास्तविक सत्ता (Thing in itself) का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वह हमारे अनुभव का विषय नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कांट बाह्य जगत की सत्ता को अस्वीकार करता है। उसका केवल यह मत है कि बाह्य जगत के बारे में हम केवल उसका वही रूप जानते हैं जो उसके द्वारा डाले गए अनुभवों से हमारे मन पर पड़ा है। इस प्रकार कांट यह मानता है कि बुद्धि में इस बाह्य जगत को प्रकट करने का सामर्थ्य नहीं है क्योंकि यह उसी बात को प्रकट

•प्राध्यापक (राजनीतिशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

करती है, जिसको अनुभव करती है। ईश्वर, आत्मा जैसे विषय अनुभव से बाहर के हैं। बुद्धि अनुभव जन्य ज्ञान तक सीमित होने के कारण उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती।[1]

अपनी दूसरी प्रसिद्ध कृति "व्यवहारिक बुद्धि मीमांसा" (The Critique of Practical Reason) में उसने ईश्वर की सत्ता को व्यवहारिक आवश्यकता के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया है। उसका मानना है कि कि धर्म एवं ईश्वर की सत्ता का आधार बुद्धि नहीं वरन् नैतिक भावना (Morals) है। इस जगत में यदि कोई व्यवहारिक सत्ता है तो वह हमारी नैतिक भावना एवं कर्तव्य की सत्ता है। इसी को उसने निरपवाद नैतिक कर्तव्यादेश (Categorical Imperative) का नाम दिया है।[2] कांट का मत है कि सभी मनुष्यों में जन्म से ही नैतिक कर्तव्यों की भावना पाई जाती है। यह हमारे अन्त:करण में सुदृढ़ रूप से स्थित है। इसे सिद्ध करने के लिए तर्क या बुद्धि की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सभी व्यक्तियों को इसका प्रत्यक्ष अनुभव है। यह भावना हमें सदैव कर्तव्य पालन के लिए प्रेरित करती है और सत्-असत् तथा अच्छे बुरे का बोध कराती है। हमारी यही भावना हमारे अन्त:करण के पथ प्रदर्शक ईश्वर का हमें बोध कराती है। इस प्रकार निरपवाद नैतिक कर्तव्यादेश की भावना ही ईश्वर की सिद्धि तथा धर्म की सत्ता का अकाट्य प्रमाण है।

इस नैतिक भावना द्वारा दिए गए आदेशों एवं कर्तव्यों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस प्रकार कर्तव्य बुद्धि से किया जाने वाला कोई भी कार्य इसलिए अच्छा नहीं होता है कि इससे अच्छे परिणाम होंगे वरन् इसलिए अच्छा होता है कि वह अन्त:करण की नैतिक भावना द्वारा दिए गए आदेश के अनुसार दिया जाता है।[3] कांट का यह विचार गीता के निष्काम कर्म योग से समानता रखता है। गीता में कहा गया है कि फल की इच्छा या आसक्ति न रखते हुए व्यक्ति को अपने कर्तव्य करना चाहिए।

यह नैतिक भावना इस बात को भी सिद्ध करती है कि व्यक्ति में स्वतंत्र इच्छा (Frudon of Will) की सत्ता है। यदि यह हममें न होती तो हम कर्तव्य की भावना की कल्पना नहीं कर सकते। इसकी सिद्धि भी बुद्धि के तर्क से नहीं, वरन् व्यवहारिक अनुभव से की जा सकती है। जब हम किंकर्तव्यविमूढ़ होते हैं, उस समय हमारे सामने कई विकल्प खुले रहते हैं। ऐसे समय में हमें कर्तव्यों का बोध, बुद्धि या मस्तिष्क द्वारा नहीं वरन् हृदय में निहित नैतिक भावना से होता है।[4]

कांट के इन दार्शनिक विचारों के आधार पर ही उसके राजनीतिक विचारों को समझा जा सकता है। कांट का यह दृढ़ मत है कि सभी मनुष्यों में जन्म से ही नैतिक कर्तव्यों की भावना विद्यमान रहती है। सभी व्यक्तियों की इसी नैतिक भावना से एक सामान्य इच्छा का उदय होता है। कांट का यह मत है कि सबकी सामान्य इच्छा में ही समूची न्याय पद्धति का मूल स्रोत निहित है। इस न्याय पद्धति में सबकी स्वतंत्रता को सुरक्षित बनाए रखने की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को मर्यादित किया जाता है। कांट का कहना है कि एक व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा जुआ खेलना या शराब पीने की हो सकती है, परन्तु उसकी इस इच्छा को सबकी सामान्य इच्छा नहीं माना जा सकता क्योंकि व्यक्ति की ऐसी निजी इच्छा नैतिक भावना या निरपवाद परमादेश के प्रतिकूल है। राज्य के सभी कानून नैतिक परमादेश के अनुकूल होने चाहिए। सामान्य इच्छा नैतिक परमादेश के प्रतिकूल नहीं हो सकती। इस प्रकार रूसो की तरह कांट भी जनता की सामान्य इच्छा को कानून का आदि स्रोत मानता है। कानून निर्माण की शक्ति तथा प्रभुसत्ता जनता में निहित है।

अपने राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाते हुए कांट कहता है– संविधान सामान्य इच्छा का वह निर्णय है, जिसके द्वारा जनसमूह सुसंगठित जनता का रूप धारण कर लेता है। उसके अनुसार राज्य में तीन शक्तियाँ होती हैं, प्रभुता सम्पन्न विधान मण्डल, कार्यपालिका, एवं न्याय पालिका। वह यह भी मानता है कि स्वतत्रंता को सुरक्षित बनाए रखने के लिए कार्यपालिका एवं विधानमण्डल का एक–दूसरे से अलग रहना आवश्यक है।[5] ऐसा होने पर ही शासन का स्वरूप गणराज्यात्मक (Republication) हो सकता है। यदि दोनों शक्तियाँ अलग नहीं होंगी तो शासन का स्वरूप निरंकुश (Dictorship) हो जाता है।

इस प्रकार कांट गणराज्य की शासन पद्धति को आदर्श मानता है। उसका यह दृढ़ मत था कि विश्व में शान्ति बनाए रखने के लिए प्रत्येक राज्य का संविधान लोकतंत्रीय होना चाहिए। रूसो भी लोकतंत्र का समर्थक है, किन्तु रूसो जहाँ प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) का समर्थक है, परन्तु कांट प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) का प्रबल पोषक है। वर्तमान में ऐसे लोकतंत्र में प्रतिनिधियों का जनता द्वारा निर्वाचित होना आवश्यक समझा जाता है, परन्तु कांट ऐसा नहीं मानता। उसके अनुसार राजा या उच्च वर्ग के कुलीन व्यक्ति भी जनता के प्रतिनिधि हो सकते हैं, बशर्ते वे जनता की सामान्य इच्छा तथा नैतिक परमादेश के अनुसार कार्य करें।[6] कांट का ऐसा विचार सम्भवत: उसके देश में विद्यमान परिस्थितियों के आधार पर था क्योंकि उस समय जर्मनी के किसी भी राज्य में लोकतंत्र की प्रणाली प्रचलित नहीं थी, सभी जगह निरंकुश राजतंत्र था।

अपने इन राजनीतिक विचारों के अतिरिक्त कांट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शाश्वत शांति' (Eternal Peace) में युद्ध एवं शान्ति के विषय में बड़े ही क्रान्तिकारी एवं महत्वपूर्ण विचार दिए हैं। शांति की स्थापना के लिए उसने राष्ट्रसंघ की स्थापना पर बल दिया है।

वास्तव में कांट के राजनीतिक विचार उसके दार्शनिक विचारों पर ही आधारित हैं। उसके राजनीतिक विचारों का अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि उसके ये विचार 18वीं शताब्दी के न होकर बहुत आगे के लिए हैं। उसके ये विचार वर्तमान सन्दर्भ में भी पूरे विश्व के लिए महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं।

सर्वप्रथम कांट के द्वारा दिया गया निरपवाद नैतिक कर्तव्यादेश (Categorical Imperative) का विचार वर्तमान सन्दर्भ में पूरी तरह प्रासंगिक है। कांट का यह दृढ़ मत था कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्त:करण में जन्म से ही नैतिक कर्तव्यों की भावना पाई जाती है। यह भावना हमें सदैव सत् असत् एवं अच्छे बुरे का बोध कराती है एवं हर परिस्थिति में हमें नैतिक कर्तव्यों के पालन के लिए प्रेरित करती है। कांट का यह विचार राजनीति में नैतिकता एवं शुचिता के महत्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है। आज की राजनीति में नैतिकता एवं शुचिता का बहुत तेजी के साथ क्षरण हो रहा है। एक विद्वान के अनुसार– 'जो चीज नैतिक दृष्टि से गलत है, वह राजनीतिक दृष्टि से सही हो ही नहीं सकती।[7] आज हम देखते हैं कि राजनीति जनमानस की सेवा का क्षेत्र न होकर भ्रष्टाचार, बेईमानी, लूट–खसोट तथा किसी स्वार्थलिप्सा का क्षेत्र बन गई है। राजनीति से नैतिकता का क्षरण होने के कारण राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यदि हम भारत की बात करें तो हम देखते हैं कि आज देश के अन्दर राजनीति एवं अपराध एक–दूसरे से इतने घुल मिल गए हैं मानो वे एक–दूसरे के पर्याय हो। उनके बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना मुश्किल हो गया है। वर्तमान में देश में लगभग 80 प्रतिशत प्रतिनिधि ऐसे हैं, जिनकी पृष्ठभूमि आपराधिक है या उनकी अपराधी

तत्वों से साठ–गांठ है। अपराधी, नेता एवं नौकरशाह के गठजोड़ ने पूरी राजनीति को प्रदूषित एवं मलीन बना दिया है। वैसे तो राजनीति के अपराधीकरण के अनेकों उदाहरण हैं, जिनमें से एक प्रसिद्ध उदाहरण है– 'निठारी काण्ड' जिसमें दर्जनों अबोध बच्चों की जान ले ली गई परन्तु यह मामला राजनीति की भेंट चढ़ गया।'[8]

कांट गणराज्य की शासन पद्धति को श्रेष्ठ मानता था एवं लोकतंत्रीय शासन प्रणाली का समर्थक था, क्योंकि ऐसी शासन प्रणाली में कानून निर्माण की शक्ति एवं प्रभुसत्ता जनता में निहित होती है। उसका स्पष्ट मत था कि जनता के प्रतिनिधियों को जनता की सामान्य इच्छा एवं नैतिक परमादेश के अनुसार ही शासन करना चाहिए। परन्तु आज हम देखते हैं कि लोकतंत्रीय शासन प्रणाली में जनप्रतिनिधियों का मुख्य लक्ष्य जनसेवा नहीं वरन् निजी स्वार्थ की पूर्ति करना है। भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी बाधा जन प्रतिनिधियों का कमजोर चरित्र है। सेवा करने के बजाय भेाग और विलास ही अधिकांश जनप्रतिनिधियों का परम लक्ष्य बन गया है। इसलिए जन पक्षीय मुद्दों पर अमूमन उनका ध्यान नहीं जाता।[9] आज हमारी जनतांत्रिक व्यवस्था को पूरी तरह से चौपट करने में भ्रष्टाचार एक बहुत बड़ा कारण है। जन सामान्य के सूत्रधार बेईमान होने लगते हैं, तो भ्रष्टाचार फैलने में देर नहीं लगती।[10] वर्तमान में भ्रष्टाचार के विकराल दैत्य ने व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से लेकर सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने पैर पसार लिए हैं। भारत ही नहीं विश्व के अधिकांश देश भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। ऐसी स्थिति में कांट का दर्शन एवं उसके विचार इस समस्या के समाधान के लिए दिशा निर्देश का कार्य कर सकते हैं।

कांट, व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का प्रबल समर्थक है। उसका स्पष्ट मत है प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। कांट के अनुसार समानता का आशय प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी स्वतंत्रता देना है, जिससे वह अपनी योग्यता, परिश्रम एवं भाग्य से यथोचित सम्मान प्राप्त कर सके।[11]

व्यक्ति के मौलिक अधिकार वास्तव में व्यक्ति के मानवाधिकार ही हैं। ये व्यक्ति के जन्मजात अधिकार हैं और ये व्यक्ति की गरिमा को प्रतिष्ठापित करते हैं। ये मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य के जन्मजात अधिकार हैं।..... वह चाहे किसी देश, निवास, स्थान का हो और चाहे स्त्री हो या पुरुष। ये सभी अधिकार एक–दूसरे से सम्बद्ध हैं। एक–दूसरे पर निर्भर और अविभाज्य हैं।'[12]

परन्तु आज भारत ही नहीं पूरे विश्व में मानवाधिकारों का खुले आम उल्लंघन हो रहा है। यह उल्लंघन नस्लीय भेदभाव, भाषायी अधिकार, धार्मिक अधिकार, लिंग भेद, पुलिस, अत्याचार आदि रूपों में निरंतन बढ़ रहा है। भारत में भी मानवाधिकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। भारत में दलितों पर अत्याचार, बड़ी परियोजनाओं के नाम पर लोगों के विस्थापन, बच्चों के साथ अमानवीय व्यवहार, लैंगिक भेदभाव, बंधुआ मजदूरी, धार्मिक असहिष्णुता आदि रूपों में मानवाधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। यद्यपि भारत में 1993 में मानवाधिकार कानून बना तथा 10 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का भी गठन किया गया है। ये आयोग मानवाधिकारों की रक्षा के लिए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में काम करते है, परन्तु इसके बावजूद मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है।

कांट ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'शाश्वत शांति' (Eternal Peace) में 'युद्ध' एवं 'शांति' के विषय में बड़े ही क्रान्तिकारी एवं महत्वपूर्ण विचार दिए हैं। उसके ये विचार

वर्तमान समय के लिए भी प्रासंगिक हैं। उसने युद्ध को मानव जाति के विकास में बहुत बड़ी बाधा माना। उसका कहना था कि यह 'व्यावहारिक बुद्धि (Practical Reason) का आदेश एवं प्रकृति की आज्ञा है कि मनुष्य को शाश्वत शान्ति बनाए रखने के लिए प्रयत्न करना चाहिए तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक राष्ट्र संघ की स्थापना करना चाहिए। युद्धों के दुष्परिणामों का भीषण चित्र खींचते हुए उसने कहा था- हमारे शासकों के पास सब लोगों को शिक्षा देने वाली पद्धति की व्यवस्था करने के लिए पैसा नहीं है क्योंकि वे अपनी सारी आय भावी युद्धों की तैयारी में लगा देते हैं।[13] इस प्रकार कांट बढ़ते हुए सैन्यवाद तथा शस्त्रों के एकत्रीकरण का घोर विरोधी था। उसका स्पष्ट मत था कि सैन्यवाद का प्रमुख कारण साम्राज्य वाद का विस्तार है।

यदि हम आज के परिदृश्य को देखें तो पता चलता है कि आज विश्व में राष्ट्रों के बीच निरंतर शस्त्रों की विशेष रूप से परमाणु शस्त्रों की होड़ मची हुई है। दुनिया में हथियारों की निगरानी कर रही संस्था स्टॉकहोम इन्टरनेशनल पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (सीपरी) का मानना है कि भले ही दुनिया में परमाणु हथियारों की संस्था में कमी आई हो परन्तु तबाही मचाने वाले परमाणु युद्ध का खतरा कम होने के बजाय बढ़ रहा है।[14] इसके अतिरिक्त आज नव उपनिवेशवाद के अन्तर्गत विश्व के बड़े एवं शक्तिशाली राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों को आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अपने अधीन बना रहे हैं। इस प्रकार पूरे विश्व में अशान्ति, तनाव एवं युद्ध की स्थिति बनी हुई है।

कांट विश्व में शाश्वत एवं स्थाई शांति स्थापित करने की बात पर बल देता है। इसके लिए वह राष्ट्रसंघ की स्थापना को आवश्यक मानता है। विश्व में शान्ति की स्थापना के लिए वह कई महत्वपूर्ण सुझाव भी देता है, जिनमें से तीन सुझाव बहुत महत्वपूर्ण हैं-

(1) प्रत्येक राज्य में गणराज्यात्मक संविधान होना चाहिए।

(2) स्वतंत्र राज्यों का संघ बनाया जाना चाहिए।

(3) विश्व नागरिकता का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए तथा सभी को निर्बाध रूप से दूसरे देशों में जाने का अधिकार मिलना चाहिए।[15]

इस प्रकार कांट विश्व में शांति, सौहार्द एवं विश्वबन्धुत्व का पक्षधर है।

निष्कर्ष- कांट के उपर्युक्त विचारों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कांट के दार्शनिक एवं राजनीतिक विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही मूल्यवान एवं प्रासंगिक हैं। वह ऐसी लोकतंत्रिक व्यवस्था पर विश्वास करता है जो दासता एवं शोषण के सभी रूपों से मुक्त हो। राज्य का कार्य व्यक्ति को उसके विकास में सहायता प्रदान करना है न कि अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु उसका प्रयोग करना। उसका यह विचार आज भी बहुत मूल्यवान है कि प्रत्येक को साध्य (End) मानते हुए उसका पूरा सम्मान किया जाना चाहिए। वह व्यक्ति की गरिमा एवं उसके महत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए व्यक्ति की समानता एवं स्वतंत्रता का प्रबल पक्षधर है।

कांट मानव जाति को युद्ध की विभीषिका से मुक्त रखना चाहता है तथा विश्व में शान्ति की स्थापना का पक्षधर है। इसके लिए उसके द्वारा दिया गया राष्ट्रसंघ की स्थापना का सुझाव निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है। आज पूरे विश्व में युद्धों को रोकने एवं शान्ति की स्थापना हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था कार्य कर रही हैं, परन्तु राष्ट्रों के उचित एवं पूर्ण समर्थन के अभाव में यह संस्था अपने दायित्वों के निर्वहन में पूरी तरह से सक्षम नहीं है।

राजनीतिक अतिवाद एवं सामाजिक संघर्ष के कारण पूरे विश्व में अराजकता, अशान्ति, आतंकवाद एवं मानवाधिकारों के हनन की घटनाएँ बढ़ रही है। इन समस्त समस्याओं के समाधान के लिए तथा पूरे विश्व में स्वतंत्रता, समता, शान्ति एवं बन्धुत्व की स्थापना के लिए इमेनुअल कांट के विचार आज पूरी तरह से महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 115
2. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 110
3. हदित्त वेदालंकार- आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 116-117
4. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 117
5. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 120
6. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 121
7. डॉ. इकबाल नारायण - राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त, पृ.सं. 61
8. जीवराज सिंधी - प्रजातंत्र के शत्रु, रंग प्रकाशन, इन्दौर, पृ.सं. 354
9. सबलोग- 100, किशन कालजयी का लेख (सम्पादक), 'राजनीति शास्त्र के विरुद्ध', पृ.सं. 4
10. जीवराज सिंधी - प्रजातंत्र के शत्रु, रंग प्रकाशन, इन्दौर, पृ.सं. 37
11. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 119
12. बिन्देश्वर पाठक, मानव अधिकार और नई दिशाएँ, पृ.सं. 14, अंक 2010
13. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 122
14. दैनिक भास्कर, ग्वालियर 18.06.2019
15. हदित्त वेदालंकार - आधुनिक राजनीतिक चिंतन, सरस्वती सदन, दिल्ली, 1971, पृ.सं. 124

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

छतरपुर जिले में पान कृषि की उत्पत्ति एवं विकास

•नीना चौरसिया

सारांश- वात्सायन के कामसूत्र व रघुवंश आदि ग्रंथों में ताम्बूल शब्द का प्रयोग है कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथा श्लोक मे उल्लेख है कि कौशाम्बी नरेश उदयन ने ताम्बूल लता को नागों से दहेज में प्राप्त किया था। जगनिक रचित लोक काव्य आल्हा खण्ड के अनुसार विख्यात वीर आल्हा ऊदल युद्ध संकल्पों हेतु पान का बीड़ा उठाकर दृढ़-प्रतिज्ञ होते थे। महोबा में पान की खेती का श्रेय चन्देल शासकों को जाता है। आइने अकबरी में सूबा इलाहाबाद के अन्तर्गत महोबा मुहाल से भू-राजस्व के रूप में मुगल दरबार को पान प्राप्त होने का उल्लेख है।

मुख्य शब्द- ताम्बूल, द्विबीजपत्री बेल, भू-राजस्व

प्रस्तावना- ताम्बूल कटुतिक्तमिश्रधुरय क्षार कषाय यन्वित् सखे त्रयोदशे गुणाः स्वर्गेव्यापी दुर्लभाः। पान कटु कडुवा, तीखा, मधुर और कसैलेपन (पाँच रसों) से युक्त होता है। पान खाने से वायु नही बढ़ता, कफ मिटता है, कीटाणु मर जाते हैं, मुँह से दुर्गन्ध नही आती, मुख की शोभा बढ़ती है, मुँह का मैल दूर होता है और कामाग्नि बढ़ती है। ये पान के ऐसे गुण है, जो स्वर्ग में भी दुलर्भ हैं। पान एक द्विबीजपत्री बेल है, पाइपर बीटल इसका लेटिन नाम है, और यह पाइपेरेसी कुल का सदस्य है। डिकैन्डोल (1884) के अनुसार पान की जन्म-भूमि मलाया प्रायद्वीप समूह है, जहाँ लगभग 2000 वर्षों से पान की खेती की जाती है। वर्क हिल (1966) का मत है कि पान मध्य तथा पूर्वी मलेशिया का पौधा है। भारत में पान के उद्गम का श्रोत तथा खेती कब शुरू हुई इसका अनुमान कठिन है फिर भी ऐसा सिद्ध हुआ कि यह भारत के पश्चिमी भाग में सर्वप्रथम दक्षिण एशिया से आया है।

पान की व्यसायिक खेती 70^0 पूर्वी से 130^0 पूर्वी देशान्तर और 12^0 दक्षिण तता 25^0 उत्तर अक्षांश के बीच की जाती है। सुदूर उत्तर -पश्चिमी भागों को छोड़कर पूरे भारत में बांग्लादेश श्रीलंका, मलेशिया के कुछ भाग थाईलैण्ड सिंगापुर मालद्वीप फिलीपीन्स पपुआ-न्यूगिनी और दक्षिण अफ्रीका में पान की खेती की जाती है। पान के लिये उष्णकटिबन्धीय जलवायु विस्तृत छायादार और नम वातावरण उपलब्ध होना चाहिये।

महोबा में पान की खेती की शुरूआत नवीं शताब्दी में चंदेल शासकों के समय हुई थी। पूर्व में यहाँ लगभग 500-600 एकड़ क्षेत्रफल में पान की खेती हो रही थी किन्तु कई कारणों जैसे दैवीय आपदाओं, गुटखा खाने का बढ़ता प्रचलन, सिंचाई की समस्या, कच्चे माल की कमी एवं घटती मांग के कारण वर्तमान में इसका क्षेत्रफल सिमट कर रह गया है। महोबा पान की एक अच्छी मण्डी है, चित्रकूट धाम मण्डल में महोबा, बाँदा तथा झाँसी मण्डल में ललितपुर पान की खेती के लिये प्रसिद्ध हैं।

प्रदेश में पान की खेती पर अनुसंधान करने तथा कृषकों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये महोबा में वर्ष 1980-81 में एक मात्र पान प्रयोग एवं प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई थी।

शोध पद्धति - अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश के छतरपुर जिला को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से चयनित किया गया। छतरपुर जिले में सात तहसील हैं, जिसमें छतरपुर,

• सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

महराजपुर, नौगांव, लौड़ी, गौरिहार, राजनगर एवं बिजावर है, इनमें चार तहसीलों में पान की खेती होती है। इन तहसीलों के अंतर्गत आने वाले गांवों से पान की खेती करने वाले 350 परिवारों को निम्नानुसार उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर चयन किया गया।

क्रमांक	तहसील	ग्राम/कस्बा	कुल खेती करने वाले परिवार	चयनित परिवार
1.	बिजावर	पनागर (ग्रामीण) पिपट (ग्रामीण)	400 400	80 86
2.	छतरपुर	बारी (ग्रामीण)	50	10
3.	महाराजपुर	गढ़ीमलेहरा (अर्द्धशहरी) महाराजपुर (अर्द्धशहरी)	450 360	90 72
4.	लवकुशनगर	लवकुशनगर (अर्द्धशहरी)	60	12
	योग		1750	350

तालिका क्रमांक 1 : छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा

क्र.सं.	ग्राम का नाम	क्षेत्रफल (एकड़)	कुल पारी
1	महाराजपुर	80	4000
2	गढीमलहरा	75	3750
3	पिपट	70	3500
4	पनागर	70	3500
5	लवकुशनगर	30	1500
6	निवारी	25	1250

चित्र सं.1 : छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा

उपरोक्त सारणी में वर्ष 2015-16 में छतरपुर जिले में पान की खेती का रकबा महाराजपुर में 80 एकड़ अर्थात् 4000 पारी का क्षेत्रफल रहा। गढ़ीमलहरा में 75 एकड़ अर्थात् 3750 पारी में पान की खेती हुआ करती थी। लवकुशनगर में 30 एकड़ अर्थात् 1500 पारी में पान बरेज हुआ करते थे, पिपट क्षेत्र में 70 एकड़ अर्थात् 3500 पारी में पान की खेती हुआ करती थी। पनागर क्षेत्र में 70 एकड़ अर्थात् 3500 पारी में पान की खेती हुआ करती थी, निवारी क्षेत्र में पान की खेती का रकबा 25 एकड़ अर्थात् 1250 पारी का था।

अध्ययन से यह देखने में आता है कि महाराजपुर क्षेत्र में सर्वाधिक 4000 पारी में पान की खेती होती थी, वहीं सबसे कम निवारी क्षेत्र में 1250 पारी में पानी की खेती होती थी, शेष क्षेत्र गढीमलहरा, लवकुशनगर, पिपट, पनागर में भी काफी क्षेत्र में पानी की खेती होती थी।

छतरपुर जिले में पान कृषि की उत्पत्ति - 'बुन्देलखण्ड की केशर' कहलाने वाला देशी पान छतरपुर जिले में ही पैदा किया जाता है। पान की खेती अधिकांशत: चौरसिया जाति ही करती है। ये पान कृषक छतरपुर जिले में कब से है, इसकी कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं है। लेकिन चौरसिया जाति के बुजुर्गो द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार आज से लगभग 900 वर्ष पूर्व अर्थात् 12-13 वीं शताब्दी के पूर्व से पान की खेती महोबा (उ.प्र.) से विस्तृत होकर छतरपुर जिले के महाराजपुर, गढीमलहरा, लौड़ी, बारीगढ, पिपट और मनागर में की जाने लगी। धीरे-धीरे यह अन्य क्षेत्रों में विकसित होती गई। यही कारण है कि आज इस जिले में लगभग 29,000 से भी ज्यादा पान कृषक इस जिले में निवास करते है।

छतरपुर जिले में पान कृषि का विकास - मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में पान की फसल लगभग 4,000 हेक्टेयर भूमि में की जाती है। यह प्रदेश की पान कृषि का 26 प्रतिशत है। शेष 74 प्रतिशत पान अन्य जिलों में उगाया जाता है। पान के करीबन 3-4 करोड़ का धन उत्तर भारत से छतरपुर जिले को प्रतिवर्ष लाभ के रूप में प्राप्त होता है। छतरपुर जिले में पान उत्पादन केवल उन्ही गांवों, कस्बों में होता है जहां पर चौरसिया जाति के लोग अधिक संख्या में निवास करते है। साथ ही उपर्युक्त भौगोलिक, आर्थिक एवं मानवीय साधनों एवं भौतिक संसाधनों की उपलब्धता है।

छतरपुर जिले के महाराजपुर, गढीमलहारा, बारीगढ, दिदवारा, बारी निवारी, खोप, लौडी, पिपट, पनागर, गुलगंज, किशनगढ आदि ग्रामों में पान की कृषि की जाती है।

तालिका संख्या 2 : छतरपुर जिले में पान कृषि उत्पादन एवं प्रयुक्त तकनीक N=350

क्र. सं.	पान कृषि उत्पादन एवं प्रयुक्त तकनीक	महाराजपुर (72)	गढ़ी मलहरा (90)	लवकुश नगर (12)	पनागर (80)	पिपट (86)	निवारी (10)
		संख्या	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या
1.	परम्परागत तरीके	30	19	04	12	24	00
		(41.66)	(21.11)	(33.33)	(15.00)	(27.91)	(00.000)
2.	परम्परागत एवं नवीन तकनीक	42	71	08	68	62	10
		(58.34)	(78.89)	(66.67)	(85.00)	(72.09)	(100.00)

नोट - कोष्टक में दिये गये अंक प्रतिशत में प्रदर्शित हैं।

चित्र संख्या 2 : छतरपुर जिले में पान कृषि उत्पादन एवं प्रयुक्त तकनीक

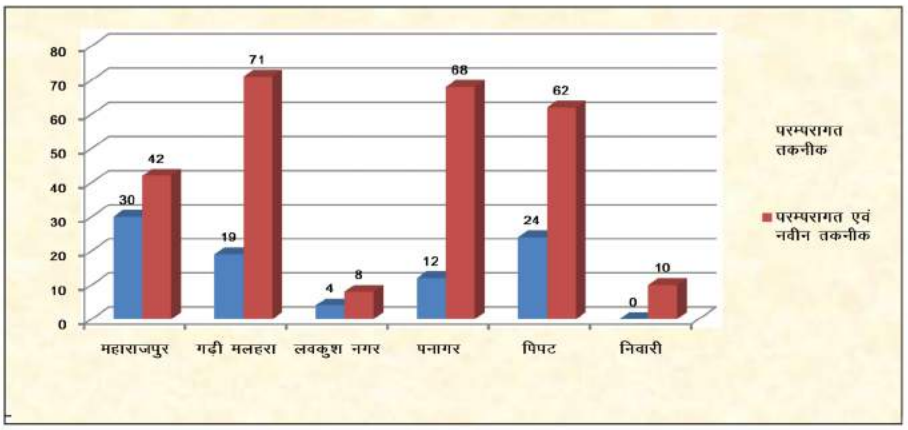

प्रस्तुत तालिका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्तमान मान परम्परागत तकनीक का प्रयोग पान के कृषक कम करने लगे हैं। दूसरी ओर नवीन तकनीक को अपनाने वाले कृषकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। इस प्रकार तालिका से स्पष्ट है कि परम्परागत तकनीकी की अपेक्षा परम्परागत एवं नवीन तकनीक दोनों को प्रयोग करने वाले कृषक क्रमशः महाराजपुर (58.34), गढ़ी मलहरा (78.89), लवकुश नगर (66.67), पनागर (85.00), पिपट (72.09) एवं निवारी में (100.00) पाये गये।

स्पष्ट है कि विशुद्ध रूप से परम्परागत तकनीक की अपेक्षा परम्परागत एवं नवीन दोनों तकनीकों का सुविधानुसार उपयोग कर पान कृषक अपनी पान की खेती को अधिक उत्पादन से जोड़कर देखते हैं एवं समयानुसार दोनों प्रकार की तकनीकों का इस्तेमाल करते हैं।

निष्कर्ष - पान बरेजों को लाने हेतु निजी भूमि का प्रतिशत कम पाया गया। पान की पारियों की संख्या कम पाई गई। सिंचाई के आधुनिक साधन कम है, ज्यादातर परम्परागत तरीकों से सिंचाई होती है।पान के विपणन का स्थान ज्यादातर स्थानीय मण्डी में होता है। पान के विभिन्न प्रकारों की पैदावार में कमी है। पान की खेती में क्रमशः धीरे धीरे परम्परागत तकनीक के साथ नवीन तकनीकों का प्रयोग बढ़ रहा अभाव है। पान अनुसंधान केन्द्रों की भूमिका एवं सहयोग बहुत कम है साथ ही सबसे बड़ी समस्या यह है कि पान की खेती को कृषि का दर्जा प्राप्त नहीं है दूसरी ओर पान फसल के बीमा करने की जानकारी अधिकांश उत्तरदाताओं को है।

सुझाव -

1. पान अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना एवं विभिन्न आयामों पर शोध हो ताकि पान व्यवसाय में वृद्धि हो सके।
2. स्थानीय मण्डियों के अतिरिक्त अंतर्राज्यीय मण्डियों में भी जाने का अवसर प्राप्त होना चाहिये ताकि पान का प्रचार प्रसार एवं बिक्री उच्च स्तर पर हो।
3. पान की खेती को कृषि का दर्जा दिया जाये ताकि अन्य प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो सके।
4. नई पीढ़ी को इस व्यवसाय को अपनाने के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये तथा नवीन तकनीकों को अपनाकर पान व्यवसाय को बढ़ाने हेतु स्थानीय स्तर पर प्रयास होना चाहिये ताकि आर्थिक लाभ प्राप्त हो सके।
5. पान बरेजों का बीमा अनिवार्य किया जाये तथा राहत राशि को बढ़ाया जाये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. Kulkarni, K.R, " Agricultural Marketing in India", Co-operation Books, 1964
2. Dr. J.P. Chaurasia, "Betelvine Cultivation and Management of Diseases", Scientific Publishers (India), Jodhpur, 2001, p.1.
3. व्यास, रवीन्द्र पान किसान मालिक से बनते मजदूर https://bundelkhand.in/news2018]
4. विदुश मिश्र, 2018, https://www.patrika.com/author/ 5112
5. best-benefits-of-betel-leaves-piper-leaves/ hinditips.com

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

बौद्ध साहित्य में वर्णित सामाजिक जन-जीवन में पर्यावरण

•अनित्य गौरव
••अजय कुमार यादव

सारांश- भारतीय सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था प्रमुख स्थान रखता है। वैदिक काल से लेकर आज तक यह व्यवस्था निरंतर प्रवाहमान है। प्राचीन काल में वर्णों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया था। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिसमें ब्राम्हण वर्ण मंत्र, रचना, मंत्र पाठ, याज्ञिक और पुरोहित कर्म से सम्बद्ध था। क्षत्रिय वर्ण युद्ध रक्षा शौर्य सम्बन्धी कार्य से सम्बद्ध था। वैश्य वर्ण कृषि गोपालन, व्यापार-वाणिज्य का कार्य करता था। चौथे वर्ण के रूप में शूद्र था जिस पर तीनों वर्गों की सेवा का दायित्व था। वर्ण-व्यवस्था कर्तव्यों एवं समुचित अधिकारों पर आधारित थी लेकिन कालांतर में इनका प्रमुख आधार जन्म से विशेषित होने लगा। इस कारण वर्गों के बीच कर्मपरक व्यवस्था पूर्णतः बंद हो गयी। जन्म आधारित श्रेष्ठता को ही समाज का आधार माना गया।

मुख्य शब्द- वर्ण व्यवस्था, कृषि, गोपालन, जन-जीवन, पर्यावरण

छठी शताब्दी आते-आते वर्ण के स्वरूप में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा इन परिवर्तनों के पीछे अनेक कारण थे, जैसे-गंगाघाटी में लोहे की खोज से तकनीकी क्रान्ति ने जन्म लिया, जिससे कृषि क्षेत्र में उत्पादन में अधिशेषों का नवीन स्वरूप प्रकट हुआ। अधिशेषों ने गंगाघाटी में जन से जनपद, जनपद से राज्य, राज्य से साम्राज्य बनने की प्रक्रिया को बल दिया। तकनीकी क्रान्ति ने भौगोलिक दशाओं के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक ताने-बाने को प्रभावित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि सरल समाज अब जटिल समाज में बदलने लगा। जहाँ अनेक शिल्प उद्योग, व्यापार-वाणिज्य विकसित हुए। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, कि क्योंकि इसमें मेहनत कम, फायदा अधिक होता है। यह कथन तत्युगीन परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बुद्ध ने पुरातन जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने कहा जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता है बल्कि कर्म से ही कोई ब्राम्हण और अब्राह्मण होता है।[1] कर्म से कृषक, कर्म से शिल्पी होता है। ब्राम्हण की परम्परागत श्रेष्ठता को उन्होंने चुनौती प्रस्तुत किया। दूसरी तरफ उन्होंने आचारवान ब्राम्हण की प्रशंसा और आचरणहीन ब्राह्मण की भर्त्सना भी की। उन्होंने आश्वलायन नामक ब्राम्हण को अपने मत को स्वीकार करने के लिए कहा कि 'केवल ब्राम्हण ही सुख के सुयोग्य नहीं है बल्कि अपने अच्छे कर्मों से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी स्वर्ग के अधिकारी हो सकते हैं।[2] बुद्ध ने पूर्व से चली आ रही जन्मना वर्णव्यवस्था को प्रभावहीन करने के लिए समाज के सामने अनेक तर्क रखे, उन्होंने कहा कि वेदों का अध्ययन-अध्यापन, ब्राम्हणों का कर्म है, राजत्व क्षत्रियों का, कृषि-व्यापार-वाणिज्य वैश्यों का और सेवा शूद्रों का इसे ब्रह्मवाक्य क्यों मान लें।[3] इन विचारों से बुद्ध ने पुरातन व्यवस्था, जो कि जन्म आधारित श्रेष्ठता को स्थापित करती थी उसे नकारा उसकी जगह समतामूलक कर्म आधारित व्यवस्था को स्थापित करने पर बल दिया। बुद्ध जानते थे गैर बाराबरी पर आधारित सामाजिक व्यवस्था सामाजिक असंतोष पैदा करेगा

• असिस्टेन्ट प्रोफेसर प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)
•• शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)

जिससे सामाजिक पर्यावरण स्खलित होगा समाज में द्वेष, हिंसा, प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। बुद्ध सामाजिक पर्यावरण के प्रति सचेत थे।

बुद्ध ने कहा हे राजन् क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य तथा शूद्र ये चारों वर्ण हैं, उनमें दो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय) अभिवादन, प्रमाणांजलि अग्रासन तथा सेवा के अधिकारी है।[4] भगवान बुद्ध ने वर्णव्यवस्था का विरोध जन्म पर आधारित होने के कारण किया। उन्होंने कहा कि उच्च वर्ण में जन्म लेने से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता है बल्कि सत्कर्मों के द्वारा ही व्यक्ति की महत्ता पुष्टि होती है।[5] उद्दालक जातक में ब्राम्हण पुरोहित ने कहा है कि क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस सभी में अच्छे कर्मों के द्वारा निर्वाण प्राप्त करने की क्षमता है।

बुद्ध युगीन समाज वर्णगत भेद-भाव के कोलाहल से अस्थिर हो रहा था। उस युग में सदाचारी और दुराचारी दोनों प्रकार के ब्राम्हण की चर्चा पालिपिटको में मिलती है बुद्ध ने सच्चे ब्राह्मण की परिभाषा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में की है जो सभी पापों से मुक्त हो, (वाहितपापधम्मों), निराभिमानी है (निहुहुको), संयमी है (निक्कसवो), वेदज्ञानी है (वेदन्तगू) और ब्रह्मचर्यरत है (बुसित ब्रह्मचारियों), वह ही ब्राम्हण है।[6] जातक ग्रन्थों में हमें ब्राह्मणों के द्वारा संसार को त्यागने का वर्णन भी मिलता है[7], ज्ञानी ब्राम्हणों की भी चर्चा जैसे, सुणेत[8] सेल[9] आदि नाम प्रमुख थे। उनके पास अपार ज्ञान था वे विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। ऐसे ब्राह्मणों को दिशा-प्रमुख आचार्य कहा जाता था।[10]

बौद्ध साहित्य में सामाजिक पर्यावरण दूषित करने वाले ब्राह्मणों की घोर निंदा की गयी है जो अपने शिष्यों को पूर्णज्ञान से शिक्षित नहीं करते थे। वहीं आदर्शवान ब्राह्मण का भी जिक्र है जैसे भगवान बुद्ध के गुरू 'अलारकलाम' ने बुद्ध को शिक्षित करने के बाद कहा कि "अब मैं जितना जानता हूँ, उतना तुम भी जानते हो।" भगवान बुद्ध ज्ञान के सर्वभौमीकरण के प्रति कटिबद्ध थे इसी कारण ज्ञान के संचार से सभी को लाभान्वित करना चाहते थे।

बौद्ध साहित्य में भगवान बुद्ध ने स्वयं विद्वान ब्राम्हणों की प्रशंसा की है। वर्णगत श्रेष्ठता को ज्ञान के आधार पर एवं आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए उन्होंने कहा कर्म से कोई ब्राम्हण होता है एवं कर्म से कोई कृषक।[11] परन्तु बुद्धकालीन समाज में ब्राम्हण पुरोहित वर्ग के रूप में राजा के अत्यन्त निकट था, राजा उसे अधिक दान दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करता था।[12] विनयपिटक में कहा गया है राजा को पुरोहित के आसन के बराबर नहीं बैठना चाहिए।[13] बाद के अनेक शास्त्रकारों एवं विद्वानों ने भी राजा को परामर्श दिया कि ब्राम्हणों के प्रति वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि एक शिष्य का गुरू के प्रति[14] अश्वालायन गृहसूत्र में भी राजा के दरबारियों में ब्राह्मण का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है।[15] बुद्धयुगीन समाज में ब्राह्मणों की प्रास्थिति सम्मानजनक थी। समाज में प्रधान पुरोहित के रूप में, राज्यसभा के प्रमुख मंत्री पदाधिकारी[16] के रूप में, न्याय के कार्य में राजा के सहयोगी के रूप में, राजा के सम्मुख द्यूतक्रीणा[17], में उत्सवों में शोभायात्रा[18], हस्ति आरोहण आदि के दौरान राजा उसे सम्मानित स्थान दिलाता था।

बौद्ध साहित्य में शास्त्रानुमोदित कार्यों से विमुख होकर अन्य कार्य में लगे ब्राह्मणों की चर्चा विशद रूप से की गयी है। मज्झिमनिकाय में मुद्रा गणना, गोरक्खा, इस्सत्थ, वाणिज्य, कसि, संखान, राजपुरोसिस कार्य में लगे ब्राम्हणों की चर्चा है।[19] दीघनिकाय के ब्रह्मजालसुत्त में निषिद्ध कर्मों में लगे ब्राम्हणों की लम्बी सूची दी गयी है।[20] दशब्राह्मण जातक[21] में उल्लेख है कि ब्राह्मण वैद, व्रात्य, कर अधिकारी, वणिक, कृषक, सगुन-अपसगुन का अर्थ बताने वाले पुरोहित रक्षक, शिकारी, अम्बुष्ठा, निगाहक का उल्लेख है। जातक ग्रन्थों में

उल्लेख है कि ब्राम्हण, ग्वाले, बढ़ई, निषाद, धनुष चलाने वाले शिकारी फेरी लगाने वाले[22] आदि के सन्दर्भ मिलते है। ऐसे सन्दर्भ धर्मशास्त्रकारों के द्वारा भी उल्लेख किया गया हैं। आपस्तम्ब[23] और गौतम ने[24] ब्राह्मण को वाणिज्य एवं कृषि कर्म करने की राय दी। मनु ने कहा ब्राह्मण को आपातकाल के दौरान दास कर्म को छोड़कर कृषि तथा वाणिज्य के समान कोई मर्यादित व्यवसाय करना चाहिए।[25]

बौद्ध साहित्य में कृषि, व्यापार-वाणिज्य के प्रति सम्मानजनक स्थिति होने के कारण सामाजिक पर्यावरण में अनेक बदलाव परिलक्षित होते है। अब समाज में यजन-याजन यज्ञ का महत्व घट गया था। एक कर्मशील वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में कृषि को व्यवसाय का प्रमुख साधन माना जाने लगा था। इसी कारण बुद्धकालीन समाज में सामाजिक पर्यावरणीय बदलावों के रूप में ब्राम्हणों को ब्राह्मणेत्तर कार्यों से निबद्ध होने का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में भूमिपति एवं भूमिहीन दोनों प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है। विनयपिटक में सुनीधि एवं वस्सकार नामक धनी ब्राम्हणों की चर्चा है।[26] जिन्हें 'महासाल' कहा जाता था। ये अपने खेतों पर श्रमिकों की सहायता से कृषि कार्य करते थे। इनके पास विपुल भूखण्ड था। दीघनिकाय में कसिभारद्वाज नामक ब्राह्मण का उल्लेख है जिसके पास 500 हल की खेती थी।[27] उसका समाज में अत्यधिक सम्मान था। सुत्तनिपात में कोणीय महासाल नामक धनाढच ब्राम्हण का उल्लेख है, जिसके पास विपुल भूखण्ड था। उसने अपने यहाँ अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर मगधराज बिम्बिसार को आमंत्रित किया था।[28] बौद्धसाहित्य में उल्लिखित दृष्टांतों से पता चलता है कि तत्युगीन समाज में कार्यों के स्तर पर विविधता एवं जटिल समाज का निर्माण हो रहा था। वही दूसरी ओर समाज का भौगोलिक विस्तार भी बढ़ रहा था। सामाजिक जीवन में भू-विस्तार के साथ-साथ सम्पदा के संचयन का दृष्टिकोण-प्रबल हो रहा था। जिससे समाज में गैर-बराबरी का पर्यावरण उत्पन्न हो रहा था। इसी पर्यावरण शोधन के लिए महात्मा बुद्ध अपरिग्रह, सामाजिक समानता बौद्ध शिक्षाओं में विनयशीलता को मुख्य आधार बनाते है जिससे सामाजिक पर्यावरण का संगठनिक आधार दृढ़ रहे तथा समाज निरन्तर प्रवाहमान रहे।

बौद्ध साहित्य में सामाजिक पर्यावरण के सन्दर्भ में ब्राह्मणों द्वारा अपनाये गये अन्य व्यवसायों की भी चर्चा है जैसे सपनों के बारे में बताते थे[29], भाग्य बताते थे, शरीर के चिन्हों से चरित्र बताते थे,[30] जादू टोना, मंत्र जाप[31], चिंतामणि, पृथ्वीविजय मंत्र[32], भूतप्रेत को भगाने[33], तलवारों से भाग्य पढ़ने इत्यादि विविध कार्य करते थे। परन्तु बौद्ध साहित्य में ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का उल्लेख नहीं है। जैसा कि तत्युगीन ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख मिलते हैं कि ब्राह्मण की गुप्तधन में एक निश्चित भाग दिया जाना चाहिए। वहीं दण्डविधानों से मुक्त रखा गया था।[34] इसके विपरीत जातक ग्रन्थों में उल्लेख है कि सामान्य अपराध करने पर ब्राह्मण को समान दण्ड देने का उल्लेख है। ऐसे दृष्टान्तों से पता चलता है कि सामाजिक पर्यावरण में ब्राह्मणों की स्थिति पूर्व कालों से निम्न स्थिति को प्राप्त हो गयी थी।

बौद्ध साहित्य में वर्गों के क्रम में क्षत्रिय का प्रथम स्थान दिया गया।[35] दीघनिकाय में बुद्ध ने ब्राह्मण अम्बुष्ठ से कहा- हे अम्बुष्ठ स्त्री से स्त्री की तुलना की जाय अथवा पुरूष से पुरूष की क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है और ब्राह्मण हीन है।[36] अंगुत्तर निकाय एवं दीघनिकाय में कहा गया है कि क्षत्रिय जन्मना निष्कलंक है।[37] अश्वघोष ने सौन्दरानन्द में क्षत्रियों का वर्णन करते हुए लिखा है कि क्षत्रियों का रंग स्वर्ण के समान है, वक्षस्थल सिंह के समान, भुजाए लम्बी होती है।[38] यहाँ क्षत्रियों को दिये गये प्रतिमान पर्यावरण से उत्पन्न वस्तुओं पर आधारित है जो पर्यावरण संवेदना को प्रकट करता है।

बुद्धकाल में क्षत्रिय तीनों वेदों के शिक्षा ग्रहण करते थे।[39] समाज में क्षत्रियों की श्रेष्ठता बौद्धिक क्षेत्रों में भी स्थापित हो रही थी। बौद्ध साहित्य में वर्णन है कि शाक्यों ने अम्बुष्ठ नामक ब्राह्मण को अपमानित किया। वही राजा प्रसेनजित द्वारा पोक्खरसाति नामक ब्राह्मण के अनादर की चर्चा आती है। छठी शताब्दी में पुरातन सामाजिक व्यवस्था के प्रति गहरा असन्तोष दिखायी देता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भगवान बुद्ध एवं महावीर क्षत्रिय कुल में पैदा हुए और पुरातन व्यवस्था से गहरी असहमति प्रस्तुत किया। जातक निदानकथा में कहा गया है कि बुद्ध मनुष्य के योनि में जन्म लेने के पूर्व विचार किया कि किस कुल में जन्म लेना श्रेयस्कर है। सभी वर्गों के गुण-अवगुण के चिंतन के बाद क्षत्रिय वर्ण में जन्म लेना उचित समझा।[40] ऐसा ही दृष्टांत जैन साहित्य कल्पसूत्र में जैन आचार्य महावीर स्वामी के जन्म को लेकर आती है। इसमें कहा गया है कि पहले वे ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ में आये बाद में अपनी भूल स्वीकार कर त्रिशला नामक क्षत्राणी के गर्भ में प्रविष्ट हो गये।[41]

ये दृष्टांत सामाजिक तनाव को सन्दर्भित करते है। चूंकि विशेषाधिकारों को लेकर ब्राह्मण-क्षत्रिय के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ गयी थी। बुद्ध कालीन सामाजिक पर्यावरण में सामाजिक प्रतिस्पर्धा के मूल में अधिशेषों में होने वाली वृद्धि ने राज्यों के संसाधनों में वृद्धि को संभव बनाया। इसी कारण क्षत्रिय अपनी सामाजिक हैसियत को बढ़ाने में सफल हुए। बौद्ध पिटको में क्षत्रिय वर्ण के लोगों को सेनानायक, राजमंत्री, सामन्त अन्य पदों को सुशोभित करते हुए उल्लेख किया गया है। महावग्ग में राजा को मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा गया है।[42] सोनकजातक में कहा गया है कि ब्राह्मण तो हीन है, क्षत्रिय पवित्र कुलोत्पन्न है।[43] मनु ने भी बताया है कि राजा मनुष्य के रूप में देवता है। इसकी रचना विश्व की रक्षा के लिए हुई।[44] चूँकि क्षत्रिय आदिमकाल से ही योद्धा जाति थी। वे रक्त शुद्धता पर विशेष बल देते थे। माज्झिमनिकाय में धनुषबाण को क्षत्रियों की जीविक का प्रमुख साधन बताया गया है।[45] परन्तु बुद्धकाल में आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरणीय बदलावों की वजह से क्षत्रियों को अपने कार्यों से भिन्न कार्य अपनाना पड़ा। उन्हें वणिक, हस्तशिल्प, गायक-वादक, कुम्भकार, पाचक, वेतन पर कार्य करने वाले कर्मकार के रूप में उल्लेख मिलता है।[46]

इसी प्रकार का दृष्टान्त शाक्य एवं कोलिय जातियों के खेतों में क्षत्रियों द्वारा कृषि कार्य करने का वर्णन भी मिलता है।[47] तत्युगीन सामाजिक पर्यावरणीय परिस्थितियों के दबाव के कारण क्षत्रिय वर्ण अपने उपयुक्त कार्यों से इतर शिल्प एवं वाणिज्य कर्म अपना लिए थे।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल अनेक सामाजिक परिवर्तनों का काल रहा है। अर्थव्यवस्था में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों ने समाज व्यवस्था में युगान्तकारी एवं जटिल सामाजिक वर्गीकरण को जन्म दिया जिसमें असंख्य व्यवसायों का प्रादुर्भाव हुआ। वैश्यों की स्थिति पूर्णकालिक सामाजिक व्यवस्था से भिन्न एक सशक्त वर्ण के रूप में बुद्ध कालीन सामाजिक पर्यावरण में स्थापित होने लगी। बौद्ध साहित्य में वैश्य वर्ग के लिए गहपति, कुटुम्बी, श्रेणी शब्द व्यवहृत हुआ है। बौद्ध साहित्य में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय के पश्चात तथा शूद्र के पूर्व जो वर्ग है उसमें गहपति प्रमुख है।[48] इससे स्पष्ट होता है कि गहपति शब्द वैश्य के लिए प्रयोग हुआ है। वैश्यों का मुख्य कार्य कृषि, गोपालन तथा व्यापार-वाणिज्य था। तत्युगीन सामाजिक जीवन में सेट्ठि एवं सेठ के साथ-साथ बैंकपति एवं सार्थवाह जैसे वर्ग भी समाज में मौजूद था। राज्य का समस्त करभार वैश्यों के ऊपर था। ये लोग राज्य को कर के माध्यम से सम्पन्न बनाते थे वहीं दूसरी ओर दान-दक्षिणा के माध्यम से तत्युगीन उठ रहे श्रवण आन्दोलन के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

बौद्ध साहित्य में वैश्य के लिए कुटुम्बिक, शब्द का भी प्रयोग हुआ है।[49] यह नगरों में निवास करने वाले व्यापारी थे जो अनाज का क्रय एवं विक्रय[50] का कार्य करते थे तथा ब्याज पर रूपये उधार देने का कार्य करते थे।[51] कुछ कुटुम्बिक गाँव में भी निवास करते थे। सम्पन्न कृषक के रूप में इनका उल्लेख हुआ है।[52]

वैश्यों में सेट्ठि नामक वर्ग भी था वह समाज में धनाढ्य वर्ग के रूप में प्रतिष्ठित था। समाज में इसे विशेष सम्मान प्राप्त था। सेट्ठि के पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के पुत्रों के साथ होती थी, जिसके सम्बन्ध राजघरानों से घनिष्ठ थे। बौद्ध साहित्य में अनेक दृष्टांत मिलते है जैसे श्रावस्ती का अनाथपिण्डक[53] जिसने बौद्ध संघ को असंख्य मुद्राए दान में दी तथा बौद्ध धर्म के प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त करने के लिए जेतवन बिहार को भगवान बुद्ध के निवास के लिए समर्पित किया। जिससे भान होता है कि तत्युगीन समाज में इनका योगदान सभी वर्गों के कल्याण के लिए प्रेरणा स्रोत था। महाजनक जातक में उल्लेख है कि मंत्रिमण्डल में उसे प्रमुख स्थान प्राप्त था। व्यापारिक विचार विमर्श के लिए राजा समय-समय पर उसे राज्यसभा में बुलाता था।[54] जिससे ज्ञात होता है कि राज्य के नीति निर्माण में सबकी सहभागिता थी। सामाजिक असन्तोष व्यवसाय के स्तर पर न्यून था। व्यापारिक पर्यावरण में सबको सहभागिता प्रदान किया गया था। समाज में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं था।

इस कार्य में सामाजिक पर्यावरण में श्रवण आन्दोलन के बढ़ते प्रभावों के कारण दासों के सन्दर्भ में कठोर विधान करने की चर्चा बौद्ध साहित्य में मिलती है। चूँकि बुद्धकालीन समाज अनेक परिवर्तनों एवं संघातों से निर्मित हो रहा था। इस काल में बौद्ध संघों में अनेक वर्ण एवं जाति के लोग जिसमें ऋणग्रस्त व्यक्ति तथा दास आदि शामिल होने का प्रयास कर रहे थे। इसको ध्यान में रखते हुए संघ के नियम को कठोर किया गया इसी सन्दर्भ में भगवान बुद्ध ने कहा स्वामी की आज्ञा लेकर ही संघ में दास को शामिल होना चाहिए। तत्युगीन यह व्यवस्था इस ओर संकेत करती है कि सामाजिक संरचना को सुचारू रूपसे चलाने के लिए सभी वर्गों का परस्पर सहयोग अनिवार्य है था और सामाजिक पर्यावरण विश्रृंखलित न हो। उसकी निरंतरता, नवीनता एवं प्रासंगिकता बनी रहे।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. मज्झिमनिकाय 2, माधुरीसूक्त-पृष्ठ-343.
2. वही 2, पृष्ठ 150.
3. जातक 6, पृष्ठ 208,
4. मज्झिम निकाय 2, पृष्ठ 128.
5. शीलविभंस जातक पृष्ठ 86.
6. महावग्ग-पृष्ठ 4.
7. जातक जिल्द 1, पृष्ठ 371.
8. अंगुत्तरनिकाय 3, पृष्ठ 133.
9. सुत्तनिपात 3, पृष्ठ 7.
10. जातक जिल्द 1, पृष्ठ 166.
11. जातक 2, पृष्ठ 215.
12. कुरूधम्मजातक
13. पाचित्तिय-पृष्ठ 275-76.
14. अर्थशास्त्र
15. मनु सेक्रेड बुक आफ द ईस्ट जिल्द 29, पृष्ठ 233.

16. जातक 1, पृष्ठ 431.
17. जातक 2, 186.
18. कुणाल जातक.
19. मज्झिमनिकाय-पृष्ठ 98.
20. जातक 2, पृष्ठ 165.
21. दशब्राम्हणजातक पृष्ठ 495.
22. जातक 2, पृष्ठ 15.
23. आपस्तम्बधर्मसूत्र 1.7-20.11
24. गौतमधर्मसूत्र 10, पृष्ठ-5.
25. मनु, सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट जिल्द 25, पृष्ठ 128-39.
26. महावग्ग पृष्ठ 243-44.
27. दीघनिकाय 2, पृष्ठ 7.
28. सुत्तनिपात 3, पृष्ठ 7.
29. जातक 1, पृष्ठ 272.
30. वही 1, पृष्ठ 250.
31. वही 1, पृष्ठ 253.
32. वहीं 3, पृष्ठ 504.
33. वही 3, पृष्ठ 511.
34. मेहता-रत्तीलाल एन, प्री बुद्धिष्ट इंडिया, पृष्ठ 249.
35. चुल्लवग्ग 9-1.4, मज्झिमनिकाय 2 पृष्ठ 138.
36. दीघनिकाय 1 पृष्ठ 98.
37. जातक 1 पृष्ठ 98.
38. सौन्दरानन्द 1 पृष्ठ-19.
39. जातक-3 पृष्ठ 122-158.
40. वही-1 पृष्ठ 49.
41. सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट-22 पृष्ठ 218-229
42. महावग्ग, पृष्ठ 260.
43. जातक 5 पृष्ठ-257.
44. मनुस्मृति-7.2-8.
45. मज्झिमनिकाय (नालन्दासंस्करण) जिल्द-2 पृष्ठ 180.
46. जातक खण्ड-4 पृष्ठ 85-169.
47. जातक 5 पृष्ठ 290.
48. महावग्ग पृष्ठ 26.
49. जातक 2, पृष्ठ 267.
50. वही
51. वही 2, पृष्ठ 238.
52. वही 2, पृष्ठ 196.
53. जातक 3, पृष्ठ 122.
54. जातक 4, पृष्ठ 89.

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

भारतीय सभ्यता के उत्थान में राजस्थान का योगदान

•अविनाश कुमार

सारांश- मानव सभ्यता का इतिहास वस्तुतः मानव के विकास का इतिहास है। अतीत के राजनीति, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिवर्तन वर्तमान-कालीन इतिहास के प्रेरणा-स्त्रोत हो जाते है। इस अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली कड़ी ऐतिहासिक साधन है। राजस्थान के इतिहास समझने के लिए सबसे अधिक सहायक साधन शिलालेख और दानपत्र है जो यहाँ की कई ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन देते है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर यहाँ आने वाले कई यात्री भी रहे है, जिन्होंने कई घटनाओं के सम्बन्ध में अपना आँखों देखा वर्णन दिया है। यहाँ के इतिहास को पाने के लिए खाते, बहियों, हकीकतें आदि भी बड़े काम की है। जिनसे कई नए तथ्यों का पता चलता है। इन साधनों के अतिरिक्त प्राचीन खण्डहरों, मूर्तियों के अवशेषों, मुद्राओं, चित्रों आदि से भी जन-जीवन तथा सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु आज तक लिखे गए इतिहास में इन सभी साधनों का समुचित उपयोग किया गया हो, ऐसा भी नहीं है। इसका कारण यह रहा है कि विदेशी आक्रमणों के कारण इन साधनों की उपलब्धि आसानी से नहीं हो पाई और उनका समुचित उपयोग भी नहीं हो सका। दूसरा कारण यह है कि इतिहास लिखने का दृष्टिकोण भी समय-समय पर विभिन्न रूप में रहा है। इस शोध-पत्र के अंग गजेटियर्स, रिपोर्टस, चित्रित ग्रंथ, भवन, किले आदि भी है। जो इतिहास के लिए बड़े उपयोगी है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हम पुरातात्विक साधनों की ही विवेचना करेंगे और देखेंगे कि भारतीय सभ्यता के उत्थान में राजस्थान का ऐतिहासिक महत्व कितना है तथा उसका संक्षेप में वर्णन किया गया है। इतिहास के लेखन में स्त्रोत प्रमुख एवं महत्वपूर्ण आधार होते हैं। विश्वसनीय स्त्रोतों के आभाव में इतिहास कपोलकल्पित कहानी के रूप में लोगों का मनोरंजन भले ही कर ले किन्तु वह तत्कालीन घटनाओं की सही जानकारी नहीं दे सकता। अतः इतिहास-निर्माण की आधारशिला 'स्त्रोता' के संप्रव्यय से इतिहास के विद्यार्थियों को अवगत हो जाना आवश्यक है। पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री का राजस्थान के इतिहास के निर्माण में एक बड़ा योगदान है। इसके अन्तर्गत खोजों और खनन से मिलने वाली ऐतिहासिक सामग्री है, यह ठीक है कि ऐसी सामग्री का राजनीतिक इतिहास से सहज और सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इमारते, भवन, किले, राजप्रसाद, घर, बस्तियाँ, भग्नावशेष, मुद्राएँ, उत्कीर्ण लेख, मूर्तियाँ, स्मारक आदि से हम ऐतिहासिक काल-क्रम का निर्धारण तथा वास्तु और शिल्प-शैलियों का वर्गीकरण कर सकते है। स्मारकों के अध्ययन से न केवल स्थापत्य और मूर्तिकला ही जानी जाती है, अपितु उनसे उस समय के धार्मिक विश्वास, पूजा-पद्धति और सामाजिक जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल के अनेक भग्नावशेष तत्कालीन अवस्था का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते है। इसी प्रकार सिक्के शिलालेख एवं दान-पत्र भी अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं एवं स्थिति के साक्षी है। डॉ. रतिभानुसिंह नाहर ने प्रागैतिहासिक युग की व्याख्या करते हुए कहा है कि- 'मानव सभ्यता का इतिहास वस्तुतः मानव और उसकी सभ्यता का विकास कब और कहाँ हुआ? इस दिशा में जो महत्वपूर्ण खोजे हुई है, उनके अनुसार ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग अस्सी करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। मनुष्य अपने प्रारम्भिक जीवन में पशुवत् था। इस पशुवत् जीवन से ऊपर उठने के लिए उसने सहस्त्रों वर्ष लिए। मनुष्य के सहस्त्रों वर्ष के विकास का लिपिबद्ध और क्रमागत प्रामाणिक इतिहास प्राप्त नहीं है, इसलिए इस युग को इतिहासकारों ने प्रागैतिहासिक युग की संज्ञा दी है। प्रागैतिहासिक काल के विभिन्न सोपानों का नामकरण आदि मानव द्वारा उसकी विकास यात्रा में प्रयुक्त हथियारों, औजारों व उपकरणों के निर्माण में लगे प्रदार्थो के आधार पर किया गया है। इनके अवशेष विश्व, भारत व राजस्थान के अनेक भागों में उपलब्ध

• सहायक प्रोफेसर, चित्रकला विभाग, देवता महाविद्यालय, मौरना

हुए है। प्राचीन सभ्यता की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाओं से अवगत हो पाना आवश्यक है जिससे कि राजस्थान के विभिन्न स्थानों से प्राप्त इन अवशेषों से मानव सभ्यता के विकास में राजस्थान का योगदान समझा जा सके।

मुख्य शब्द- सभ्यता, ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक, मानव, सिक्के, अवशेष, खनन

इतिहास के लेखन में स्त्रोत प्रमुख एवं महत्वपूर्ण आधार होते है। विश्वसनीय स्त्रोत के आभाव में इतिहास कपोलकल्पित कहानी के रूप में लोगों का मनोरंजन भले ही कर ले किन्तु वह तत्कालीन घटनाओं की सही जानकारी नहीं दे सकता। अतः इतिहास-निर्माण की आधारशिला 'स्त्रोतों' के संप्रव्यय से इतिहास के विद्यार्थियों को अवगत हो जाना आवश्यक है। पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री का राजस्थान के इतिहास के निर्माण में एक बड़ा योगदान है। इसके अन्तर्गत खोजों और खनन से मिलने वाली ऐतिहासिक सामग्री है। यह ठीक है कि ऐसी सामग्री का राजनैतिज्ञ इतिहास से सहज और सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु इमारतें, भवन, किले, राजप्रसाद, घर, बस्तियाँ, भग्नावशेष, मुद्राएँ, उत्कीर्ण लेख, मूर्तियाँ स्मारक आदि से हम ऐतिहासिक काल-क्रम का निर्धारण तथा वास्तु और शिल्प-शैलियों का वर्गीकरण कर सकते है। स्मारकों के अध्ययन से न केवल स्थापत्य और मूर्तिकला ही जानी जाती है, अपितु उनसे उस समय के धार्मिक विश्वास, पूजा-पद्धति और सामाजिक जीवन पर भी प्राकश पड़ता है। प्रागैतिहासिक काल से मध्यकाल के अनेक भग्नावशेष तत्कालीन अवस्था का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करते है। इसी प्रकार सिक्के शिलालेख एवं दान-पात्र भी अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं एवं स्थिति के साक्षी है। डॉ. रतिभानुसिंह नाहर ने प्रागैतिहासिक युग की व्याख्या करते हुए कहा है कि - "मानव सभ्यता का इतिहास वस्तुतः मानव के विकास इतिहास है। पर आज तक यह प्रश्न विवादग्रस्त रहा है कि आदि मानव और उसकी सभ्यता का विकास अब और कहाँ हुआ? इस दिशा में जो महत्वपूर्ण खोजें हुई है, उनके अनुसार ऐसा अनुमान किया जाता है कि लगभग अस्सी करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन के चिन्ह प्रकट होने लगे थे। मनुष्य अपने प्रारम्भिक जीवन में पशुवत् था। इस पशुवत् जीवन से ऊपर उठने के लिए उसने सहस्त्रों वर्ष लिए। मनुष्य के सहस्त्रों वर्ष के विकास का लिपिबद्ध और क्रमागत प्रामाणिक इतिहास प्राप्त नहीं है। इसलिए इस युग को इतिहासकारों ने प्रागैतिहासिक युग की संज्ञा दी है। प्रागैतिहासिक काल के विभिन्न सोपानों का नामकरण आदि मानव द्वारा उसकी विकास यात्रा में प्रयुक्त हथियारों औजारों व उपकरणों के निर्माण में लगे पदार्थों के आधार पर किया गया है। इनके अवशेष विश्व, भारत व राजस्थान के अनेक भागों में उपलब्ध हुए है प्राचीन सभ्यता की भौगोलिक स्थिति एवं सीमाओं से अवगत हो जाना आवश्यक है जिससे कि राजस्थान के विभिन्न स्थानों से प्राप्त इन अवशेषों से मानव सभ्यता के विकास में राजस्थान का योगदान समझा जा सके।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते हुए डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने कहा है कि "राजस्थान आकार में विषम कोणीय चतुर्भुज है जिसके उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी कोणो में बीकानेर, जैसलमेर, बांसवाड़ा तथा धौलपुर की सीमाऐं मिलती है। इसके पश्चिम में तथा उत्तर पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर-पूर्व में पंजाब, उत्तर-पूर्व और पूर्व में उत्तर-प्रदेश और पूर्व में ग्वालियर और दक्षिण में मध्य प्रदेश और गुजरात है। यह समूचा राज्य लगभग 23.30 से 30.120 उत्तरी अक्षांश और 69.300 से 78.170 पूर्वी देशान्तरों के बीच फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल लगभग 1,32,147 वर्गमील है। इसकी बनावट के आधार पर

पाँच स्पष्ट प्राकृतिक भाग दिखाई देते है। पर्वतीय प्रदेश, पठारी भाग, मैदानी हिस्सा, मरूस्थलीय भाग तथा नदियों के प्रकार राजस्थान की भौगोलिक अवस्था का प्रभाव ऐतिहासिक घटनाओं और यहाँ के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है। राजस्थान का प्रागैतिहासिक महत्व डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार "राजस्थान में राजपूत राज्यों की स्थापना ऐतिहासिक कालक्रम में बहुत ही निकट की है। इन राज्यों की स्थापना के पहले युग-युगान्तर के अन्तराल व्यतीत होते रहे है और यहाँ भू-भाग की विविधता और वैचित्य की भाँति ऐतिहासिक घटनाओं में विलक्षणता आती रहती है। इस प्रकार के वैविध्य की साक्षी मरूस्थल या चट्टानों में दबे जीवाश्म या भू-गर्भ में दबे नमक के आकार तथा मिट्टी के ढेर में सोई हुई बस्तियाँ तथा मंदिर आदि दे रहे है। इन सामग्रियों का वैज्ञानिक अध्ययन हमें इस निश्चय पर पहुँचाता है कि भारतीय प्राचीनतम बस्तियों में राजस्थान का एक महत्वपूर्ण स्थान है और उसकी गणना अनुमानत: एक लाख वर्ष के प्राचीन प्रतीकों में की जा सकती है।

प्रागैतिहासिक राजस्थान के ऐतिहासिक स्त्रोत एवं विशेषताएँ- राजस्थान में प्रस्तर युगीन मानव के निवास का पता उन उपलब्ध प्रस्तर हथियारों व औजारों से लगता है जो वर्तमान में बांसवाड़ा, डूँगरपुर, उदयपुर, भीलवाडा, बूँदी, कोटा, झालावाड़, जयपुर आदि नगरों में बनारस, गम्भीरी, बेडच, बाधन तथा चम्बल नदियों की घाटियों व तटवर्ती स्थानों से उपलब्ध हुए है। ये हथियार व औजार जिनका प्रयोग प्रस्तर युगीन मानव करता था अत्यन्त, भद्दे, भौडे व अनगढ़ थे। इस प्रकार के अवशेषों के प्राप्ति स्थलों में निम्नांकित उल्लेखनीय है।

- चम्बल और बामनी नदी के तट पर भैसराडगढ़ व नवाधार स्थान
- ल्णी नदी के तट पर जोधपुर में
- गम्भीरी नदी के तट पर चित्तौडगढ़ जिले में नगरी, खोर, ब्यावर, खेडा, बडी, अचनार, ऊणचा, देवडी, हीसेजी का खेडा, बटले खेडा आदि स्थान, गागरोन (जिला झालावाड), गोविन्दगढ़ (अजमेर जिले में सागरमती नदी तट पर) कोकानी (कोटा जिले में पखन नदी तट पर) आदि अन्य स्थान।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (1958-1960) के आधार पर डॉ. सत्यप्रकाश व डॉ. दशरथ शर्मा ने उपर्युक्त स्त्रोतों के आधार पर राजस्थान में प्रस्तरयुगीन मानव की सभ्यता पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "प्रस्तर युगीन मानव का राजस्थान में आहार शिकार किए हुए बनैले जानवरों का मॉस और प्रकृति द्वारा उपजाये कन्द, मूल फल आदि थे। इस काल का मनुष्य अपने मृतकों को जानवरों, पक्षियों और मच्छियों के लिए मैदान या पानी में फेक दिया करता था। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने राजस्थान में प्रस्तर धातु युग के प्रमुख स्त्रोत उत्खनन से उपलब्ध दो केन्द्रों- कलीबंगा तथा आहड का उल्लेख करते हुए अपना मत व्यक्त किया है कि "अब तक जो हमने राजस्थान के बारे में जानने का मार्ग ढूँढा वह तमपूर्ण था। आगे चलकर मानव इन स्तरों से आगे बढ़ा और राजस्थानी सभ्यता की गोधूली की आभा स्पष्ट दिखाई देने लगी। ऋग्वेद काल से शायद सदियों पूर्व "आहड" (उदयपुर के निकट) तथा हवद्दृढती और सरस्वती (गंगानगर के निकट) नदियों के कॉठे (किनारे) जीवन लहरें मारता हुआ दिखाई देने लगा। इन कॉठो पर मानव-संस्कृति सक्रिय थी और कुछ अंश में हडप्पा तथा मोहनजोदडों की सभ्यता के समकक्ष तथा समकालीन सी थी। आज से पाँच, छ: हजार वर्ष पहले इन नदी-घाटियों में बसकर मानव पशु पालने, भाण्ड बनाने, खिलौने तैयार करने मकान-निर्माण करने आदि कलाओं को जान गया था। इस सुदूद अतीत को समझने के लिए

हमें कालीबंगा व आधारपुर (आहड) में उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करना होगा।

राजस्थान की मानव सभ्यता के विकास में कालीबंगा का योगदान- राजस्थान के गगांनगर जिले में स्थित कालीबंगा स्थान पर उत्खनन द्वारा (1961 से 1970 ई.) के मध्य किए गए 26 फीट ऊँची पश्चिमी थेडी से प्राप्त अवशेषों से विदित होता है कि लगभग 4500 वर्ष पूर्व यहाँ सरस्वती नदी के किनारे प्राक-हडप्पा कालीन सभ्यता फल-फूल रही थी।हमारे देश में "सैधव सभ्यता" का मूलतः उदभव, विकास एवं प्रसार "सप्तसिन्धवः" प्रदेश में हुआ तथा सरस्वती उपत्यका का उसमें विशिष्ट योगदान है।सरस्वती घाटी सरस्वती एवं हषद्वती के मध्य स्थिति "बत्यवर्त" का पवित्र प्रदेश था जो मनु के अनुसार "देवनिर्मित" था। धनधान्य से परिपूर्ण इस क्षेत्र मे वैदिक ऋचाओं का उद्बोधन भी हुआ। सरस्वती (वर्तमान धग्धर) नदियों में उत्तम थी तथा गिरि से समुंद्र में प्रवेश करती थी। ऋग्वेद (सप्तम् मण्डल 2/95) में कहा गया है "एकाचतत् सरस्वती नदी नाम शुचिर्यतौ। गिरभ्यः आसमुद्रात।।" सतलज उत्तरी राजस्थान में सरस्वती में सप्ताहित होती थी। अंग्रेज भूगोल वेन्ता सी. एफ. ओल्डन ने ऐतिहासिक और भौगोलिक तथ्यों के आधार पर बताया था कि धग्धर-हकरा नदी के घाट पर ऋग्वेद में बहने वाली नदी सरस्वती "द्रवद्वती" थी। तब सतलज व यमुना नदियाँ अपने वर्तमान पाटों में प्रवाहित न होकर धग्धर व हकरा के पाटों में बहती थी। डॉ. वाकणकर के अनुसार सरस्वती नदी के तट पर 200 से अधिक नगर बसे थे जो हडप्पा कालीन है। इस कारण इसे "सिंधु घाटी की सभ्यता के स्थान पर सरस्वती नदी की सभ्यता कहना चाहिए। मूलतः धग्धरा-हकरा ही प्राचीन सरस्वती नदी थी जो सतलज और यमुना के संयुक्त जलधार से बहती थी जो हरियाणा से राजस्थान होते हुए गुजरात तक बहती थी जिसका पाट (चौड़ाई) ब्रह्मपुत्र नदी से बढ़कर 8 कि.मी. था। डॉ. वाकणकर के अनुसार सरस्वती नदी 2 लाख 50 हजार वर्ष पहले नागौर, लूनासर, आसियाँ, डीडवाना होते हुए लणी से मिलती थी जहाँ से वह पूर्व में कच्छ का रण नानूरण जल सरोवर होकर लोथल के निकट खंभात की खाड़ी में गिरती थी किन्तु 40,000 वर्ष पहले भूचाल आया था तथा 10,000 वर्ष पूर्व एक दूसरा भूचाल आया जिनके कारण सरस्वती नदी मार्ग परिवर्तन कर धग्धर नदी के मार्ग से होते हुए हनुमानगढ़ और सूरतगढ़ के बहावलपुर क्षेत्र में सिंधु नदी के समानान्तर बहती हुई कच्छ के मैदान में समुंद्र से मिल जाती थी। महाभारत काल में कौरव-पाण्डव मृदु इसी सरस्वती नदी के तट पर लड़ा गया। इसी काल में सरस्वती के विलुप्त होने पर यमुना, गंगा में मिलने लगी।1922 ई. में राखलदास बैनर्जी के नेतृत्व में मोहनजोदडों व हडप्पा (लरकाना जिले में स्थित) के उत्खनन द्वारा हडप्पा या सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष मिले थे जिनसे 4500 वर्ष पूर्व की प्राचीन सभ्यता का पता चला था। बाद में इस सभ्यता के लगभग 100 केन्द्रों का पता चला जिनमें राजस्थान का कालीबंगा केन्द्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मोहनजोदडों व हडप्पा के बाद हडप्पा संस्कृति का कालीबंगा तीसरा बड़ा नगर सिद्ध हुआ है जिसके एक टीले के उत्खनन द्वारा निम्नांकित अवशेष स्त्रोत के रूप में मिले है, जिनकी विशेषताएँ भारतीय सभ्यता के विकास में उनका योगदान स्पष्ट होता है -

- ताँबे के औजार व मूर्तियाँ
- अंकित मुहरे
- ताँबे या मिट्टी की बनी मूर्तियाँ, पशु-पक्षी व मानवकृतियाँ
- तोल के बाट
- बर्तन

- आभूषण
- नगर नियोजन
- कृषि कार्य संबंधी अवशेष
- खिलौने
- धर्म संबंधी अवशेष
- दुर्ग (किला)

कुछ पुरातत्ववेता तो सरस्वती तट पर बसे होने के कारण कालीबंगा सभ्यता को "सरस्वती घाटी सभ्यता" कहना अधिक उपयुक्त समझते है क्योंकि यहाँ का मानव प्रागैतिहासिक काल में हडप्पा सभ्यता से भी कई दृष्टि से उन्नत था।

आहड का सांस्कृतिक महत्व- राजस्थान में प्राचीन मेवाड़ क्षेत्र का पुरातत्व की दृष्टि से अलग ही महत्व है। इस क्षेत्र की नदियों के तटों पर पाषाण कालीन (प्रस्तर युग) संस्कृतियों के अवशेष के अतिरिक्त अनेक स्थानों पर आहडकालीन संस्कृतियों के अवशेष भी पाये गए है। जिनकी अपनी पृथक विशेषता है। प्राचीन मेवाड़ में आहड (उदयपुर) के समान सभ्यता का विकास मुख्यत: बनारस और सहायक नदियों आहड, बागन, पिण्ड, बेडच, गम्भीरी, कोठारी, मानसी, खारी व अन्य छोटी नदियों के किनारे हुआ है इसलिए पुरातत्वेता इस सभ्यता को बनारस घाटी की सभ्यता के नाम से भी पुकारते है।

आहड को प्राचीन काल में "ताम्रवती" नगरी के नाम से भी पुकारा जाता रहा है। इसका कारण यहाँ हुए ताम्र उपकरणों का विकास ही है। अन्य स्थानों पर भी जहाँ ताँबा पाया जाता है। इस संस्कृति के अवशेष मिले है। जिन स्थानों पर इस सभ्यता के अवशेष मिले है वे "धूलकोट" के रूप में थे जिन्होंने लम्बे समय तक इस सभ्यता के अवशेषों को अपने गर्भ में सुरक्षित संजोये रखा है। पुरातत्ववेन्ता डॉ. एच. डी. सांकलिया के अनुसार तीन ओर से अरावली पर्वतमालाओं से राजस्थान का यह भाग बनारस और उसकी सहायक नदियों नालों के जल से पूरित, वन-सम्पदा एवं खनिज सम्पदा से भरपूर, उत्तम वर्ष व संतुलित जलवायु से युक्त होने के कारण प्राचीनकाल से ही प्रागैतिहासिक मानव का आवास-स्थल रहा है। उत्खनन कार्य आहड में योजनाबद्ध रूप से 1952 से 1956 के मध्य राजस्थान के राजकीय संग्रहालय एवं पुरातत्व विभाग के तत्कालीन अधीक्षक रतनचंद अग्रवाल द्वारा करवाया गया था। 1960 में दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. बी.वी. लाल ने उदयपुर के दक्षिणोत्तर में 72 कि. मी. दूर बनारस के किनारे 'गिलूंड' में आहड समकालीन संस्कृति के अवशेषों को खोज निकाला। बनारस घाटी में आहडकालीन संस्कृति के अवशेषों के एक के बाद एक निरन्तर मिलते रहने से प्रेरित होकर 1968 में दक्कन-कॉलेज, पूना के डॉ. हसमुख धीरजलाल सांकलिया के नेतृत्व में विशाल पैमाने पर सामेकि खोज का आयोजन किया गया। इस खोज दल में राजस्थान पुरातत्व निदेशक एस.पी. श्रीवास्तव, ऑस्ट्रेलिया के मेलबोर्न विश्वविद्यालय के डॉ. विलियम कुलीकेन, डॉ. काजी, डॉ. निक्सन तथा राजस्थान पुरातत्व विभाग के चक्रवर्ती विजयकुमार और सिन्हा भी सम्मिलित थे। इस दल ने अपने शोध-सर्वेक्षण से सिद्ध किया कि आहडकालीन संस्कृति के अवशेष राजस्थान के उदयपुर, चित्तौडगढ़, भीलवाडा, अजमेर, टौंक और जयपुर में तो उपलब्ध है ही, साथ ही मध्यप्रदेश और गुजरात के अनेक भागों में भी उपलब्ध है। प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता एवं संस्कृति में आहड सभ्यता का विशिष्ट योगदान था। कालीबंगा की भाँति आहड संस्कृति भी

प्रागैतिहासिक कालीन सांस्कृतिक विकास की महत्वपूर्ण कड़ियाँ सिद्ध होती है। जिनके अनेक नवीन जानकारियाँ मिलती है। आहड सभ्यता के प्रसार का विवरण देते हुए डॉ. दशरथ शर्मा का कथन है कि – "यह सभ्यता, ऐसा प्रतीत होता है कि आहड से उत्तरपूर्व और दक्षिण–पूर्व की ओर बढ़ी जैसा कि गिलूंड और भगवानपुरा से मिलने वाली सामग्री से सिद्ध होता है। यह तो सर्वमान्य है कि आहड – सभ्यता का आरम्भ गिलूंड की सभ्यता (लगभग 1500 ई.पू.) से अधिक प्राचीन रही होगी, क्योंकि आहड का जटिल और समन्वित नागरिक जीवन नि:सन्देह शताब्दियों के विकास का परिणाम था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

- भारतीय चित्रकला – श्री वाचस्पति गैरोला
- भारतीय चित्रकला का विवेचन – आर.ए. अग्रवाल
- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, 1951–गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा
- आर्ट आफ इंडिया, पृ–23–हेलन रूबीसो
- भारत की चित्रकला, वाराणसी, 1939, पृ–39–रायकृष्णदास
- आर्ट ऑफ दी वर्ल्ड, पृ–139–हर्मन गोएट्ज
- स्टडीज इन इंडियन पेटिंग, मुम्बई, 1926, पृ–16–एन.सी. मेहता
- विशाल भारत, 1947, भाग 40, अंक 6, पृ–341–348–मुनि कांतिसागर
- कला–निधि, अंक 1, वर्ष प्रथम, 1948– डॉ. मोती चन्द्र

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

मराठों में 'कम्पू' व्यवस्था का आगमन

• अंतिमा कनेरिया

सारांश- मराठों की प्राचीन युद्ध पद्धति को 'छापामार' युद्ध प्रणाली अथवा 'गुरिल्ला युद्ध प्रणाली के नाम से जाना जाता है। युद्ध की यह विधि केवल पहाड़ी दर्रो और पहाड़ी प्रदेश तक ही कारगर थी किंतु जब शत्रु से खुले मैदान अथवा आमने-सामने की मुठभेड़ होती थी तब छापामार युद्ध विधि सफल नहीं हो पाती थी। समय की मांग के अनुरूप मराठा सामन्तों ने मराठाराही सेना में आवश्यक सुधार और संशोधन किये और वे यूरोपियन्स सेनानायकों के सम्पर्क में आये और उनके सहयोग से उन्होंने कवायती सेना का गठन किया। कवायती सेना में प्रशिक्षण प्राप्त दल सैनिकों और तोपखाने का उपयोग विशाल स्तर पर किया जाता था।

मुख्य शब्द- युद्ध पद्धति, गुरिल्ला युद्ध, कम्पू व्यवस्था

कदाचित भारत में कवायती सेना का सर्वप्रथम श्रीगणेश दक्षिण भारत से प्रारम्भ हुआ था। भारत में यूरोपियन गारदियों (गार्ड़ से उत्पन्न यह पद्धति गारदिय कहलाई) को रखने का श्रेय हैरदअली को जाता है और हैदर के पश्चात उसके पुत्र टीपू ने इस पद्धति को चरम पर पहुँचा दिया था। तत्पश्चात निजाम ने इस पद्धति अपनाया था। इन सभी से प्रेरित होकर सदाशिव भाऊ पेशवा ने गारदी सेन की कल्पना का अनुशरण किया। उत्तर भारत में तो यूरोपियन्स और फ्रेन्चों के अनुकरण से बहुत से राजे-रजवाड़ों ने अपने यहाँ यूरोपियन्स गारद रखने रीति-नीति को अपना लिया था। फ्रेन्च नीतिज्ञ डि-बॉयन के आगमन के पूर्व ही गोहद के राजा ने मन्ड़ों नामक एक फ्रेन्च सैनिक की सहायता से कवायती फौज की एक पलटन तैयार की थी किंतु मध्यभारत में कवायती सेना को रखने और उसे फलीभूत करने का श्रेय ग्वालियर के शासक महादजी सिंधिया (1761-1794) को जाता है।

लालसोट और टुंगा के युद्धों में महादजी सिधिंया को राजपूतों से पराजित होना पड़ा था। पराजय के घावों से वह अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा था। दुंगा की विजय जयपुर नरेश प्रतापसिंह की यह एक यशस्वी विजय थी। सन् 1789ई. में इस विजय के अवसर एवं उपलक्ष्य में प्रतापसिंह ने दीन-दुखियों के मध्य 24 लाख रूपये वितरित किय थे। 'कछवाह-राठौड़ संघ' महादजी के हृदय में शूल की भांति रखटक रहा था।

तभी अति दुर्भाग्य का मारा और विलायत के अनेक देशों में नौकरी के लिए धक्के खाते हुये एक फ्रेन्च नीतिज्ञ अपना भाग्य आजमाने के लिए भारत आया। जिसका नाम डी-बॉयन (डिवाइन) था। भारत आकर डिवाइन ने सर्व प्रथम महादजी सिंधिया के शत्रु जयपुर के राजा के यहाँ दो हजार रूपये मासिक पर नौकरी के लिए नियुक्त हुआ। तत्पश्चात 1782ई. में सालबाई की सन्धि के समय डिवाइन की मुलाकात उत्तर भारत के राजे-रजवाड़े से काम चलाऊ मैत्री हो गई। कालान्तर में जयपुर दरबार ने डिवाइन को दस हजार रूपये पारितोषक में देकर उसे सेवा से पृथक कर दिया।

अपने आसपास बेकाम भटकने वाले अग्रंजों पर महादगी की सूक्ष्म दृष्टि लगी ही रहती थी, तभी महादजी की नजर डिवाइन पर पड़ी। प्रथम तो महादजी ने उसे अपनी कसौटी पर परख कर देखा और जब डिवाइन उसकी कसौटी पर खरा उतरा तब महादजी ने एक हजार

• सहायक प्राध्यपक इतिहास शासकीय आदर्श महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)

रूपये मासिक पर अपनी सेवा में रख लिया। डिवाइन की नियुक्ति पहले-पहल सिंधिया सरदार अप्पा खड़ेराव के हाथ के नीचे हुई। इस प्रकार डिवाइन सन् 1784ई. के अन्त में सिन्धिया को सेवा में प्रविष्ठ हुआ था।

यदि कवायती सेना के मालवा के इतिहास पर नजर डाले तो हमें यह विदित होता है कि मालवा के माराठा सामन्तों पर कवायती सेना को रखने का एक नशा सा सवार था। कवायती सेना को मराठा सेना की 'कम्पू-व्यवस्था' के नाम से भी जाना जाता है जिसका तात्पर्य हाता है- 'एक सधी हुई ब्रिगेड का निर्माण करना।' कम्पू शब्द ग्वालियर में सर्वाधिक प्रचलित है। इस कम्पू व्यवस्था प्रशिक्षणकर्ता अफसर वर्ग के विदेशी लोग ही होते थे। देवी अहिल्या (1767-1795) ने अपने शासन काल में एक अमेरिकन फौजी अधिकारी कर्नल जे.पी.वाइड़ से सन् 1792ई. में एक सधी हुई ब्रिगेड़/बटालियन रखने का समझौता किया था किंतु देवी की मित्तव्ययता के कारण केवल चार बटालियन ही तैयार हो पाई थी। होलकर राज्य के सेनापति तुकोजीराव होलकर (1995-1797) ने एक फ्रेन्च कप्तान शेहवेलियर दूरद्नेक को कवायती सेना के निए नियुक्त किया था।

जीन घर - जीन सख्त' के धनी महाराजा यशवंत राव होलकर प्रथम (1798-1811 ई) को सेना में विदेशी कप्तान आमस्ट्रिंग, विकर्स, और हाण्डिग्ज जैसे यूरोपियन अधिकारी थे और उसके पास एक सधा हुआ तोपखाना भी था। उसके पास 16 बटालियने थी जो यूरोपीय अधिकारियों के द्वारा साधी गई थी, जिसमें 11 हजार सैनिक थे।

पानीपत के तृतीय युद्ध सन् 1761ई. में मराठों की पराजय के पश्चात जब महादजी सिन्धिया भाग रहा था, तभी एक दुर्रानी ने उसके पैर पर एक सेवा घातक प्रहार किया जिससे वह जीवन पर्यन्त के लिए लंगड़ा हो गया। सौभाग्य से यही डिवाइन लंगड़े महादजी की बैसाखी बना। डिवाइन ने महादजी की सेना का नवीनीकरण किया और उसने रंगरूटों की भर्ती की जिसमें अनेक जातियों के यूरोपियन्स थे। कवायती सेना के सैनिकों को नया यूनीफार्म दिया गया। इस नयी व्यवस्था में डिवाइन को जनरल का पद प्राप्त हुआ था। सेना के व्यय के लिए महादजी सिन्धिया ने उसे 16 लाख की जागीरी दी और डिवाइन का मासिक वेतन 10 हजार रूपये बढ़ाया गया।

सेना के व्यय के लिए डिवाइन को जो जागीरी दी गई थी उसमें आगरा जिले का 'बाहपिनाहट' और 'जलेसर' सम्मिलित था। जलेसर उस समय मथुरा में और कालान्तर में आगरा जिले में सम्मिलित हो गया था। ड़िवाइन की सधी हुई सेना ने प्रथम तीन वर्षो में कालिंजर, लालसोट, आगरा और चकसाना के युद्ध में भारी पराक्रम दिखाया था। महादजी की इस सेना ने सन् 1792ई. में लखेरी के युद्ध में तुकोजीराव होलकर (प्रथम) की सेना को भी परास्त किया था।

सिंधिया सेनापति गोपाल भाऊ के नेतृत्व में जब ड़िवाइन की सधी हुई सेना राजस्थान में चौथ वसूलने गई तब इस कवायती सेना ने असंदिग्ध और आश्चर्यजनक परिणाम दिये थे। 1793ई. तक सिंधिया की कवायती सेना की संख्या 30 हजार तक हो गई थी। इस कवायती सेना में भिन्न श्रेणी और वेतन प्राप्त कर्ता यूरोपियन्स अधिकारी थे। कवायती सेना में तीन हजार मासिक का लेफ्टिनेन्ट कर्नल, बारह सौ रूपये वेतन का, मेजर, चार सौ वेतन का कप्तान तथा डेढ़ सौ से दो सौ रूपये वेतन के लेफ्टिनेंन्ट रैंक के अधिकारी कार्यरत थे।

सिंधिया की सधी हुई ब्रिगेड़ ने पूरे भारत में उसकी यशस्वी जीत के डंके बजा दिये थे, जिसका सम्पूर्ण श्रेय फ्रेन्च नीतिज्ञ डिवाइन को जाता है।

यह बात इतिहास के फलक पर स्वत: अभरकर अमिट हो गई कि "इतिहास बैसाखी

से नहीं बल्कि बारूद से लिखे जाते है।" इस बात को डिवाइन ने सिद्ध कर दिया था। ड़िवाइन के अनुयायी और उसके प्रशंसक एम.एफ.स्मिथ उसकी कार्यक्षमता और चरित्र के विषय में लिखा है कि – "ड़िवाइन अपने कार्य के प्रति बेहद सक्रिय और धैर्य वान था। वह सूर्य उदित होते ही उठ जाता था और अपने शस्त्रागार और सेना का निरिक्षण करता था, नये सैनिकों की भर्ती करता था, गोला–बारूद के निर्माण को प्रोत्साहन देता था। सिंधिया के दरबार में भाषण देता था। उसके पत्रों को देखकर उनके प्रति उत्तर देता था। वह प्रतिदिन 18 घंटे परिश्रम करता था।"

इन सब गुणों के अतिरिक्त वह अपने स्वामी सिंधिया के प्रति दृढ़ और अविचलित स्वामी भक्त था। उसके शिष्टाचार में विनम्रता और सुन्दरता थी। उसका व्यवहार संतुलित, आकर्षक और प्राणमय था। सेनानायकों में वह भारत के सर्वोच्च कोटि के लोगों में गणना के योग्य था। संकट की घड़ी में वह अनुपम धैर्य रखता था। महादजी, डिवाइन की सेवाओं से अत्यधिक प्रसन्न था। फलतः उसे भी अपनी सेवाओं का फल बदले में महादजी से प्राप्त होता रहा। कालान्तर में डिवाइन की आमदानी क्रमशः बढ़ते–बढ़ते 32 लाख रूपयों पर पहुँच गई थी।

डिवाइन अपनी जागीरी की आमदानी से न केवल कम्पू व्यवस्था सेना का रख–रखाब करता था उसके अतिरिक्त वह महादजी की सेना के सभी लोगों का वेतन भी समय पर देता था। जागीरी की आमदनी से उसे जो अतिरिक्त ऊपर की आमदनी जो होती थी उस पर सिन्धिया सरकार उसे दो रूपया सैकड़ा ब्याज भी देती थी। इसी पूँजी से वह स्वयं भी धनवान हो गया था। सत्य इतना अवश्य है कि महादजी के समय में ड़िवाइन तो एक प्रकार से नवाब ही बन गया था पर अन्तर केवल इतना था कि वह ऐश्वर्यशाली नवाब न होकर एक सैनिक नवाब था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. नरसिंह चिंतामणि केलकर – मराठे आणि इंग्रेज, अनुवादक–हरिकृष्ण जोशी, संस्करण 1971–पृ. 208
2. कर्नल टाड़ – राजस्थान का इतिहास, अनुवादक – केशव कुमार ठाकुर पृ. 657–658
3. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 208
4. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 208
5. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 201
6. टॉड –राजस्थान का इतिहास, पृ. 270
7. सदुनाथ सरकार – फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, अनुवादक डॉ. मथुरालाल शर्मा, पृ. 76
8. वही –पृ. 189
9. डॉ. मथुरालाल शर्मा– मुगल कालीन भारत–राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास (1526–1803ई.) पृ. 341
10. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 201
11. दिल्ली येथील मराठयांची राजकारने, जि. 2 – पृ. 27 – महादजी सिन्धिया संबंधित एतिहासिक पत्र – 570
12. डॉ. मथुरालाल शर्मा – मराठों का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 455
13. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 210
14. यदुनाथ सरकार –फाल आयु दि मुगल एम्पायर, अनुवादक – वही पृ. 112
15. एच. क्रॉम्पटन – एक पर्टिक्युलर एकाउण्ट ऑफ दि यूरोपियन मिलिट्री एडव्हेन्चर्य ऑफ हिन्दुस्तान, पृ. 102–105
16. केलकर – ग्रन्थ वही पृ. 201

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

गुप्तकालीन भारत में ताम्र निर्मित बुद्ध की महाप्रतिमा : एक ऐतिहासिक विमर्श

•अमोल कुमार

सारांश- गुप्त काल में भिक्षु यशदिन्न ने बुद्ध की अनेक प्रतिमायें मथुरा और उसके पास के क्षेत्र में बनवायी और उन्हें प्रतिष्ठित किया। इनमें से एक प्रतिमा कुशीनगर में है। और बुद्ध की दूसरी मूर्ति मथुरा कला केन्द्र की अनुपम देन है। यह मूर्ति लगभग 6 फुट 2.5 इंच ऊँची है जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में राजनीतिक विखण्डन का एक लम्बा दौर चला। चौथी शताब्दी में इस राजनीतिक विखण्डन का दौर समाप्त हुआ जब एक विशाल गरिमामयी केन्द्रीय सत्ता की स्थापना हुई जो 'गुप्त साम्राज्य' के नाम से प्रसिद्ध है। गुप्तकालीन बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों में कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है जो उसे अन्य कला शैली से अलग करती है। गांधार कला शैली में मर्तियों का निर्माण भूरे और स्लेटी पत्थर से किया गया था परन्तु गुप्त युग में मूर्ति निर्माण के लिए अलग प्रकार के पाषाण से किया गया था। इस खड़ी मूर्ति में मुख पर शांति तथा ध्यान के भाव दर्शनीय है। यह मूर्ति गुप्त शासन के प्रारंभिक समय की है, जिसे मथुरा की कुषाण शैली का प्रसरण कहा जा सकता है। इस प्रतिमा में कुषाणकालीन मूर्तन की कठोरता नहीं है, गुप्त काल में नयी सहजता एवं भावाभिव्यक्ति इसमें दृष्टिगोचर होती है।

मुख्य शब्द- यशदिन्न, कुषाण साम्राज्य, गुप्तकालीन बुद्ध, मूर्तन, सहजता, भावाभिव्यक्ति

गुप्तकालीन शिल्पियों ने अपने अपूर्व कौशल के बल पर कला के क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात किया जिसका साक्षात् उदाहरण हमें गुप्तकालीन प्रस्तर धातु तथा मिट्टी की बौद्ध मूर्तियों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इस काल में बोधिसत्वों की भी मूर्तियाँ निर्मित हुई। कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में राजनीतिक विखण्डन का एक लम्बा दौर चला। चौथी शताब्दी में इस राजनीतिक विखण्डन का दौर समाप्त हुआ जब एक विशाल गरिमामयी केन्द्रीय सत्ता की स्थापना हुई जो 'गुप्त साम्राज्य' के नाम से प्रसिद्ध है।[1] गुप्तकालीन बुद्ध एवं बोधिसत्वों की मूर्तियों में कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है जो उसे अन्य कला शैली से अलग करती है। गांधार कला शैली में मूर्तियों का निर्माण भूरे और स्लेटी पत्थर से किया गया था परन्तु गुप्त युग में मूर्ति निर्माण के लिए अलग प्रकार के पाषाण से किया गया था। अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का स्वरूप द्वितीय शती ई. तक स्थिर हो चुका था, किन्तु इनकी प्रतिमा निर्माण कार्य गुप्तकाल से आरम्भ हुआ। इसका शिल्प अत्यंत आकर्षक और उत्कृष्ट था। पूरी दुनिया में बुद्ध की अब तक प्राप्त विशालकार धातु निर्मित मूर्तियों में यह अकेली मानी जाती है। बाशम् 'द वंडर दैट वाज़ इंडिया' में कहते हैं कि ताम्र तथा पीतल की अब तक प्राप्त गुप्तकलीन मूर्तियों में सुल्तानगंज की बुद्ध मूर्ति सबसे अधिक प्रभावशाली है।[2]

गुप्त काल में भिक्षु यशदिन्न ने बुद्ध की अनेक प्रतिमायें मथुरा और उसके पास के क्षेत्र में बनवायी और उन्हें प्रतिष्ठित किया। इनमें से एक प्रतिमा कुशीनगर में है। और बुद्ध की दूसरी मूर्ति मथुरा कला केन्द्र की अनुपम देन है। यह मूर्ति लगभग 6 फुट 2.5 इंच ऊँची है जो

•एम.ए., पी-एच.डी., प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलाकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर

मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इस खड़ी मूर्ति में मुख पर शांति तथा ध्यान के भाव दर्शनीय है। अनेक प्रस्तर खण्डों तथा शिल पट्टिकाओं पर बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनायें उत्कीर्ण की गई। बोधिसत्व अपने वक्ष स्थल के सम्मुख एक पत्र दोनों हाथों से धारण किए हुए हैं। इसके दोनों पार्श्व में कंधे पर पात्र धारण किए स्त्रियाँ खड़ी हैं। सिर पर ध्यान मुद्रा में कमलासन पर विराजमान अभिताभ की मूर्ति है। यह मूर्ति गुप्त शासन के प्रारंभिक समय की है, जिसे मथुरा की कुषाण शैली का प्रसरण कहा जा सकता है।[3] इस प्रतिमा में कुषाणकालीन मूर्ती की कठोरता नहीं है, गुप्त काल में नयी सहजता एवं भावाभिव्यक्ति इसमें दृष्टिगोचर होती है।

गुप्तकालीन युग में ताम्र युगीन लोग अनेक तरह के मृद ताम्र पत्रों का उपयोग करते थे। जो लोग ताँबे के औजार प्रयोग करते थे। वे हजारीबाग और सिंह भूमि की ताँबे की खानों से इसे प्राप्त करते थे। यह विहार में स्थित है, ताँबा उपयोग में लायी गयी पहली धातु मानव सभ्यता की अधिवास थी। इसे हिन्दू देश के लोग पवित्र व शुद्ध ताम्र धातु मानते थे। ताम्र धातु से बने प्राचीन उपकरण घरेलू व धार्मिक सामाजिक अनुष्ठानों में उपयोग किये जाने के साक्ष्य प्राचीन भारतीय समाज में है। गुप्तकाल मूर्तिकला के मुख के मथुरा, सारनाथ और पाटिलपुत्र थे। बुद्ध एवं बोधिसत्वों की एकांकी मूर्तन के अतिरिक्त गुप्तकालीन कलाकारों ने उच्चित्र वाली परम्परा में बुद्ध से संबंधित घटनाएं प्रस्तर वृत्तफलक पर प्रस्तुत किये। किन्तु यह विधा इस काल में गौण ही रही।[4] बुद्ध के इन मस्तकों में केश तथा उष्णीय का प्रदर्शन वस्तुतः पाषाण की बुद्ध प्रतिमाओं के मस्तक के समान प्रतीत होता है तथा बौद्ध धर्म के विषयों के दृश्य और मूर्तन प्राप्त होते हैं। इनका उपयोग अलंकरण के लिए किया जाता था। गुप्तकाल में पूर्ववर्ती चरणों के कलात्मक व्यवसायी की सभी प्रवृत्तियां और रूझान भारतीय इतिहास के सर्वोच्च महत्व के एकीकृत प्रतिभाविधायक परम्परा की पराकष्ठा में पहुंच गए थे। इस प्रकार से गुप्त मूर्तिकला अमरावती और मथुरा की प्रारंभिक उत्कृष्ट मूर्तिकला का एक तार्किक परिणाम है।[5] इसकी सुदष्टयता मथुरा से और लालित्य अमरावती से लिया गया है।

फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त मूर्तिकला का संबंध एक ऐसे क्षेत्र से है जो पूर्णरूपेण भिन्न है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त कलाकार एक उच्चतर आदर्श के लिए कार्यशील थे। कला और विचारधारा के बीच लोगों के बाह्य रूपों और आंतरिक बुद्धिमत्ता और आत्मिक संकल्पना के बीच एक निकट सौहार्द स्थापित करने के प्रयास में कला के प्रति दृष्टिकोण में नया अभिविन्यास देखा गया है। ऐसा केवल बौद्ध, ब्राह्मणीय और जैन देवताओं की प्रतिमाओं के संबंध में नहीं नहीं बल्कि पुरूषों तथा महिलाओं की मूर्तियों के संबंध में भी सच है। प्रायः एक ही केन्द्र पर एक ही काल में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन मूर्तियों का तथा लोक धर्म और कला का विकास मिलता है। इससे अधिक प्राचीन भारतीय कला के इतिहास में धर्मान्धता विरोधी सर्वहारा और जनवादी प्रवृत्ति का उदाहरण अन्यत्र नहीं हो सकता।[6] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काशी में बौद्धकला की चेतना का सदैव से प्रेरणा स्रोत रहा है।

गुप्त कला इन मूर्तियों के सौन्दर्य एवं कुशल निर्माण के कारण ही विशेष उल्लेखनीय हैं। सारनाथ की कला शैली उत्तर भारत के सभी कला केन्द्रों से भिन्न एवं उच्चकोटि की है। यहाँ की सभी मूर्तियाँ चाहे वह किसी भी धर्म की हो कलापूर्ण अंकन के साथ-साथ अध्यात्मिक भाव का चित्रण लिए हुए हैं। उत्कृष्ट कला की विशेषताएँ दिखायी पड़ती है। सारनाथ एक बौद्ध केन्द्र रहा इसलिए अन्य धर्मों की अपेक्षा बौद्ध मूर्तियाँ अधिक मिलती है। इस काल तक कला का स्वदेशीकरण भी हो जाता है। प्रतिमा निर्माण की विषय वस्तु आकार

के आधार पर किसी भी कला केन्द्र की पहचान होती है। महापुरुष लक्षणों से युक्त प्रतिमाओं के निर्माण के लिए प्रतिमाशास्त्रीय नियमों का पालन अतिआवश्यक था क्योंकि समाज के एक बहुत बड़े वर्ग की भावनाएँ इससे जुड़ी होती हैं। बुद्ध मूर्तियों के निर्माण की विधि तथा लक्षणों का बौद्ध साहित्य में विस्तार से उल्लेख मिलता है।[7] किसी भी बौद्ध केन्द्र या धर्मानुयायी को न धर्म के अपनाने के कारण हानि हुई और न धर्म के प्रसार को कभी बाधित किया गया। इसी प्रकार हिन्दू शासकों के शासनकाल में मथुरा, सारनाथ, पाटलिपुत्र आदि केन्द्रों से बड़ी संख्या में भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ बनीं। हिन्दू शासकों के शासन काल में बौद्ध धर्म का प्रसार कभी बाधित नहीं हुआ। दूसरी ऐसी कोई शैली नहीं थी कि उसे बौद्ध, जैन एवं हिन्दू नामों से पुकारा जा सके। प्रस्तुत आलेख में बौद्ध ताम्र प्रतिमाओं का अन्य धर्मों की मूर्तिकला से क्या सम्बन्ध एवं एक दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव का वर्णन किया जाना प्रतिमाशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षित है।[8]

गुप्तकाल की मूर्तिकला की एक बड़ी विशेषता यह भी समझी जाती है कि यह पूरी तरह से अपने निरूपण या अंकन में बाहरी प्रभावों से मुक्त हो चुकी थी। फलतः निश्चित नियमों व कल्पित परंपराओं से बंधे रहने के बावजूद कलाकारों ने मूर्तियों में ताजगी भरने और रस का अद्भूत संचार करने में सफलता पा ली। गुप्तकालीन प्रतिमाओं में आध्यात्मिक क्रांति और आंतरिक शांति की जो छटा व्याप्त हुई, उसने इस दौर की कृतियों को मथुरा शैली की कृतियों से श्रेष्ठ बना दिया। गुप्तकालीन कलात्मक कृतियों में पूर्ववर्ती स्वदेशी कला के ऐश्वर्य स्वाभाविकता, सरसता व भावुकता के साथ-साथ अलंकारिता और आध्यात्मिकता का सुंदर सम्मिश्रण हुआ है। इस काल की मूर्तिकला की एक और उपलब्धि चन्द्रगुप्त एवं समुद्रगुप्त की सुवर्ण मुद्राएं हैं। हालांकि इस पर शक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव भी दृष्टिगत है फिर भी यह माना जाता है कि किसी भारतीय राजवंश द्वारा पहली बार इस दौर में सिक्के जारी किए गए। समुद्रगुप्त के स्वर्ण सिक्कों पर जो लक्ष्मी का अंकन मिलता है उसकी प्रमुख विशेषता उसका पूर्णतः भारतीय वेशभूषा का धारण किए जाना है।[9] गुप्तकालीन कला पर सम्यक दृष्टि डालने पर हम पाते हैं कि गुप्तकालीन मूर्तिकला अत्यन्त समृद्ध और आकर्षक है। शुद्धता, शिष्टता, स्वाभाविकता, सरल अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रबल आध्यात्मिकता इस कला के उत्तम लक्षण है। समझा यही भी जा सकता है कि पहली बार गुप्त काल में बड़ी संख्या में स्वतंत्र व चौकोर खड़ी और बैठी हुई मूर्तियों का निमार्ण हुआ।

भारत में बौद्ध धर्म का जन्म तद्युगीन भारतीय समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, छुआ-छूत और वर्ण-भेद जैसे कुरीतियों का परिणाम था। प्रारम्भ में यह धर्म जटिल कर्मकाण्डों से दूर सदाचार और नैतिकता के सिद्धान्तों पर आधारित था। किन्तु कालान्तर में भारतीय संस्कृति के समन्वय के कारण बौद्ध धर्म में भी बहुसंख्यक देवी-देवताओं की उपासना प्रारम्भ हो गई। मूलतः ब्राह्मण-धर्म से उद्भूत होने के कारण बौद्ध पर शिव, विष्णु, सूर्य, दुर्गा आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। अनेक बौद्ध देवता इन्हीं हिन्दू देवताओं का बौद्ध संस्करण है, किन्तु यह भी ज्ञात है कि इन बौद्ध-देवताओं में स्वयं को ब्राह्मण देवताओं से श्रेष्ठ दर्शाने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल है।[10]

गुप्त के पश्चात् 'संकलात्तरापथनाथ' बौद्ध धर्म एवं कला का सर्वश्रेष्ठ संरक्षक शिलादित्य हर्ष था। जिसके शासनावधि में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने बौद्ध धर्म एवं उसकी कला के प्रभाव का विस्तृत विवरण किया जिसका शताब्दी एवं पदार्थी अनुसंधान

विवेच्य आलेख में नियोजित है। बौद्ध कला पर बाह्य प्रभाव एकांगी नही रहा वरन् विभिन्न संस्कृतियों के आगमन एवं प्रत्यागमन से कला एवं साहित्य का आदान-प्रदान होता रहा। यह तथ्य सत्य है कि ब्राह्म प्रभाव के लक्षण भारती बौद्ध कला में दृष्टव्य है। साथ ही साथ भारतीय बौद्धाचार्यों का मध्य एशिया, चीन, कोरिया में बौद्ध धर्म प्रचार के साथ ही साथ मौर्य कला का जो स्वरूप भारत में था उसके स्वरूप का रूपान्तरण तत्कालीन देशों के परिस्थितियों के अनुरूप हुआ। यह परिवर्तन भी एक ब्राह्म प्रभाव का प्रकार माना गया है।[11]

गुप्तकालीन शिल्पकारों ने बुद्ध तथा बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का निर्माण कर अपनी हस्तकला कौशल का परिचय दिया। जैसा कि भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है - "जिस धार्मिक उदार सहिष्णुता के अशोक ने सपने देखे थे, गुप्तों का उदार जीवन उन्हें साकार कर चला। अत: यह अवशेष हड़प्पा संस्कृति की सर्वोत्तम कला कृतियाँ है। ये मृत मुद्रायें अब तक लगभग 2000 सीलें प्राप्त हुई है। "खुदाई के समय के ताम्र शिल्पी लोग ताम्र धातु व अष्ट धातु की खुबसूरत मूर्तियाँ, नर्तकी का सर्वश्रेष्ठ नमूना है। यहाँ तक कि आज भी भारतीय ताम्र धातु शिल्प अपने विविध उपयोगी उत्पाद एवं वेजोड़ आकृति के लिए प्रशंसनीय है।"[12] यहाँ के प्राप्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि हड़प्पा सभ्यता में ताँबे के बने ताबीज प्रयोग में लाये जाते थे।" उत्खनन से प्राप्त सम्यक परीक्षण से स्पष्ट होता हैं कि खुदाई में हड़प्पा, मोहन जोदड़ो, चन्हूदड़ो, कालीबंगा बनवाली लोथल एवं धौलवीरा जैसे कई महत्वपूर्ण नगरों के अवशेष मिले हैं। इस सभ्यता में विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न धातुओं एवं मिश्र धातु का प्रयोग किया जाता है। रोजमर्रा की वस्तुओं के निर्माण के लिए ताँबे का प्रयोग सर्वाधिक होता था।"

मानव को धातुओं से एक ऐसी सामग्री मिली जो पत्थर से अधिक टिकाऊ थी। तथा जिसका प्रयोग विविध प्रकार के औजारों, उपकरणों और हथियारों को बनाने के लिए किया जा सकता था। इससे मानव की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकती थी। जब मानव की दृष्टि ताम्र (तांबा) पर पड़ी होगी तो वह कठोर होने के कारण मानव के आकर्षण का कारण बना होगा। अत: तांबे ने पत्थर का स्थान ले लिया। विश्व के कुछ भागों में काफी लम्बे समय तक तांबे के औजारों का इस्तेमाल पत्थर के औजारों के साथ-साथ होता रहा। जिस काल में मानव ने पत्थर और तांबे के औजारों का साथ-साथ प्रयोग किया, उसे 'ताम्र पाषाण काल' कहा गया। इस काल के प्रारम्भिक चरण में मानव को तांबे के बारे में पता नहीं था, जिसे खानों से निकाला जाता था। मानव केवल प्राकृतिक तांबे का प्रयोग करता था, जिसे नदियों के तट पर जमा किया जाता था। ताम्र काल के पश्चात् लौह युग का आरम्भ होता है। लौह युग का आरम्भ उत्तर तथा दक्षिण भारत में एक साथ नहीं हुआ। दक्षिण भारत में गुप्तकालीन काल के बाद ही इसका प्रयोग आरम्भ हुआ था।

निष्कर्ष- निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि गुप्तकालीन भारत में ताम्र धातु शिल्प कला का उद्भव भारत में 3000 बी.सी. से मानी जाती है। खुदाई के फलस्वरूप विभिन्न स्थानों पर ताम्र शिल्प कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं। जिसके कारण भारत में ताँबे को कठोर बनाने के लिए इसमें संखियाँ मिलाया जाता था। इस समय के ताम्रकारों को ताँबे के धातुकर्म का ज्ञान तथा वे इसमें निपुर्ण भी थे। इस समय मानव द्वारा निकटवर्ती ताम्र खानों से कम गहराई पर प्राप्त होने वाले ताँबे द्वारा तत्कालीन स्थानीय आवश्यकता के लिए ताम्र का प्रयोग किया जाता था। इसलिए गंगा यमुना दोआब के इन क्षेत्रों से अधिकतम ताम्र उपकरणों व औजारों की प्राप्ति हुई है। गुप्तकालीन बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियां कलात्मक दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. तिवारी मारूतीनन्दन प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, पृष्ठ 215
2. श्रीवास्तव बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्ति कला, पृष्ठ 194
3. वेल ई.वी., इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पैन्टिगं, पृष्ठ 39
4. वही, पृष्ठ 4.
5. साहनी दयाराम, गाइड टू वी द बुद्धिस्ट रूइन्स एट सारनाथ, पृष्ठ 45
6. परपेश्वरी लाल गुप्त : गुप्त साम्राज्य, पृष्ठ 551
7. वही, पृष्ठ 552
8. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल : गुप्ता आर्ट, पृष्ठ 17
9. एण्डरसन : हैण्ड बुक ऑफ स्कल्पचर इन इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता। द्रष्टव्य : बनर्जी, इम्पी. गु. प्लेट 19, पृष्ठ 3
10. भगवत शरण उपाध्याय : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 194
11. डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य : बुद्धिस्ट आईकोनोग्राफी, पृष्ठ 16
12. बी. डी. महाजन, (1988) प्राचीन भारत का इतिहास, एस. वन्द्र कंपनी, मुख्य कार्यालय, रामनगर, नई दिल्ली, पृष्ठ 37

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

गढ़वाल चित्रशैली का अद्‌भुत सौन्दर्य

•निशा गुप्ता

सारांश- गढ़वाल चित्रकला अन्य पहाड़ी कलाओं के समान मुगल चित्रकला से प्रभावित रही है। मुगलवंश का विशेष योगदान गढ़वाल की चित्रकला पर रहा है। गढ़वाल शैली का स्वर्णकाल मोलाराम का युग था। मोलाराम गढ़वाल चित्रकला का सिद्धहस्त पारखी था। सन् 1658 ई. में मोलाराम के पूर्वजों द्वारा गढ़वाल में चित्रकला की नींव रखी गई थी। गढ़वाल शैली के चित्र कांगडा शैली के समान ही लघुचित्र हैं। किन्तु गढ़वाल शैली के चित्र कांगड़ा से अधिक सरल और सपाट है। इन चित्रों में प्रकृति को विशेष महत्व दिया गया है। गढ़वाल शैली को सबसे पहले मान्यता डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने दी थी। मोलाराम के बाद इस चित्रशैली में पतन के लक्षण प्रतीत होने लगे थे। धीरे-धीरे पाश्चात्य कला की झलक इन चित्रों में दिखाई देने लगी थी।

मुख्य शब्द- सिद्धहस्त, पल्लवित, आध्यात्मिक, संगीतमय, कलात्मकता

गढ़वाल शैली की खोज 1908 में मुकन्दीलाल द्वारा की गई थी। मुकन्दी लाल के अनुसार ही इस शैली की खोज 1658 ई. मानी गई है। इस शैली के जन्मदाता शामदास और हरदास को माना गया है। यें शाहजहाँ कालीन चित्रकार थे। इनकी चौथी पीढ़ी में मोलाराम चित्रकार हुए, जो चित्रकारी तो करते ही थे साथ में कविता भी लिखते थे और एक अच्छे साहित्यकार भी थे। इन्होने अनेकों ग्रन्थों की रचना की थी। इनके एक ग्रन्थ का नाम है "राजवंश का इतिहास"। इनकी गिनती गढ़वाल शैली के सर्वश्रेष्ठ चित्रकारों में की जाती है। गढ़वाल में दोनो ही चित्रकारों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। गढ़वाल में इन दोनो चित्रकारों के समय एक कार्यालय स्थापित किया गया जिसका नाम 'तसबीरदार' था। इस कार्यालय में चित्र रचना की जाती थी। 18वीं शती गढ़वाल शैली के विकास का स्वर्णयुग माना जाता है। गैरोला तो गढ़वाल शैली का जन्म 15वीं शताब्दी से मानते है परन्तु वास्तविक गढ़वाल शैली 17वीं और 18वीं शताब्दी में ही पूर्व विकसित और पल्लवित मानी जाती है। 15वीं शताब्दी में तो बलभद्रशाह नामक राजा ने बनारस से कलाकारों को बुलाकर एक भव्य महल का निर्माण कराया था। इसी महल में एक सुन्दर चित्रशाला का भी निर्माण कराया था। यह महल गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर में था।

गढ़वाल में बाहर से बहुत से चित्रकार आये जिनमें अधिकांश कांगड़ा से आये थे। कांगड़ा से आये चित्रकारों ने जब यहाँ आकर चित्र बनाने प्रारम्भ किये तो गढ़वाल शैली और भी अधिक मुखरित हो उठी। वास्तव में यह कांगड़ा शैली की ही एक उपशैली के रूप में भी प्रारम्भ हुई। गुलेर शैली का भी इस शैली पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि गढ़वाल के राजा प्रद्युम्न शाह का विवाह सन् 1804 में गुलेर के राजवंश में अजब सिंह की पुत्री से हुआ था। इसीलिए चित्रकारों का आपस में आवागमन जारी हुआ और चित्रों का आदान–प्रदान हुआ।

पहाड़ी चित्रकला में गढ़वाल का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इतिहासकारों का मानना है कि कैत्यूरी राजवंश इस क्षेत्र का प्रथम महत्वपूर्ण राज्य था, जिसका प्राचीन स्वरूप बंगाल के पाल वंशीय राजाओं के साथ बहुत मिलता–जुलता है। बाद में कैत्युरी साम्राज्य का विघटन हो

• एसोसिएट प्रोफेसर जे.के.पी. पी.जी. कॉलेज मुजफ्फरनगर

गया और गढ़वाल राज्य छोटी-छोटी ठकुराईयों में बंट गया। बाद में विक्रम की सोलहवीं सती में चन्द्रवंशी नरेशों ने गढ़वाल और कुमायुँ राज्यों की स्थापना की। इन चन्द्रवंशी पंवार राजाओं के काल में कलाओं की पर्याप्त उन्नति हुई। राजा पुरूषोत्तम सिंह इनमें विशेष पराक्रमी हुए। गढ़वाल में खस जाति का सांस्कृतिक महत्व रहा है। शासक की दृष्टि में गढ़वाल में पंवार वंशीय शासकों का ही प्रभुत्व रहा। महाराजा कनक पाल इसके प्रसिद्ध शासक हुए। मुगलों के आक्रमण के समय यहाँ पर महाराजा पृथ्वीपति शाह तथा महाराजा फतहशाह का शासन रहा। मुगलों के बाद यहाँ गोरखों के भी आक्रमण होते रहे। यहाँ के राजा प्रद्युम्नशाह गोरखों से लड़ते हुए मारे गये परन्तु अंग्रेजों के समक्ष सुदर्शन शाह यहाँ के शासक बने।

गढ़वाल के राजा ललित कलाओं के पोषक थे। कैत्युरी राजवंश के काल में (850 ई. से 1015 ई. तक) भी ललित कलाओं का उत्थान होता रहा। इनके समय में गढ़वाल में अनेक मन्दिर बने। गढ़वाल में ललित कलाओं का क्रमबद्ध कुछ आंशिक इतिहास टिहरी राज्य परम्परा से मिलता है। टिहरी राजवंश ने कलाकारों को प्रश्रय दिया, परिणामस्वरूप संगीत, चित्रमूर्ति और वास्तुकला की पर्याप्त उन्नति हुई। महाराजा सुदर्शन सिंह के काल में मोलाराम, मनकू और चेतु तीन प्रसिद्ध कलाकार अपनी कला साधना में रत थे। मोलाराम ने साहित्य और चित्रकला में अद्धितीय यश अर्जित किया। टिकरी राज्य में चित्रकला को प्रारम्भ करने वाले महाराजा बलभद्र शाह (1473 ई0- 1498 ई. तक) मुख्य थे।

फतेहशाह (1717 ई. - 1765 ई. तक) के समय में ललित कलाएँ बहुत फली-फूली। इस समय के चित्रकारों ने अपनी कला के प्रतीकों द्वारा असीम आध्यात्मिक शान्ति को अभिव्यक्त किया। जयदेव का गीत गोविन्द तथा कृष्ण लीला सम्बन्धी अनेक चित्र कलात्मकता लिए हुए है। महाराजा सुदर्शन शाह साहित्य अनुरागी तथा कला प्रेमी राजा थे। इनके समय में कला-सौन्दर्य, पावन प्रेम कथाएँ, संगीतमय रेखाएँ तथा दार्शनिक प्रतीकों की सहायता से गढ़वाली चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।[1]

गढ़वाल शैली में जिन विभिन्न विषयों को लेकर चित्र बने हैं उनमें रूक्मिणी-मंगल, नल-दमयन्ती, नायिका-भेद, रामायण, महाभारत, दशावतार, अष्ट दुर्गा, नवग्रह, कामसूत्र आदि विशेष रूप से गण्य है[2] और पक्षी प्रेम, व्यक्ति-चित्रण, पशु-पक्षी चित्रण भी हुआ है। गढ़वाल शैली में दृश्य चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। नदी पहाड़ आदि बहुत आकर्षक बने हैं। फूलों से लदे पेड़ों ने तो दृश्य चित्रण को और भी सुन्दरता प्रदान कर दी है। क्षितिज विशेष प्रकार का बहुत ऊँचा बना है परन्तु बसोहली के क्षितिज की तरह एक नीली पट्टी न होकर कुछ वक्राकार है तथा बादलों का भी पुट कलात्मकता से दिया गया है। दृश्य चित्र की सजीवता प्रदान करने के लिए यथास्थान पशु-पक्षियों का भी अंकन है।

गढ़वाल में नारी का विशेष चित्रण हुआ है जो अन्य पहाड़ी शैलियों से अधिक सुन्दर है। यहाँ नारी को छरहरे बदन का, सुडौल तथा बहुत ही आकर्षक बनाया गया है तथा बहुत कलात्मक आभूषणों से उसे अलंकृत किया गया है तथा झीने वस्त्रों से सुसज्जित किया गया है।

रेखाओं में काँगड़ा शैली वाली परिपवक्ता तो नहीं है परन्तु ये लयात्मक तथा संगीतमय है। छाया प्रकाश कुछ इस प्रकार का है कि कहीं-कहीं गम्भीर तथा उदास वातावरण का आभास होता है जो कि काँगड़ा में नहीं है। भाव प्रदर्शन में गढ़वाल का कलाकार पूर्णतया सफल हुआ है। अन्य पहाड़ी शैलियों की तरह गढ़वाल में भी व्यक्ति चित्रण सुन्दर हुआ है।

गढ़वाल शैली की एक प्रमुख विशेषता हैं, वहाँ का चन्दन टीका। मुख्यत: मौलाराम के चित्रों में उच्च कुल की महिलाओं के माथे पर एक वक्राकार चन्दन का टीका ऊपर की ओर लगा हुआ मिलता है जो अन्य किसी भी पहाड़ी शैली में नहीं मिलता। इस चन्दन टीके से गढ़वाल शैली अलग पहचानी जा सकती है। भवन सज्जा भी इस शैली में विशेष है। भवनों को लयात्मक आलेखनों से सुसज्जित किया गया है तथा परदों को सुन्दरता प्रदान की गई है।

कहीं-कहीं चित्रों में परिप्रेक्ष्य भी बहुत सुन्दरता से बनाया गया है। गढ़वाल शैली संरक्षण के अभाव में समाप्त हो गई। मोलाराम के वंशज बाद में स्वर्णकारी करने लगे थे। इस शैली के समाप्त होने का दूसरा कारण यह माना जाता है कि एक कलाकार अपनी विशेषता को अन्य को नहीं बताना चाहता था, जिसके कारण बहुत सी तकनीकी बारीकियाँ नयी पीढ़ियों के कलाकारों को पता नहीं चल सकी।[3] भारतीय चित्रकला को गढ़वाल के चित्रकारों ने महती प्रसिद्धि प्रदान की है। 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय चित्रकला पर पाश्चात्य कला ने प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया था। गढ़वाल की चित्रकला पर भी इसका प्रभाव दिखाई देने लगा था। शिवराम द्वारा बनाई गई सलेमान शिकोह की छवि, ज्वालाराम के महादेव पार्वती और बद्रीनाथ केदारनाथ के रास्ते में चित्रों में पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है। गढ़वाल में एक वैसी ही सुन्दर, रसीली, लावण्यमय, रोमांचक और चित्तार्षक शैली का विकास हुआ जैसी पंजाब की एक अन्य पहाड़ी रियासत कांगड़ा में विकसित हुई।[4] इस प्रकार भारतीय चित्रकला के इतिहास में गढ़वाल शैली के चित्र अपना एक अलग ही स्थान बनाए हुए है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. रंजना रानी - पहाड़ी चित्रकला में ऋतु सौन्दर्य
2. किशोरी लाल वैद्य - पहाड़ी चित्रकला
3. डा. लोकेश चन्द्र शर्मा - भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास
4. डब्लू.जी. आर्चर - गढ़वाल पेण्टिग

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

समाचार पत्र में विज्ञापन की भूमिका

• अमित शुक्ल

सारांश- समाचार पत्रों में विज्ञापन देना आज की आवश्यकता नहीं अनिवार्य शर्त है। विज्ञापन के बिना समाचार पत्र अपूर्ण है। विज्ञापन समाचार पत्र का प्रमुख आर्थिक आधार तो है की साथ ही उपभोक्ताओं का मार्गदर्शक भी है। समाचार पत्र कम खर्च में स्थानीय बाजार में व्यापक जनमुदाय तक पहुॅचने के लिए अपना विशेष स्थान रखता है। क्योंकि यह उपभोक्ता के लिए विश्वसनीय है। विज्ञापन समाचार पत्रों का हिस्सा ही नहीं यह प्रिंट मीडिया की रीढ़ है। जनसमुदाय तक कम रूपये में समाचार पत्रो को पहुॅचाने के लिए समाचार पत्रों में विज्ञापन का प्रकाशित होना अत्यंत आवश्यक है। यह समाचार पत्र व पत्रिकाओं की आय का प्रमुख स्रोत तो है ही पर उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक भी है। विज्ञापन के अभाव में उपभोक्ता और समाचार पत्र दोनों अधूरे हैं।

मुख्य शब्द- समाचार पत्र, विज्ञापन, उपभोक्ता, आर्थिक, वर्गीकृत, जनसमुदाय, पाठक, भूमंडलीकरण, विश्वसनीयता, मार्गदर्शक

प्रस्तावना- समाचार प्त्र, पत्रिकाएं और इलेक्ट्रानिक मीडिया अर्थात रेडियो, दूरदर्शन तथा इंटरनेट मानवीय भावनाओं और मनोविज्ञान के अनुरूप अपने नीति का निर्माण करते हैं। चूंकि हिन्दी जनभाषा है और अधिकांश जनता हिन्दी भाषा का ही प्रयोग करती है अत: मीडिया ने इस जनभाषा के लिए स्थान बनाया है। मध्यवर्ग व्यवहार में चाहे अग्रेजी का अधिकतर प्रयोग करे उस मध्यवर्ग में भी निजी जीवन व कामकाजी जीवन की भाषा में स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। इस अंतर को मनोविज्ञान मीडिया समझता है और धारावाहिक की प्रवाहपूर्ण भाषा में तनाव, आनंद, प्रेम, घृणा, रोमांच के बुनाव के लिए हिन्दी का ही प्रयोग करता है।

देखा जाय तो मीडिया ने भारतीय समाज में स्थान बनाने के लिए सदा हिन्दी भाषा का सर्वाधिक सहारा लिया है। हिन्दी समाचार पत्र का प्रचलन भारतीय समाज में अत्यधिक है इसकी पहुॅच जन-जन तक है। यह सबसे सस्ता और सुलभ माध्यम है। समाचार पत्रों में विज्ञापन देना आज की आवश्यकता हीं नहीं अनिवार्य शर्त है, बिना विज्ञापन के आज का समाचार पत्र अधूरा है। इसलिए हिन्दी समाचार पत्रों में विज्ञापन के दौर में अनेक आकर्षक विज्ञापनों द्वारा अपना एक अलग स्थान सुनिश्चित कर लिया है। विज्ञापन समाचार पत्र का प्रमुख आर्थिक आधार है। विज्ञापन के कारण ही समाचार पत्र जनता तक लागत मूल्य से भी कम मूल्य पर उपलब्ध हो जाता है। विज्ञापनों के माध्यम से आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर समाचार पत्र विभिन्न प्रकार के बाह्य दबावों से स्वयं को बचा पाता है। ऐसी स्थिति के लिए उसे किसी अन्य पर आर्थिक दृष्टि से निर्भर नहीं रहना पड़ता। भारत में विज्ञापन के विकास की कहानी का प्रारंभ समाचार पत्रों से माना जाता है। भारत का पहला समाचार पत्र 29 जनवरी 1780 को प्रकाशित हुआ इस पत्र का नाम था कलकत्ता जनरल एडवरटाईजर तथा इसके संपादक जेम्स आगस्टम् हिक्की थे। इस समाचार पत्र के चार पृष्ठ विज्ञापनों के लिए ही थे। इस पृष्ठ पर उन्हीं वस्तुओं के विज्ञापनों को प्रकाशित किया जाता था जो अंग्रेजो के लिए

• प्राध्यापक हिन्दी शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

विशेष उपयोगी होते थे जैसे–सुअर के मांस, शराब, हैट, जूते आदि। तुलनात्मक विज्ञापन का उद्देश्य उत्पाद की मांग और बिक्री में वृद्धि करना है। इसलिए विज्ञापन के कई प्रकार सामने आ गये जैसे–राष्ट्रीय विज्ञापन, फुटकर विज्ञापन, स्थानीय विज्ञापन, शहरी विज्ञापन, व्यापारिक विज्ञापन, व्यावसायिक विज्ञापन के अंतर्गत ट्रेड विज्ञापनों, औद्योगिक विज्ञापन, व्यावसायिक विज्ञापन, समाचार पत्रों में सबसे महत्वपूर्ण विज्ञापन वर्गीकृत विज्ञापन भी रहा है। समाचार पत्रों का यह विज्ञापन संचार के विभिन्न माध्यम जब नहीं थे तब से अभी तक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका इसकी रही है। यह विज्ञापन अभी भी समाचार पत्रों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्गीकृत विज्ञापन में आवश्यकता है, वैवाहिक, नियुक्ति, नीलामी, बिक्री आदि शीर्षक के विज्ञापन दिये जाते हैं। इस प्रकार के विज्ञापनों के माध्यम से कम से कम खर्च में, कम से कम जगह पर अधिक से अधिक संदेश देने का लक्ष्य सिद्ध किया जाता है। वर्गीकृत विज्ञापन समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। ऐसे विज्ञापनों में एकरूपता या कलात्मकता पर दबाव नहीं दिया जाता है बल्कि वैवाहिक, जमीन–जायजाद, ज्योतिष आदि शीर्षकों के अंतर्गत विज्ञापन प्रकाशित होते हैं। राज्य व केन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों से संबंधित नियुक्तियाँ, निविदा सूचना, नीलामी सूचना से संबंधित विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है। समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में सजावटी विज्ञापन का भी अपना एक महत्व है। सरकारी, गैरसरकारी, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा पत्र–पत्रिकाओं के पृष्ठों पर बड़े आकार में सजावटी विज्ञापन प्रकाशित किये जाते हैं। इस तरह के विज्ञापन चित्र, संदेश, निर्माण और रंग संयोजन की दृष्टि से आकर्षक होते हैं। राष्ट्रीय पर्वों, विशिष्ट समारोहों, महत्वपूर्ण घटनाओं के सजावटी विज्ञापन समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। वित्तीय विज्ञापन का भी प्रिंट मीडिया में एक अलग महत्व है। वित्तीय संस्थानों, बैंक, शेयर बाजार, जीवन बीमा निगम आदि को अपनी सेवाओं की ओर जनता को आकर्षित करने के लिए आर्थिक दृष्टि से अपनी उपलब्धियों को उनके सामने रखना पड़ता है। विभिन्न कंपनियाँ अपनी कंपनी के शेयरों की बिक्री के लिए बीमा कंपनियों, चिकित्सा बीमा, वाहन बीमा, जीवन बीमा आदि को प्रोत्साहित करने के लिए प्रिंट मीडिया में प्रसारित व प्रचारित करती है। प्रिंट मीडिया का आकर्षित करता हुआ एक यह विज्ञापन है–

दुगनी खुशियाँ
निवेश भी प्लस
पेंशन भी प्लस
प्लान एक फायदे दो
एल.आई.सी. का मार्केट
प्लस–प्लस
यूनिट संबद्ध पेंशन योजना
भारतीय जीवन बीमा निगम

इस तरह के विज्ञापन आकर्षित कर आर्थिक लाभ भी प्रदान करते है। स्मारिका विज्ञापन भी समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के लिए लाभप्रद होता है। सार्वजनिक व स्वयंसेवी संस्थानों में आयोजित होने वाले समारोहों की ओर से स्मारिका में विज्ञापन का प्रकाशन होता है। ऐसे स्मारिकाओं में ही स्मारिका विज्ञापन की अलग श्रेणी बना दी है। फुटकर विज्ञापन भी समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद होते हैं। जिनका उनमें अलग महत्व दिया जाता है। जिन विज्ञापनों में उत्पाद के स्थान पर व्यापारी या दुकान को आकर्षित

किया जाय कहां से और कैसे व्यापारी उत्पाद खरीद सकते है। उनकी घोषणा के लिए विज्ञापनों का प्रसारण फुटकर विज्ञापन के रूप में किया जाता है। इसी प्रकार पत्र–पत्रिकाओं के लिए उपहार विज्ञापन भी विभिन्न कंपनियों के द्वारा उपहार योजना के तहत ऐसे विज्ञापन अपने समाचार पत्रों व पत्र–पत्रिकाओं में देती है। यह विज्ञापन उपभोक्ताओं को उपहार पाने की लालसा में उत्पाद खरीदने की आकांक्षा को जन्म देते है जो कंपनियों के लिए लाभप्रद होता है साथ ही समाचार पत्रों को आर्थिक लाभ भी। समाचार पत्रों के लिए अनुबंध विज्ञापनों का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। अनुबंध विज्ञान के अंतर्गत मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक स्तर पर रियायती दरों पर समाचार पत्रों में स्थान लेकर विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है।

विज्ञापनों के बढ़ते प्रभाव के कारण आज विज्ञापन अध्ययन एवं प्रशिक्षण की विशेष शाखा के रूप में विकसित होने लगा है। किसी भी समाचार पत्र, पत्रिकाओं में एक से बढ़कर सुन्दर चेहरे अपने लुभावनी एवं मनभावनी अदा से शब्दों के आकर्षक संयोजन से वस्तु विशेष के प्रति आकर्षित करते हैं। इस मनोवृत्ति पर प्रख्यात साहित्यकार मोहन राकेश ने अत्यंत रोचक बात लिखी थी कि–विज्ञापन, विज्ञापन, सर्वत्र विज्ञापन लगता है कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब एक दूल्हा बड़े अरमान से दुल्हन ब्याह कर घर लायेगा और घूंघट हटाकर रूप की प्रशंसा में पहला वाक्य कहेगा तो दुल्हन मधुर भाव से आँख उठाकर हृदय का सारा दुलार शब्दों में उड़ेलती हुई कहेगी–बताऊँ मै इतनी सुन्दर क्यों दिखाई देती हूँ? यह इसलिए कि मै रोज प्रातः उठकर 951 नम्बर के साबुन से नहाती हूँ। इसके मुलायम झाग से त्वचा बहुत कोमल रहती है इसकी बड़ी टिकिया खरीदने से पैसे की भी किफायत होती है। इस प्रकार यह विज्ञापन प्रिंट मीडिया का एक अत्यधिक आकर्षण विज्ञापन का रूप ले लिया है, जिसमें साहित्यकार ने भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

समाचार पत्र कम खर्च में स्थानीय बाजार में व्यापक जन समुदाय के बीच पहुँचने के लिए अपना विशेष स्थान रखता है। इसकी अत्यंत उपयोगिता है क्योंकि सामान्य पाठकों को अपने समाचार पत्र के प्रति विश्वास रहता है। इसलिए इसमें प्रकाशित विज्ञापनों के प्रति विश्वसनीयता कायम रहती है। इस विश्वसनीयता के कारण ही वे उसी के अनुरूप कार्य करने को उत्सुक रहते हैं। समाचार पत्र विज्ञापनदाताओं को सही समय में ग्राहकों को अपनी उत्पादित वस्तु का परिचय कराने में सहायता देता है। सर्दी में पंखों या गर्मी में गर्म कपड़ों का विज्ञापन करना उतना लाभदायक नहीं रहता जितनी सर्दी मौसम में सही चीज का विज्ञापन करना। समाचार पत्रों में एक विशेष सुविधा ये रहती है कि विज्ञापन कॉपी को समय–समय पर परिवर्तित किया जा सकता है। उसमें उपयुक्त चित्रों का समावेश किया जा सकता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पत्र प्रकाशन के अंतिम समय के पूर्व भी तुरंत ही विज्ञापन में आवश्यक संशोधन किया जा सकता है। विज्ञापनों से समाचार पत्रों की आर्थिक व्यवस्था को भी लाभ पहुँचता है। आय का यह प्रमुख स्रोत होने के कारण समाचार पत्र अपेक्षाकृत कम मूल्य पर पाठकों को उपलब्ध हो जाता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक है। समाचार पत्रों के माध्यम से विशिष्ट क्षेत्र तथा विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों तक अपनी बात पहुँचायी जा सकती है। इसके लिए क्षेत्रीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर के पत्रों का सहारा लेना आवश्यक है।

निष्कर्ष यह है कि वर्तमान समय में विज्ञापन समाचार पत्रों का अभिन्न हिस्सा ही नहीं बल्कि प्रिंट मीडिया की रीढ़ है। भूमण्डलीकरण के दौर में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापन मनुष्य के जीवन में अनावश्यक मांग को जन्म देकर अर्थात गैर जरूरी

को जरूरी बनाकर नयी बजार संस्कृति की रचना में अपनी बहुआयामी भूमिका निभाता है। वर्तमान समय में प्रिंट मीडिया में आर्थिक लाभ का मूल स्रोत विज्ञापन ही है। प्रिंट मीडिया में विज्ञापन की माया कबीर की माया महाठगनी हम जानी से होड़ लेती दिखाई देती है, जो उपभोक्ता की संवेदनाओं से खिलवाड़ करती है। ऐसी छेड़खानी करती है कि उसे उद्वेलित किये बिना नहीं रहती। उपभोक्ता को उत्पाद खरीदने का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आमंत्रण बड़ी कुशलता से देती है। इस प्रकार विज्ञापनों की दुनियाँ में समाचार पत्रों की अहम भूमिका है। समाचार पत्रों की आय का अधिकांश भाग विज्ञापनों द्वारा ही प्राप्त होता है जो दैनिक समाचार पत्र आज 3.50 रूपये में उपलब्ध हो जाता है, वह विज्ञापन के अभाव में बिल्कुल नहीं होता। अत: विज्ञापन समाचार पत्र व पत्रिकाओं की आय का प्रमुख स्रोत तो है ही उपभोक्ताओं का मार्गदर्शक भी है। जिसमें उन्हें हर एक तरह की सूचनाएं, जानकारियाँ प्राप्त होती है वे अपने विवेक के अनुसार कार्य करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. जनसत्ता समाचार पत्र, नई दिल्ली 25 जनवरी 2010, पृष्ठ 05
2. गृह शोभा, मई 2009, पृष्ठ 15
3. विज्ञापन अब व्यापार की प्रमुख आवश्यकता है (कादम्बनी) जनवरी 1983 पृष्ठ 32-33
4. जनसत्ता समाचार पत्र, 24 दिसम्बर 2009, पृष्ठ 06
5. नवभारत टाईम्स, समाचार पत्र, 29 जनवरी 2010, पृष्ठ 04
6. स्वयं का सर्वेक्षण व निष्कर्ष

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

छत्तीसगढ़ के युवा कवियों के समकालीन काव्य का स्वरूप

•शैलेन्द्र कुमार ठाकुर
••कृष्णा चटर्जी
••• गिरिजा साह

सारांश- कविता लोक चेतना के साथ ही लोकमानस को जगाने चेताने एवं सहेजने का भी काम करती है। कविता कभी हंसाती है, रूलाती है तो कभी हमें सच्चा आदमी बनाने की भी सीख देती है। आद्यकवि बाल्मीकि से लेकर कालिदास से होते हुए कबीर, तुलसी जैसे जीवन दर्शन को समझने वालों की यह विचार वीथिका है। आज के युवा कवियों खासकर समकालीन कवियों में मानवीय मूल्य के साथ ही, जीवन के हरेक पायदानों को संस्पर्श करते हुए यह मानव की करूण कहानी को कह रही है। जहाँ प्रेम प्रतीति के साथ ही लोक चेतना का भाव तिरोहित है। छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा कवियों ने अपनी रचना धर्मिता से हिन्दी साहित्य को नव संदेश एवं नव जागृति का मंत्र दिया है। निश्चय ही इन रचनाधर्मियों का काव्य यश, काव्य रस के साथ ही जन मन को जागृत करने वाला है।

मुख्य शब्द- लोक चेतना, जीवन दर्शन, प्रेम प्रतीति, नव जागृति

प्रस्तावना- साहित्य को समाज का दर्पण इसलिए कहा गया है क्योंकि यह समाज के हरेक गतिविधियों को हमारे सम्मुख रखता है। वैसे कुछ विचारकों ने साहित्य को एक सामाजिक सोच का आईना माना है तो कुछेक विचारकों ने इसे सामाजिक संस्था का स्वरूप प्रदान किया है। समाज में जो परिवर्तन होता है वैसा परिवर्तन हमें साहित्य में भी देखने को मिलता है। यही कारण है कि साहित्य में समय-समय पर कवियों ने अपनी दृष्टिकोण से बदलते हुए मूल्यों, जीवन दृष्टि सरकार एवं समाज के बीच बढ़ती दूरी या खाई को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। समकालीन काव्यधारा के रचनाधर्मियों पर अगर हम दृष्टपात करें तो इन रचनाकारों ने अपने समय और समाज की स्थिति को संवेदनाओं एवं उनके अनुरूप काव्य के रूपों एवं प्रतीकों को स्थान देते हुए काव्य का सृजन किया। देखा जाए तो जीवन की अनुभूतियों संघर्षों एवं उसका समयानुकूल और समाज के उपर पड़ने वाले तात्कालिक दबाव को कारगर ढंग से व्यक्त करने के लिए कवियों ने आत्मसंघर्ष एवं जनमन की चेतना को चेताने के लिए काव्य का सृजन किया। छत्तीसगढ़ के समकालीन कवियों की बहुत ही लम्बी परम्परा है। रामायण काल से ही यह धरती तपस्वीयों का तप:स्थली रही है और इस पवित्र भूमि पर अनेकानेक कवियों ने अपनी रचनाओ के द्वारा लोकमानस को जागृत करने का काम किया है। छत्तीसगढ़ के समकालीन कवियों में कुछ ऐसे बड़े कवि हैं जो हिन्दी साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिए हैं। इसमें सर्वप्रथम मुक्तिबोध का नाम आदरपूर्वक लिया जाना चाहिए। हिन्दी साहित्य के विकास में इनकी रचनाओं को रखे बिना समकालीन काव्य धारा के विकास की अवधारणा भी नहीं कर सकते। 'अंधेरे में' इनकी रचना कालजयी मानी जाती है जो हिन्दी साहित्य की एक अनुपम कृति है। इनकी रचनाओं में 'भूल गलती' 'ब्रम्ह

•शोध निर्देशक डॉ. खूबचंद बघेल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय भिलाई-3 जिला -दुर्ग (छ.ग.)
•• शोध सह निर्देशक शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर महाविद्यालय दुर्ग
••• शोध छात्रा

राक्षस' के साथ ही अनेकों रचनाएं हैं जो हिन्दी साहित्य को समृद्ध करती है। इसके साथ ही विनोद कुमार शुक्ल का का नाम बड़े ही आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है, जिनका जन्म राजनांदगांव जिले में हुआ था। विनोद कुमार शुक्ल समकालीन साहित्य परिदृश्य में अपने प्रखर रचनात्मक समर्थता, अद्वितीय कल्पनाशीलता और मौलिक प्रयोगों के लिए चर्चित हुए हैं। विनोद कुमार शुक्ल ने छत्तीसगढ़ के जनमानस को पढ़ते हुए जो रचनाएं की वह साहित्य को नयी दिशा एवं नया आयाम देने वाला है। इन्होंने अपनी कविताओं में मुहावरों एवं लोकोक्तियों को स्थान देते हुए समसामयिक घटनाओं, उपघटनाओं को चित्रवत दिखाने का कार्य किया है। इसी तरह छत्तीसगढ़ के समकालीन कवियों में बाल कवि बैरागी, प्रभात त्रिपाठी, रवि श्रीवास्तव, लाल जगदलपुरी, राऊफ परवेज, हरीश वाढ़ेर, अशोक वाजपेयी, अशोक शर्मा, ललित सुरंजन, अशोक सिघई, पुष्पा तिवारी, विश्व रंजन, रमेश अनुपम, संजीव बक्सी, लीलाधर मंडलोई, विद्या गुप्ता, सुधीर सक्सेना, जया जादवानी, शरद कोकाश, एकांत श्रीवास्तव, कमलेश्वर साहू, विनोद शर्मा, शिव शैलेन्द्र, डॉ. कृष्णा चटर्जी, वंदना कंगरानी, जयप्रकाश मानस, बुद्धिलाल पाल, नासिर अहमद सिकन्दर, बसंत त्रिपाठी, सुरेश पंडा, राजीव रंजन प्रसाद, युवा कवयित्री अल्पना त्रिपाठी है।

छत्तीसगढ़ के साहित्यिक परम्परा को आगे बढ़ाने में बालकवि बैरागी के परम मित्र रतन जैन का नाम आदरपूर्वक लिया जाना चाहिए। इसके साथ ही रमाकान्त शर्मा भी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपनी भूमिका अदा की।

हिन्दी साहित्य के विकास में छत्तीसगढ़ के युवा कवियों की अहम भूमिका रही है। इन युवा कवियों में जयप्रकाश मानस का विशिष्ट स्थान है। ये जाने पहचाने पौढ़ हस्ताक्षर के रूप में सुपरिचित है। इनकी कविताओं में मानवीय मूल्यों की झलक देखने को मिलती है। इन्होंने छत्तीसगढ़ की पावन माटी की पावनता को खरा रखते हुए आदिवासी जीवन के साथ ही धार्मिक आडम्बरों पर विशेष रूप से प्रहार करते हुए लिखा है कि –

"तुमने हमारे मंदिर ढ़हाए
हमने तुम्हारे मस्जिद
शायद तुम अंधे हो गये थे
और हम भी
चलो गल्तियाँ दोनों से हुई
इंसान थे
पर यह तो बुझे
आखिर क्यों
न तुम्हें रोक पैगम्बर ने
न हमें राम ने समझाया।"[1]

जयप्रकाश मानस ने छत्तीसगढ़ के गांव एवं आदिवासियों पर लिखते हुए कहा है कि–

"चाहता हूँ ताउम्र
आदिवासी गमकता रहे
कोठी में धान की मानिंद
गाँव में तीज–तिहार की मानिंद
पोखर में परिहारिनों की हँसी की मानिंद
वन में चार चिरोंजी की मानिंद।"[2]

समकालीन हिन्दी कविता के विकास में अशोक सिघई का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है। इनकी कविताओं के अनेक रूप हैं। कविता की यह अनेक रूपता विषय की विविधरूपता को साधने में लगातार कामयाब होती है। सिंघई की कविताओं में बहुत सी ऐसी रचनाएं हैं जो हमें सोचने के लिए मजबूर कर देती है। उसमें एक कविता 'सुन रही हो न ' जिसमें प्रेम के विविध रूपों का संचार हुआ है। सिंघई प्रेम को साधने में लगे हुए हैं। उन्होंने प्रेम को शब्द का नहीं अपितु वर्ण सा महसूस किया है। इनकी रचनाओं में अलग-अलग किस्म की अलग-अलग भाव एवं विचारों को लेकर चलने वाली कविताएं हैं। यह 'अलविदा वीसवीं सदी' में लिखते हैं उसमें मानव की अहमियत एवं इतिहास को विशेष रूप से दर्शाया गया है। वे लिखते हैं कि –

"धरती में मेरा जीवन है
और मेरे जीवन में
जीवित है धरती पर
जीवन का मेला
जिनको मिला जीवन
मिली उनको भूख
कभी नहीं टूट सका
कोई नहीं भेद सका
पेट के साथ जुड़ा यह चक्रव्यूह।"[3]

कवि अशोक सिंघई ने अलविदा बीसवीं सदी में लिखा है कि –

"खून बहाने से
खून जलाने तक
राजनीति का तयशुदा है सफर
अब लोग गोलियों से नहीं
भूख से/कुंठा से मारे जाते हैं
आबादी का बढ़ना
मृत्युदर घटना
हमारी चिंता के विषय है।
बढ़ते हुए हिस्से
इसलिए धकिया दिए जा रहे है।
अपनी भूमिका लगभग निभा चुके लोग।"[4]

छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा कवियों में एक जाना पहचाना चेहरा नासिर अहमद सिकन्दर के रूप में दिखता है। नासिर अहमद ने अपनी कविताओं के माध्यम से बड़े ही सलीके से उभारने का प्रयास किया है। ये हंसते बाजार, टूटते बाजार, खिलखिलाते बाजार एवं उपभोक्ताओं पर बहुत ही व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हैं। ये लिखते है। कि –

"मुँह के बत्तीस दाँतों में
जहाँ-जहाँ खाली जगहें
या टूटे मसूढे छोटे दाँतों के स्थान
मर सकती वहाँ-वहाँ
गुस्से की किट-किट

झललाहट, झुंझलाहट
यहाँ
टूथपेस्ट के विज्ञापन की मक्कार
हँसी नहीं ठहर सकती बरखुरदार।"[5]

वास्तव में समकालीन कविता की जड़े यथार्थ से जुड़ी होती हैं। रघुवीर सहाय ने लिखा है कि – "विचार वस्तु की कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है। और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़े यथार्थ से जुड़ी हुई हो।"[6]

डॉ. रघुवंश ने समकालीनता के संदर्भ में लिखा है कि – "अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ।"[7] वे लिखते हैं कि समकालीन कविता का वैचारिक तत्व यह है कि आज के समकालीन कवि मनुष्य की आकांक्षाओं के लिए संघर्ष कर रही है। न इसमें भावनाएँ हैं और न ही दलिय मैनिफेस्टो। वास्तव में समकालीन कविता सामाजिक अनुभवों से उद्भूत विचारों एवं स्वतंत्र विचार प्रक्रिया को स्वीकार करती है। यही उसका शक्ति एवं सामर्थ्य की संभावनाओं का स्त्रोत है।[8]

समकालीन हिन्दी कविता को समृद्ध करने में एकान्त श्रीवास्तव की अहम भूमिका रही है। इन्होंने समकालीन समस्याओं को केन्द्र में रखते हुए जिस तरह की रचनाएं की हैं वह छ.ग. के जीवन मूल्यों से होकर गुजरती है। इनकी रचनाओं में मानवीय मूल्य के साथ ही गाँव की फटेहाली, गरीबी, स्त्रियों की दशा, आदिवासियों की तंगहाली एवं नक्सल समस्याओं पर सवाल उठाये गये हैं। इनकी रचनाएँ केवल छत्तीसगढ़ की ही नहीं अपितु देश की, देश के आम आदमी की समस्याओं को आम आदमी के समक्ष लाने में सफल रही है। उन्होंने आम आदमी की आवाज के अपनी रचना में बल देते हुए लिखा है कि –

"सुनो जो सुनाई नहीं दे रहा
बस एक बार
अपनी सारी कार्यवाहियाँ स्थगित करके
सुनों अपनी आत्मा को
जो सदियों से तुमसे कुछ कहना चाहती है।"[9]

कवि एकान्त श्रीवास्तव ने पूंजीवादी व्यवस्था का निर्मूल करते हुए लिखा है कि –

"पैसा आओ मगर वहाँ मत आओ,
जहाँ दृश्य में बदलने को तैयार है
एक चित्रकार के रंग
वहाँ नहीं जहाँ पकते धान की
खुशबू से भरे है शब्द
और लिखी जाने वाली है एक कविता
वहाँ नहीं जहाँ बांसुरी से
उठने वाली है अभी एक धुन
वहाँ नहीं सीने में घड़क रहा है जहाँ एक दिल।"[10]

एकान्त नें अपनी कविता में 'स्त्रियाँ पसहर झाड़ते हुए आती हैं।' ये श्रमिक स्त्रियाँ हैं जो हमें अन्न उपलब्ध कराती हैं। वह हर श्रमशील स्त्री के दुख दर्द को उजागर करती हैं। ये लिखते हैं कि –

"तुम जहाँ सुनना चाहते थे चीख
वहाँ मैंने सुनने की कोशिश की
एक चिड़िया की आवाज
मुझे शब्द और फूल और चिड़िया के
प्यार करने के अपराध में मारें[11]
(अपराध)

समकालीन काव्य धारा को विकसित करने में डॉ. विनोद शर्मा की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनका काव्य संग्रह 'धरती कभी बाँझ नहीं होती' में इन्होंने मानव जीवन की बहुत सारी विविधताओं एवं मानवीय मूल्यों को विशेष रूप से रेखांकित एवं विश्लेषित करने का काम किया है। विनोद शर्मा के संदर्भ में सुप्रसिद्ध विचारक डॉ. सियाराम शर्मा ने लिखा है कि - ये शर्मीले स्वभाव के कवि हैं लेकिन वे गंभीर चिंतन वाले एवं दार्शनिकता के साथ-साथ मानवीय मूल्यों के प्रति सचेष्ट रहने वाले जागरूक एवं सचेत कवि हैं। उन्होंने अरूणाचल नाम कविता में लिखा है कि -

"माटी के पहाड़ों से गुजरते हुए,
मैंने पहली बार जाना कि
जमीन ही जड़ों को नहीं बांधती
जड़े भी जमीन को बांधती है।
बांधना, बंधने के बगैर भला कहाँ होती है।"[12]

विनोद शर्मा ने लड़कियाँ पर कुछ कविताएँ लिखी हैं जो स्त्री विमर्श के लिए काफी महत्वपूर्ण है। गाँव की गरीब लड़कियाँ किस तरह से अपना जीवन यापन करती है उसकी तस्वीर कवि ने अपनी रचनाओं में लिखी है जो इनके काव्य वैशिष्ट्य को दर्शाता है।
धीरे-धीरे आती हैं लड़कियाँ और सामने से गुजर जाती है रोज घड़ी की माफिक घूरती है उनको कई जोड़ी ऑखें और धीरे-धीरे ऑखों से बुढ़ा जाती है।

इसी बीच न जाने कब लड़कियाँ
अचानक जवान हो जाती है
जैसे भादों की एक रात में गाँव का पोखर।[13]

समकालीन कवियों में शिव शैलेन्द्र ने अपनी रचनाओं के माध्यम से घूमिल के समान ही आम आदमी को जगाने की बात की है ये समय के सताये हुए लोगों की दयनीय दशा उनकी आन्तरिक पीड़ा संत्रास और भ्रष्टाचारी नेताओं के खिलाफ एक तरह से जंग की घोषणा कर दी है। उन्होंने अपनी गजल में लिखा है कि-

"बेइमान के हाथों में जब शासन तंत्र हो जाता है
दुखित तृषित जनता कराहती, वह ऑखों में चढ़ जाता है
धृतराष्ट्र की ऑखों पर स्वार्थ की पट्टी देखा
दुर्बुद्धि के कारण मानव दुर्योधन बन जाता है।
राजनीति के चौराहे पर क्यों नीति निर्वस्त्र खड़ी है
हर गली मुहल्ले में अब तो दुष्शासन दिख जाता है।"[14]

कवि शैलेन्द्र की रचनाएँ हिन्दी साहित्य को केवल काव्य की ही दृष्टि से समृद्ध नहीं करती बल्कि वह आम आदमी को आईना भी दिखाती है। वे 'समय के सताये हुए लोग' नाम कविता में लिखते है कि-

"मेरा जी चाहता है कि
मैं तुमसे हर पल प्यार करूँ
लेकिन मैं जब भी समय के सताए हुए
लोगों की कराह क्रन्दन सुनता हूँ
मैं अपने आपको रोक नहीं पाता
मै खेत-खलिहानों में
उन किसानों को पानी पिलाना ज्यादा जरूरी समझता हूँ
ज्यादा से ज्याद अन्न उपजा सके
कोई गरीब भूखा नहीं सो सके।
हरेक आदमी खाना खा सके।"[15]

छत्तीसगढ़ के युवा कवयित्री के रूप में विख्यात वंदना केंगरानी का स्थान ही महत्वपूर्ण है। समकालीन हिंदी कवितामें वंदना केंगरानी ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। वे अपनी नीजी जीवन के अनुभव से स्त्री जीवन के विराट संसार को सुख दुख एवं शोषित मानसिकता को समाज के दोहरे स्वरूप को, अपनी रचना में विशेष रूप से स्थान दिया है।

वे लिखती है कि -

"एक दिन जब
मैंने पार करनी चाही भी दहलीज
अचानक खड़ी हो गई सामने
माँ की पोटली भर सीख
और कदम
रूक गये अपने आप
तब से ही
मै खड़ी हूँ
दहलीज के इस पार
और
ओ उस पार ।"[16]

बसंत त्रिपाठी समकालीन हिन्दी कविता के एक शसक्त हस्ताक्षर है। 'सहसा कुछ नहीं होता' और मौजूदा हालात को देखते हुए और उत्सव की समाप्ति के बाद जैसे कविता संग्रहों में उन्हें स्थायी पहचान दी है। छ.ग. के समकालीन एवं युवा कवियों में उनका स्थान अब्बल दर्जे का है। इनके स्वभाव में शालीनता एवं सहजता, सरलता दिखाई देती है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में आम आदमी की व्यधा उसकी आवाज देखने को मिलती है। बसंत त्रिपाठी लिखते हैं कि -

"मनुष्य होना
पृथ्वी पर होने की सजा नहीं है
यह बात मैंने
किसी और से नहीं अपने आपसे ही कही
कई-कई बार कहीं
और मनुष्य होने की सजा सही
कई-कई बार सही।"[17]

समकालीन युवा कवियों में अल्पना त्रिपाठी का नाम उभरते हुए कलाकार, शब्द चित्रकार के रूप में देखा जा सकता है। अल्पना ने राधा के बारे में लिखा है कि राधा अब प्रेम नहीं करती –

राधा के बाल मन में उठा एक भाव प्रेम का
ना स्पर्श की चाह थी, न थी वस्ल की अधीरता
बढ़ जाता धड़कनों का धड़कना
उसे देखने, देख लेने मात्र से
एक टक आकाश में देखता मन,
उसका एक चित्र सा बनता
वही चित्र बैठ जाता मन में
बातें करती रहती मन ही मन उससे
देखना तो तीस दिनों में एक आध बार ही होता
बसा था आँखों में तीसों दिन।

अल्पना अपनी दूसरी कविता में मिट्टी की महिमा यश को बतलाते हुए लिखती है कि –

जिस मिट्टी में जन्म लेती/पलती बढ़ती सनती गढ़ती
उसी से विदा हो जाती।
जिस मिट्टी को पहचानती नहीं
उसी में खाक होने की दुआ ले।

अल्पना त्रिपाठी की रचनाओं में एक स्त्री की चिंतन धारा जीवन का भाव बोध के साथ ही गाँव की मिट्टी से लगाव प्रतीत होता है। एक स्त्री की अकथ कहानी उस मिट्टी नाम कविता में दिखाई एवं मिट्टी की अनूगूँज सुनाई पड़ रही है। वास्तव में देखा जाय तो समकालीन कवियों ने अपनी कविता के द्वारा मानवीय मूल्य के साथ ही साथ जीवन के उन तमाम विचार बिन्दुओं को स्पर्श करते हुए आम आदमी के दुख दर्द को दर्पण सा प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष - कविता लोक चेतना के साथ ही लोकमानस को जगाने चेताने एवं सहेजने का भी काम करती है। कविता कभी हंसाती है, रूलाती है तो कभी हमें सच्चा आदमी बनाने की भी सीख देती है। आद्यकवि बाल्मीकि से लेकर कालिदास से होते हुए कबीर, तुलसी जैसे जीवन दर्शन को समझने वालों की यह विचार वीथिका है। आज के युवा कवियों खासकर समकालीन कवियों में मानवीय मूल्य के साथ ही, जीवन के हरेक पायदानों को संस्पर्ष करते हुए यह मानव की करूण कहानी को कह रही है। जहाँ प्रेम प्रतीति के साथ ही लोक चेतना का भाव तिरोहित है। छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा कवियों में अपनी रचना धर्मित से हिन्दी साहित्य को नव संदेश एवं नव जागृति का मंत्र दिया है। निश्चय ही इन रचनाधर्मियों का काव्य यश, काव्य रस के साथ ही जन मन को जागृत करने वाला है।

सन्दर्भ ग्रंन्थ सूची-

1. श्री रंग, छत्तीसगढ़ के कवि, विभा प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 75
2. वही, पृष्ठ 76
3. वही, पृष्ठ 69
4. वही, पृष्ठ 70
5. वही, पृष्ठ 86
6. दूसरा सप्तक रघुवीर सहाय पृ. 139

7. डॉ. बिश्म्भर नाथ उपाध्याय समकालीन सिद्धांत और साहित्य पृ. 16
8. प्रतिनिधि कविताएँ नागार्जुन पृष्ठ पृष्ठ 107
9. कविता – समकालीन कविता संपादक परमानंद श्रीवास्तव, पृष्ठ क्र. 9
10. श्री रंग, छत्तीसगढ़ के कवि, विभा प्रकाशन इलाहाबाद द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ क्र. 47
11. वही, पृष्ठ क्र. 50
12. वही, पृष्ठ क्र. 51
13. विनोद पृष्ठ, धरती कभी बांझ नहीं होती (अरूणाचल), अवंतिका प्रकाशन, प्रा.लि. पृ. 44
14. विनोद शर्मा – वही – पृ. 17
15. शिव शैलेन्द्र – डायरी से
16. वही – डायरी से
17. अल्पना त्रिपाठी – फेसबुक से

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

शुभदा मिश्रा की कहानियों में नारी चेतना के आयाम

•उर्मिला शुक्ला
••मधुलता बारा
•••अपर्णा सिंह

सारांश- शुभदा मिश्रा जी की कहानियों को पढ़ने पर समस्त नारी जाति को एक शक्ति एक नयी ऊर्जा मिलती है। स्थिति चाहे कैसी भी क्यों ना हो विषम परिस्थिति में भी वह जी लेती है। स्त्रियां जो एक साथ अनेक दायित्वों का निर्वहन एक साथ करती है चाहे माँ के रूप में, बहन के रूप में, पत्नी के रूप में या सास जिस रूप में भी वह अपने अधिकार के प्रति सचेत है। उत्तरदायित्वों का भली भाँति निर्वहन करती है। जीवन में इतने विरोध और विसंगतियां कभी दिखायी देती है कि जिसका सामना करना कभी कभी असंभव सा प्रतीत होने लगता है किंतु सृजन यात्रा में नारी चेतना के विविध रूप दिखायी देते है। मध्यमवर्गीय पात्रों की विडम्बनाओं को शुभदा जी ने बखूबी चित्रित किया है। यही कहीं होगी संजीवनी में अपने अस्तित्व के लिए जूझती एक ऐसी नायिका का चित्रण है जिसके जीवन में चारो तरफ निराशा उपेक्षा तिरस्कारों के व्यंग्य बाण किंतु फिर भी संजीवनी तलाश ही लेती है। दीवाली में अपने दुर्भाग्य और अकेलेपन के बावजूद टूटे फूटे घर की साफ सफाई कर घर को सजाया, रंगोली सजाई, दिए जलायें मगर जा जाने किसे उनके कार्य को बिगाड़ने में आनंद मिलने लगता हैरान परेशान चिखी चिल्लाई पर किसी ने कुछ नही बताया। पूरे मोहल्ले में केवल उनके दिए ही बुझाए गए, रंगोली बुरी तरह बिगाड़ी गयी।

मुख्य शब्द- विडम्बना, उत्तरदायित्व, विसंगति

"खून का घूंट पीकर रह गयी। दिये बटोरे बातियाँ बटोरी। भीतर लेकर आई। फिर से दिये जलाये भरपूर तेल डाल सबमें सामने ले जाकर फिर दियों को कतार में सजाया, स्वयं भी सामने चबूतरे में एक तरफ चुपचाप बैठ गयी, बैठी रही। मासूम झिलमिलाते दियों को निहारती। आसपास ऐसा कोई नही दिख रहा था जो उन दियों बर्बाद करे।

(1) "यही कही होगी संजीवनी। कोचिंग क्लास खोल लिया जिसमें प्रतिष्ठित घरों के बच्चे आने लगे, महिलाओं को ईर्ष्या होने लगी, अघात पर आघात मिलते रहे पर ना जाने वह कैसे जी गयी। आफिस में महिलाओं के विविध दायित्वों का वर्णन भी एक अधिकारी महिला बैंक में काम करती महिलाओं का बखूबी वर्णन किया है। महिलाओं का कार्य क्षेत्र घर की चार दीवारी तक ही सीमित ना होकर उन सभी क्षेत्रों में होने लगा। जहाँ पहले केवल पुरूषों का अधिकार माना जाता था।

पानी की लकीर कहानी में लेखिका ने अत्यंत सूक्ष्मता से काम वाली बाई के मनोभावों का वर्णन किया है, जो कल्पना करने लगती है। सुनहरे स्वप्न देखने लगती है। आमने-सामने के फ्लैटों में रहने वाली पड़ोसिने कब घनिष्ट मित्र बन जाती है कि अलग होने की बात सोचकर ही नेत्र भर आते है। मिसेज मुखर्जी के जाते ही घर फिर से खाली हो जाता है, सूनापन फिर छा जाता है। एक दूसरे की पंसद को बखूबी जानने वाली दो सहेलियां बिछुड़

• निर्देशक, छ. ग. महाविद्यालय रायपुर
•• सह निर्देशक, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर
••• शोधार्थी, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर

जाती है पर मि.मुखर्जी साहब वही रह जाते है। नौकरी के कारण सहेली के जाते ही उनके पति के खाने की चिंता मुझे होने लगी। किस प्रकार वे सही समय में खाना खा पायेंगें। उन्हें खाना बनाना तक नही आता, बाई की व्यवस्था कर दूँ। पर पतिदेव की इच्छा के विरूद्ध मैं कर भी क्या सकती। जैसे तैसे बाई को मैंने मिस्टर मुखर्जी के यहाँ काम करने की लिए मना लिया, काम करते करते वह कुछ खाना पका भी देती। धीरे धीरे वह गृह स्वामिनी की तरह अधिकार जताने लगी, मिस्टर मुखर्जी पर भी। उनकी सहेली का घर संसार यूं टूटे वे कदापि नहीं चाहती थी। कि अचानक मिसेज मुखर्जी वहाँ आ पहुँची। बाई पुनः चुपचाप अपना काम करती पोछा लगाने लगी किन्तु उसकी आँखों के अधूरे स्वप्न लेखिका स्पष्ट देख पा रही थी।

मुक्ती पर्व कहानी में भी बेटी पत्नी का वह रूप दिखायी देता है जो सौतेली होने पर भी अपनी माँ, पागल भाई बहनों की देखभाल करती है। उनका विवाह किया जब वे अपने पतियों के साथ आती तो उनकी आव भगत करती। किंतु बहनों ने उन पर हवेली हथियाने, संपत्ति हड़पने का आरोप लगाकर घर से निकलवा दिया। माँ के पास जब तक पैसे थे, बेटी ने माँ को अपने पास लेकर चली गयी, पागल भाई के पास कुछ न था, उसे वही छोड़ दिया, थोड़े दिनों के बाद वह अँधा भी हो गया मोहल्ले के स्त्रियों द्वारा विनती करने पर पुनः, अपने भाई को देखभल करने लगी, उसे खाना दिया, एक माँ की तरह सेवा की, पूरे शहर की लोगो की वह दीदी बन गयी। उनका हृदय शुद्ध, कृतज्ञता और ममता से भरा हुआ था– अंधे पागल के प्रति शहरवासियों के प्रति और हाँ, परमात्मा के प्रति विलक्षण अनुभूतियों की घड़ी थी, यहा विलक्षण पर्व था–मुक्ति पर्व।

कोई खत नहीं कहानी में हमें एक ऐसी स्त्री का वर्णन है जो अपनेपन का भाव पाने के लिए तरसती रह जाती है, पर प्यार के दो बोल न पति से मिले न न स्वयं के माता पिता, भाई बहन से, मायके में भी उसे बोझ ही समझा गया। कोई भी उसे सहानुभूति के शब्द न बोलते, माँ के कभी न खत्म होने वाली काम पूरे घर में भूत सी डोलती पति परायणा बनने की कोशिश में अपना सब कुछ स्वाहा कर डाला, दहेज का दानव न था मूल्यों की लड़ाई थी, एक तरफ आज की भ्रष्ट जीवन पद्धति, तो पति के रूप, दूसरी ओर उसका स्वयं का साफ–सुथरा संस्कारी जीवन पग पग पर उसे यह एहसास कराया जाता की उसका कोई वजूद ही नहीं, उपेक्षा घृण्य तिरस्कार ही मिला, पति के रचे चक्रव्यूह में फंस चुकी थी, मायके में भी चौन से न रह सकी सभी उसे पति के पास भेजने, उन्हें सुखी रखने रखने की सलाह देते, उसने भी निर्णय ले लिया था अब चाहे स्थिति जो भी हो वह खत लिख कर माँ– पिता जी को नहीं बताएगी।

चिट्ठी लिखना बिट्टादीदी भाभी कह रही है चिट्ठी लिखना दीदी– निम्मी कह रही है, जनकपुर का आवास में मायके में विवाह पश्चात भी अपने अस्तित्व को ढूंढ़ती, पुत्री की कहानी है, पिता की मृत्यु की पश्चात मानो उसका संसार ही उजड़ा लगता है, एक बेटी के लिए उसके पिता सारे संसार में सबसे अधिक महत्वूर्ण होता है, जिसमे उसे सुरक्षा का एहसास अपनत्व के भाव प्राप्त होते है। पिता के दशगात्र में उनके जिम्मेदारी एक पुत्री के रूप में अपने बखूबी निभाई। पिता जी की आवश्यकता की सभी वस्तुओ को उसने एक–एक कर एकत्रित किया वह जानती थी पिता सब कुछ लुटाकर भी अपनी जीवनशैली सादा ही रखे, सीमित आवश्यकता थी, तेरे घर की इज्जत का सवाल है, बेटी तू, चुप हो जा, कृशकाय बुआ डगर डगर डोलती उसके कानो के पास आकर फुसफुसाई थी, तुम लोगो को नहीं मालूम, इसे तो सारा समाज थूक रहा है, ससुर का श्राद्ध है और मायके में आकर बैठी थी, तो वही बहु के रूप

में ऐसी स्त्री का वर्णन है जो स्वार्थी है, सास को को डरा रखी है, रसोई घर, आलमारी सभी जगह ताला लगाकर रखती, माँ बेचारी डर के मारे, यह बात किसी को नहीं बताती, यह बात तो छोटी बेटी की घर की नौकरानी ने ही बताया था, तभी से सभी उस बहुरानी की निर्लज्जता देख डरे-सहमे से थे, पता नहीं कब कोन सा बखेड़ा खड़ा कर दे, माँ-बेटी, बहन-बुआ सभी उससे डरे थे, बहु और ननद के बिच झगड़ा होने पर, सभी बहु को मनाने में लगे रहे, किसी को बेटी की चिंता नहीं आँखों में आंसू छिपाये, रात्रि के अँधेरे में घर छोड़कर चली जाती है।

रात के पहले शीर्षक से लिखी गयी कहानी उस बहन युवती की कहानी है जिसने अपने भैया-भाभी की सेवा की, पड़ोसी सभी की परन्तु उपेक्षा मिलने पर वह रोते हुए, रात्रि के अंधकार में ही चली गयी, ट्रेजडी किंग कहानी विक्षिप्त पति की कहानी है, जो अपने पत्नी को अपमानित करने का एक भी मौका न छोड़ता था, वह अपने पति के लिए सज धज कर रहती, पर वह उसे यूं तैयार देख की, कही किसी से प्यार न हो जाये इस पर किसी की नजर न पड़ जाये, उसके मायके वालो को गाली दे कर उसे अपमानित करता, उसे घर में पूरी तरह कैद करके रखता, किसी को भी घर में आने की इजाजत न थी अगर कोई धोखे से आ भी जाये तो उसकी, यही कोशिश रहती की किसी की उस पर नजर न पड़े, वह चिट्ठी लिखकर अपनी राम कहानी न बाताये, टीवी न देखे, पत्रिका न पढ़े, यही न ही ऑफिस की महिला सहकर्मो को भी वह किसी पुरुष कर्मचारी के साथ अगर बात करते देख ले तो उनके पतियों को फोन कर देता था, फाईले देकर काम में लगवा देता, सभी उसके इस शक करने की आदत से परेशान थे।

पत्नी भूतनी के सामान घर में केश फैलाये घूमती,पति खुश रहते, फिर भी यही चाहते किसी की नजर उस पर न पड़े क्यूंकि इस दुनिया में भूतनी से प्रेम करने वालो की कोई कमी नहीं है। पत्नी अब चामुंडा नाम का जाप करने लगी, काली माँ की बड़ी सी मूर्ति रख कर, जिससे पति पता नहीं बचपन से डरे थे, पति दिन -रात झगड़ते एक बार उन्हें अटैक आ गया पत्नी पूजा छोड़कर डॉक्टर के पास भागी, सभी रिश्तेदार पहुंच गए, बहन, माँ, बुआ मौका मिलते ही पत्नी वहां से चली गयी फिर कहीं नजर नहीं आयी, न घर में न परिवार में और न ही समाज में, विषपायी जनम के शीर्षक के लिखी गयी कहानी मुन्नी के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत करती है, जो तिकड़मबाज है, गलत तरीको से पैसे कमाकर आमिर बनना चाहती है, ऊँचे ऊँचे, बड़े बड़े लोगो से पहचान का गलत फायदा उठती है, उसके बीमार पड़ने पर सभी बड़े-बड़े मंत्री उसे पहुंचने लगे, भाई बेचारा मुँह नीचे किये, कुर्सी पर बैठा रहा, माँ शुरू से ही उसके गलत आचरण पर थी, उससे प्रोत्साहन देती रही ताकि घर की गरीबी दूर हो उसे मंहगे मंहगे तोहफे मिले, बड़ी गाड़ियों में घूमने को मिले इत्यादि, बड़ा भाई योग्य होने पर भी उपेक्षित रहा, भागमतिन मांगलिक कहानी के भिखारियों की दशा का, लेखिका ने सदृश्य चित्रण प्रस्तुत किया है, भिखारियों की टोली असमय अपनी बेटी का विवाह आधी उम्र दर्ज के व्यक्ति से करा कर जो की लंगड़ा है, शराबी है, असमय मृत्यु होने पर देवर देवरानी लड़ती और लकड़ी से मार कर भगाते है, वह बच्चो को लेकर माँ के पास आना भी माँ को भी ना जाने क्या बीमारी हो गयी, कमा पाने में असमर्थ, देवी मंदिर के पास भीख मांगने बैठ गयी, बेटी को देखकर रोने लगी और भगाने लगी एवं मुलाजम ने उसकी बेटी पर दया कर, उसी मंदिर में उसके बैठने की व्यवस्था कर दी, भोग प्रसाद मिल जाता, बच्चे भी भरपेट खाते, भागमतिन, मुलाजम को हर तरह से खुश रखती, वह निराश्रितों को मिलने वाला पेंशन उसे दिला गया और झोपड़ी के लिए जगह भी।

अब तो सभी भिखारियों की तुलना में वह सबसे अमीर भाग्यवाली थी। बेटा, होटल में काम करने गया, वही रहता, बेटी की असमय विवाह कर दिया पर उसे संतुष्टि है की वह सुख से है, भिक्षावृत्ति उसे एक अद्भुत कला लगती जिसमें रस ही रस है, बस शर्म हया उतार कर रख देनी है।

उससे सहा नहीं गया, लड़खड़ती सी वह अपनी कोठरी में जा दिवार से लग ढह गयी. इतना भरी सुख, कैसे सहे, आँखे भरभरा रही थी– हाँ मंगतिन होने की गलाजत होने की उसके साथ ही ख़तम हो जाएगी। वह सचमुच भागमतिन है।

एक दीप कहानी में सभ्य शिक्षित महिला के साथ तथा अनपढ़ असभ्य महिलाओं का लड़ना व्यंग बाण से आहत करना, गालिया देना, झगड़ पड़ना, निछता की सीमाएँ लाँघ जाना इत्यादि का बड़ी बारीकी से लेखिका ने वर्णन किया है।

बिजली बिल का पटाने में लम्बी लाइन के बिच जद्दोजहद, झूमाझूटी का ह्रदयकारी वर्णन प्रस्तुत किया है, निम्न वर्ग का मजदूर स्त्रियां ना जाने उसके ह्रदय में कितनी कटुता, पशुता भरी हुई है की बोलने के पूर्व एक बार भी विचार नहीं करते, वो एक शब्द बोलती तो पीछे पूरी फ़ौज युद्ध को तैयार रहती थी, ना जाने इन्होने कैसी संतान को जन्मा होगा।
काय कथे..... काय कथे? कहाथे तुमन शुरू से काबर नहीं लाइन बनाय रहे ओ, हमन लाइन में नहीं बइठे रहन? आके बिच में घुस लिस है, हूरा यारी देखाथे, पढ़े लिखे हो देखाथे, हमन येखर ले ज्यादा पढ़ हे हन।

इस प्रकार सुभदा मिश्र जी ने प्रत्येक नारी वर्ग का चाहे वह किसी भी वर्ग जाति से सम्बंधित हो का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। नारी चेतना के आयाम में स्त्रियों के हर रोग का वर्णन, हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। तो वही चेतना जगाने का प्रयास करती भी नारी ही है। सबका ढेर कहानी, कोई खत नहीं में मोना कथा नायिका के रूप में तथा बिट्टी दीदी के रूप में परिस्थितियों से त्रस्त हो चुकी स्त्री पात्रों की कारुणिक दशा का वर्णन है जिनके लिए मायके तक में आश्रय पाकर सुरक्षित रह सके वह भावना समाप्त हो गयी। मायके में भी प्यार के दो मीठे बोल बोल को तरसती है, कभी मन करता है, अपनी जीवन लीला समाप्त कर ले।

लेखिका ने अपनी पैनी दृष्टि से बड़ी ही कुशलता पूर्वक नारी चेतना के आयामों का वर्णन कर नारियो में एक नयी चेतना, नयी शक्ति डालने का प्रयास किया है, ताकि विषम विषम स्थितियों में भी वे अपने लिए संजीवनी की तलाश कर ले। मार्ग प्रशस्त करती है सभी नारियो का एक स्वस्थ समाज निर्माण में योगदान देती है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. हरिभूमि नवम्बर, 2007, 49 पेज मुक्ति पर्व
2. प्रणेता परिवेश, महिला उपहार विशेषांक जनवरी 1982
3. वागर्थ मई 2008, यही कही होगी संजीवनी 198 पेज

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

ध्वनि की अवधारणाः एक अध्ययन

• रामेश्वर पाण्डेय
•• प्रज्ञा ओझा

सारांश- भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 6 सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन्हीं में से एक आनन्दवर्धन का ध्वनि सिद्धांत है जो कि काव्यशास्त्र के अन्दर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि ध्वनि की अवधारणा बहुत प्राचीन है। आनन्दवर्धन से पहले की भर्तृहरि, पंतजलि आदि विद्वानों ने ध्वनि विषयक अपने मत प्रतिपादित कर चुके थे, तथापि ध्वनि को एक सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय आनंदवर्धन को ही जाता है आनंदवर्धन के परवर्ती विद्वानों ने भी ध्वनि विषयक अपनी-अपनी अवधारणाएं विकसित की तथा ध्वनि के विभिन्न रूपो को सरलतम रूप में प्रस्तुत कर ग्राह्य बनाने का सार्थक प्रयास किया है। प्राचीन समय से लेकर आज तक विभिन्न आचार्यो ने ध्वनि संबंधी अपने-अपने दृष्टिकोण विकसित किए हैं जो कि ध्वनि सिद्धांत को समृद्ध करने में अभूतपूर्व योगदान देते हैं।

मुख्य शब्द- आनन्दवर्धन, सम्प्रदाय, प्रतिपादित

रीति और वक्रोक्ति सिद्धांतों की भांति, ध्वनि सिद्धांत भी काव्य की आत्मा का अनुसंधान करने वाला सिद्धांत है। इसके अनुसार काव्य की आत्मा ध्वनि है ध्वन्यालोककार आनंदवर्धन ने कहा है –

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व –
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद् वाचां स्थितमाविषये तत्वमूचुस्तदीपं
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्।।"

जिस ध्वनि–सिद्धांत को विद्वान लोगों ने पहले स्वीकार किया परन्तु आगे कुछ लोगों ने जिसकी आलोचना अभावत्व और अवर्णनीयत्व के कारण की उसी ध्वनि सिद्धांत का प्रतिपादन आनंदवर्धन ने किया, उनके स्पष्टीकरण के रहते हुए भी प्रतिहारेन्दुराय, धनंजय, धनिक .....भट्टनायक, महिमभट्ट क्षेमेन्द्र अन्य ने ध्वनि सिद्धांत का विरोध किया, परन्तु अभिनवगुप्ताचार्य की ध्वन्यालोकलोचन की व्याख्या और आचार्य मम्मट की काव्य प्रकाश में स्थापना के उपरांत ध्वनि–सिद्धांत महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ काव्य सिद्धांत के रूप में स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार ध्वनि काव्य सर्वोत्तम काव्य है। गुणीभूत काव्य मध्यम काव्य है तथा व्यंग्यहीन काव्य अवर या अश्रेष्ठ काव्य है।[1]

ध्वनि की परिभाषा करते हुए ध्वन्यालोककार ने लिखा है – "जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय को गौण करके प्रतीयमान अर्थ को प्रकाशित करते हैं उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।"[2]

इसका अभिप्राय यह है कि ध्वनि में व्यांग्यार्थ (प्रतीयमान) अर्थ तो रहता ही है, किन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नही है, उस प्रतीयमान अर्थ का वाच्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होना अपेक्षित है। या यों कहिए कि जहाँ व्यांग्यार्थ प्रमुख एवं वाच्यार्थ गौण हो, वहीं ध्वनि मानी जानी चाहिए।[3]

• प्राध्यापक (हिन्दी विभाग) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)
•• शोधार्थी एम.फिल.(हिन्दी) यू.जी.सी.नेट (जे.आर.एफ.) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

जिस प्रकार शब्द के अलग-अलग वर्णो के उच्चारण से अर्थ की अभिव्यक्ति नही होगी, उसी प्रकार अभिधा या लक्षणा के द्वारा भी सम्पूर्ण अर्थ और विशेष रूप से मार्मिक अर्थ की अभिव्यक्ति नही होगी। यह मार्मिक अर्थ व्यंजना के द्वारा प्राप्त होता है। अभिधा और लक्षणा के उपरांत व्यंजना से ध्वनित होने वाला चमत्कारिक अर्थ ही ध्वनि है यह ध्वनि ध्वन्यालोककार ने अनुरणन के रूप में मानी है। जिस प्रकार घंटे पर आघात करने से पहले टंकार और फिर मधुर झंकार एक के बाद अधिक मधुर निकलती है, उसी प्रकार व्यंग्यार्थ भी ध्वनित होता है। ध्वनिकाव्य का संबंध वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ आदि से है अत: ध्वनि के स्वरूप को समझने के लिए शब्दशक्ति का विश्लेषण आवश्यक है।

(क) **अभिधा** - वह शब्दशक्ति या शब्द का व्यापार है जिसमें साक्षात् सांकेतिक या मुख्य अर्थ का बोध होता है मुख्य या प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण इस अभिधा शक्ति को मुख्या या अग्रिमा भी कहते हैं जिस शब्द से मुख्य अर्थ का बोध होता है वह वाचक कहलाता है तथा उससे निकलने वाला मुख्य अर्थ वाच्यार्थ होता है।

(ख) **लक्षणा** - मुख्यार्थ या वाच्यार्थ में बाधा या व्याघात के होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के सहारे, उससे संबंधित, जहॉ पर अन्य अर्थ लक्षित होता है, वहाँ पर लक्षणा शक्ति काम करती है।

इस प्रकार लक्षणा से संबंधित तीन बाते हैं - (1) मुख्यार्थ या वाच्यार्थ की बाधा (2) रूढ़ि या प्रयोजन (3) उससे संबंधित अन्य अर्थ इन तीनों के आधार पर लक्षणा के भेदों का विस्तार हुआ है।

(ग) **व्यंजना** - व्यंजना का शब्दार्थ है विशेष रूप से स्पष्ट करना खोलना या विकसित करना अभिधा और लक्षणा शक्तियों को अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं। ऐसे शब्द को व्यंजक और अर्थ को व्यंग्यार्थ कहा जाता है। यहीं पर एक बात और स्मरण रखने की यह है कि यह व्यंजना द्वारा प्रकट अर्थ अभिधाशक्ति से अनेकार्थी शब्दों द्वारा निकलने वाले अर्थ से भिन्न है।[3]

मीमांसा-दर्शन में अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त तीसरी शक्ति भी मान्य है तात्पर्यवृद्धि जो वाक्य के अर्थ (तात्पर्य)का बोध करती है इस आधार पर मीसांसकों के 2 मत बन गये हैं।

(अ) अभिहितान्वयवाद - इसके प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं। उनकी मान्यता है कि शब्द अपने अर्थ का अभिधायक (वाचक) है और अर्थ उससे अभिहित (उक्त वाच्य) होता है। वाक्यगत पद अलग-अलग अपने अर्थो का अभिधान करते हैं और फिर उन अभिहित अर्थो का अन्वय होने से वाक्यार्थ बनता है - यही 'अभिहितन्वय' अथवा अभिहित अर्थो के परस्पर संबंध की बोधिका वृत्ति 'तात्पर्य वृत्ति कही जाती है। इसको अन्वय शक्ति या वाक्य शक्ति भी कहा जा सकता है।

(ब) अन्विताभिधानवाद - इसके प्रवर्तक आचार्य प्रभाकर हैं उनके मत से वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ है। वे यह मानकर नही चलते कि कोई पद पहले अन्वित पदार्थ का बोध करा देता है और फिर उन अन्वय-हीन पदार्थो का अन्वय होता है उनकी स्थापना है कि प्रत्येक पद अन्वित अर्थ का ही बोधक होता है - अर्थात अन्वय सहित अर्थ ही पद का बोधक होता है। अत: अलग से अन्वय शक्ति मानने की आवश्यकता नही है।[4]

ध्वनि सिद्धांत रस सिद्धांत और अलंकार सिद्धांत को आधार बनाकर आगे बढ़ा है। ध्वनि सम्प्रदाय में अन्य सम्प्रदायों की भांति कई त्रुटियां और असंगतियाँ है यह अपने आप में एक पूर्ण सिद्धांत नही है। एक और ध्वनिकर प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा मानते हैं तो दूसरी ओर ध्वनि के प्रतीयमान अर्थ के अतिरिक्त ध्वनि के अन्य अवयव भी शामिल कर लिए जाते हैं प्रतीयमान अर्थ की प्रधानता, अप्रधानता ओर शून्यता के आधार पर ही काल को उत्तम मध्यम एवं अधम घोषित कर देना भी ध्वनिवादियो का अतिवाद है सही बात तो यह है कि प्रतीयमान अर्थ भी चारूत्व सौन्दर्य के हेतुओं में से एक है।[5]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ध्वनि सिद्धांत अपने में पूर्ण न होने के बाद भी काव्यशास्त्र में एक अलग स्थान रखता है। ध्वनि की परम्परा प्राचीनकाल से अनवरत चलती हुई यहां तक पहुँची है इस लंबी परम्परा में आचार्यो ने अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर इस सिद्धांत का पर्याप्त पृष्ठपोषण किया है और आज के विद्वान इस दिशा में चिंतन कर रहे हैं आने वाले समय में निश्चित ही इस सिद्धांत के नये-नये तथ्यों का उद्घाटन हो सकेगा।

सदर्थ ग्रन्थ सूची -

1. मिश्र भगीरथ 1902 काव्यशास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी संस्करण-पंचम पृष्ठ संख्या 203
2. मिश्र भगीरथ 1902 काव्यशास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी संस्करण- पंचम पृष्ठ संख्या 203
3. गुप्त, गणपति चन्द्र 1981, भारतीय एवं पाश्चात्य काल सिद्धांत, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद, संस्करण प्रथम पृष्ठ संख्या-123
4. मिश्र भगीरथ 1902 काव्यशास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी संस्करण-पंचम पृष्ठ संख्या 213
5. अवस्थी बच्चूलाल 1972, ध्वनि सिद्धांत तथा तुलनीय साहित्य -चिन्तन मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, संस्करण- पृष्ठ संख्या 53

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में अभिव्यक्त 'राम' का स्वरूप

•श्रीदेवी चौबे
••ऋचा शुक्ला

सारांश- राम प्रेम, विश्वास और भरोसा है। राम-नाम अवलंबन एकू....। अपने वनवासकाल में राम ने जो सबसे बड़ा काम किया, वह यह है कि उन्होंने वनवासियों से, लोकजन से आत्मीयता का वरण किया। वे जन-जन में पहुँचे तो वनवासियों को महसूस हुआ कि राम को वनवास नहीं वरन हमें एक नया राजा मिला है। राम ने जैसे भरत को अपनापन दिए वैसे ही लोकजन को अपना बनाया। लोकावतार राम अपने वनवासकाल का अधिकतम समय छत्तीसगढ़ (दण्डकारण्य) में व्यतीत किए थे। माता कौशल्या की जन्मभूमि को, छत्तीसगढ़ के इतिहास के पन्ने में दर्ज कर दिया है। अपने जीवन के सर्वाधिक संघर्षपूर्ण अवधि छत्तीसगढ़ में बिताए। इसी संघर्ष का प्रतिफल रामराज्य की स्थापना है। इसी जुझव को लोक ने अपने लोक-साहित्य की एक विधा लोकगीत में समाहित किए। लोकगीत के माध्यम से उन्होंने अपने हर उत्सव, उमंग, तीज-त्यौहार, सुख-दुःख, शोक, अपनी भक्ति में अपने अनुरूप समाहित किए हैं। छत्तीसगढ़ के विभिन्न लोकगीतों में राम अभिव्यक्त हुए हैं। जंवारा के देवी-गीतों में, भाई-बहन के रिश्तों की मिठास का पर्व, भोजली गीतों में, हल्बा जाति द्वारा मनाए जाने वाले धनकुल गीतों में, कृष्ण से जुझ पर्व होली के फाग-गीतों में, ददरिया, स्वदेशी आंदोलन के गीत, भजन, प्रेम-गीत, जन्म-विवाह के गीतों में छत्तीसगढ़ी लोकजनों ने, राम को समाहित किया है। अपने हर आनंद और विषाद में राम गाथा को गाया है। छत्तीसगढ़ी लोकगीत की विविधता राम के चरित्र में परिलक्षित होती है।

मुख्य शब्द- लोकसाहित्य, छत्तीसगढ़ी लोकसंस्कृति, छत्तीसगढ़ी लोकगीत, लोकगीतों में राम का स्वरूप

परिचय- राम चेतना के सर्वोत्तम रूप हैं, इनका जीवन-चरित्र शीलपूर्ण है, जिसके कारण हर व्यक्ति अपना रिश्ता राम से जोड़ लेता है। राम जन-मन को इतना करीब से क्यों छूता है? युग बीत गया लोकावतार यह देवता लोक-चेतना की गहराइयों में उतर गया है। लोक-मानस में उन जैसी प्रतिष्ठा किसी अन्य भारतीय चरित्र को संप्राप्त नहीं। वे राजपुत्र हैं, किंतु वनवासी राम का व्यक्तित्व उन्हें लोकजन के निकट ले जाता है। यह मर्यादा नहीं, तो लौकिकता भी नहीं है। कुछ विशेष है और वही राम है, जिसे लोक ने अंदर अपने हृदय में धारण कर रखा है। राम अपने चौदह वर्ष के वनवास काल का जैसा रचनात्मक प्रयोग किया, वह गौरव, वह मर्यादा और संघर्ष उनके रामराज्य पर भी भारी है। राम हर रिश्ते में अत्यंत सहज, सरल, उदार और संवेदनशील हैं। यही सरलता, सहजता, संवेदनशीलता उन्हें सबसे जोड़ती है, उन्हें वनवासियों एवं आम लोगों के करीब ले जाती है। राम वे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने वनीय जनगण जीवन की समस्या को समझा और उनहें सुलझाने में योगदान दिया। वे उनके दु:ख-सुख का हिस्सेदार बनते हैं। राम उन सब के पास जाते हैं जो राजदरबार तक नहीं पहुँच सकते- निषादराज, गीद्ध, शबरी आदि तक राम स्वयं उपलब्ध होते हैं। राम ने लोक तक पहुँचने के लिए पगडंडियों की यात्रा की है। सत्ता और लोक-जन की दूरियाँ फलत: मिट गई और राम जन-मन के हो गए और जो लोक-साहित्य के दर्पण से प्रतिबिंबित

• निर्देशक विभागाध्यक्ष (हिंदी विभाग) बाबू छोटेलाल श्रीवास्तव शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धमतरी (छ.ग.)
•• शोधार्थी पल्लवी विहार रोहणीपुरम, गोल चौक, हनुमान मंदिर गली, रायपुर (छ.ग.)

होता रहता है। वेद-पुराण और स्मृतियाँ भारतीय संस्कृति के जिन पक्षों के संबंध में मौन हैं, लोक-साहित्य अंशत: उनके संबंध में कुछ कहते हैं। लोकाभिराम राम के ईश्वरत्व और मनुष्यत्व की गौरव-गाथा लोक-साहित्य में भरे पड़े हैं। भारतीय संस्कृति में रामकथा गहराई से जुड़ी है। रामकथा विभिन्न भाषा और परिवेश को समाहित करते हुए हजारों वर्षों के दीर्घ समानांतर धार्मिक संस्कार बनकर लोगों के मन में जीवन-शक्ति का संचार करती रही हैं। हमारे देश में राम सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में अभिवादन से लेकर अचरज तक सर्वत्र व्याप्त हैं।

राम के माध्यम से हम समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध सकते हैं। उन देशों को भी जोड़ सकते हैं, जो रामकथा से प्रभावित हैं। राम राष्ट्र की अस्मिता के मान-मर्यादा और संस्कृति के प्राण हैं। रामकथा का संबंध एक विशेष कालखण्ड से रहा है, लेकिन इसका प्रभाव और इसकी गरिमा सर्वकालिक और सार्वभौमिक रही है। रामनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- "रामकथा का उपलब्ध आदिस्रोत वाल्मीकि रामायण है। जब वाल्मीकि के ऐतिहासिक महामानव राम अपने अनेक सद्गुणों के आधार पर नर से नारायण मान लिए गए तो चरित्र-चित्रण और घटना-प्रसंगों में नयी-नयी उद्भावनाएँ की गयीं। जैसे-जैसे राम के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई उनके दिव्य गुणों का विकास होता गया। यह विकास समाज और मानवता के लिए शुभ था।"[1]

वाल्मीकिकृत राम-कथा संस्कृत अर्थात् देवनागरी भाषा में लिखी गयीं, पश्चात् प्रतिभाशाली उत्साही लोकजनों ने अपनी लोकभाषा, संस्कृति और अपनी अभिरुचि के अनुकूल रामकथा की रचना की। तुलसी ने अवधी में रामचरितमानस का सृजन कर लोकार्पित किया। इस तरह लोकभाषा में लोक-साहित्य रचे गए, जिससे रामकथा का प्रचार जन-जन में हुआ और इन लोक-विधाओं में जन-मन की अनुभूति थी। ऐसे ही लोक-साहित्य की एक विधा है 'लोकगीत', जो सामान्य जन के कंठ में विराजती है और एक कंठ से दूसरे कंठ में प्रवाहित होती रहती है। प्रत्येक भाषा का अपना लोकगीत होता है, जिसमें आंचलिकता की सुगंध होती है। इन लोकगीतों में पूरी रामायण बिखरी हुई है। हमारे सभी उत्सवों, समारोहों, विवाह, सोहर अथवा अन्य उत्सव, धार्मिक अनुष्ठान, सभी में रामकथा प्रसंग विद्यमान हैं।

छत्तीसगढ़ को प्राचीन काल में दक्षिण कोशल, दण्डकारण्य, महाकान्तर आदि नामों से अभिहित किया गया है। "लोक मान्यताओं के अनुसार छत्तीसगढ़ भगवान श्रीराम का ननिहाल है। माता कौशल्या एवं सुमित्रा का मायका यहीं था। रामायणकालीन अनेक ऋषियों एवं पात्रों की कर्मभूमि छत्तीसगढ़ ही था। अगस्त्य मुनि का आश्रम सरगुजा स्थित सरभंजा ग्राम में था। ऋषि जमदग्नि की तपोभूमि सरगुजा जिले में ही देवगढ़ के पास रेणु नदी के तट पर थी। रामायण के रचयिता एवं भगवान श्रीराम के समकालीन माने जाने वाले माता सीता के आश्रयदाता ऋषि वाल्मीकि का आश्रम रायपुर के निकट ग्राम तुरतुरिया में था। श्रीराम के पुत्र लव एवं कुश का जन्म एवं शिक्षा-दीक्षा यहीं हुई। वशिष्ठ मुनि का आश्रम भी सरगुजा में रामगढ़ पर्वत पर था। आज भी उस पहाड़ की एक गुफा वशिष्ठ के नाम से जानी जाती है। शृंगी ऋषि का आश्रम महानदी के उद्गमस्थल सिहावा पर्वत पर था। सरभंग मुनि एवं सुतीक्षण मुनि का आश्रम भी सरगुजा में स्थित था।"[2]

छत्तीसगढ़ में लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत इन सब में राम और रामकथा व्याप्त है। भोजली, जंवारा, सुवागीत, बसदेवा गीत, माता सेवा गीत, ददरिया, पंडवानी,

नांचा-कूदा, गम्मत आदि राम की कथा को लोक-रंग में रंगा गया है। "लोकगीतों की दुनिया में जरूरी नहीं कि राम सदा राजमहल में ही जन्म लें। वरन् उन्होंने तो अपने मुक्ति दाता के एक झोपड़ी में पैदा होने की कल्पना की है। उसमें कही राम हल चलाते, लक्ष्मण जुताई करते और सीता बीज बोती हैं, तो कहीं राम अपनी कुटिया में दीया जलाने के लिए तेल का प्रबंध करते, लक्ष्मण बाती बनाते और सीता दीप जलाती चित्रित की गई हैं।"[3]

छत्तीसगढ़ की अनेक जनजातियों के पास लोकगीत का बड़ा भंडार है। छत्तीसगढ़ की अनेक जनजातियों को यह विश्वास है कि, युगों पूर्व उनके पूर्वज ने राम-रावण युद्ध में भाग लिया था और रामजी की सहायता की थी। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के अंतर्गत संस्कार-गीतों में राम का महत्व उल्लेखनीय है। भारतीय शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है, जिसमें जन्म, विवाह और मृत्यु तीन प्रमुख संस्कार हैं। जन्म से संबंधित संस्कारों में सोहर एक महत्वपूर्ण संस्कार है। छत्तीसगढ़में बरही (जन्म के बारहवें दिन) में स्त्रियाँ सोहर गाती हैं। सोहर का मुख्य विषय पुत्र-जन्म के अवसर पर होने वाली प्रसन्नता, आनंद और सुख का गीत है, जिसमें महिलाएँ अपने पुत्र में राम का स्वरूप देखती हैं-

"कउने घड़ी भये सिरी रामे,
कउने घड़ी लछिमन हो
ललना कउने घड़ी, भरत भुवाल,
तीनों घर सोहर हो।
भले घड़ी भये सिरी रामे,
भले घड़ी लछिमन हो
ललना भले घड़ी भरत भुवाल,
तीनों घर सोहर हो।"[4]

महिलाएँ नवजात बालक-बालिका में राम-सीता की छटा देखकर अपने में कौशल्या और सुनयना के समान सुख पाती हैं-

"राम जनम लिन्हें, भगवान जनम लिन्हें
चइत राम नवमी में राम जनम लिन्हें
सुईन आवय नेरुवा छिनै
नेरुवा छिनऊनी देबो मन के मड़वनी
सखियाँ आवयँ सोहर गावयँ
सोहर गवउनी देबो मन के मड़वनी
चइत राम नवमी में राम जनम लिन्हें।"[5]

सोलह संस्कारों में विवाह दूसरा बड़ा संस्कार है। छत्तीसगढ़ी लोक-जीवन की अभिव्यक्ति विवाह-गीतों में भी अभिहित होती है। वर राम और वधू सीता के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। वर-वधू में राम-सीता की छवि देखते हैं-

"एक तेल चढ़िगे हो, हरियर हरियर
मँड़वा मा दुलरु तोर बदन कुम्हिलाय
राम-लखन के ओर राम लेखन के
तेल ओ चढ़त हे दाई तेल ओ चढ़त हे
कँहवा के दियना होवै अँजोर

राम लखन के दाई तेल ओ चढ़त हे
कौसिल्या के दियना मोर होवै अँजोर।"[6]

आँगन के मड़वा छवाई (मंडपाच्छादन) करके कलश स्थापित करते हैं। इस अवसर पर लोकगीत गाते हैं-

"सरई सैगोना के दाई मड़वा छवाई ले
वही सिरिस वही खाम
सीता ल बिहावय राजाराम
नदिया के तिर तिर दाई पड़की परेवना
कनकी ल चुनी चुनी खाय
कि अय मोर दाई सीता ल बिहावय राजाराम।"[7]

भाँवर (सात फेरे) लेते समय वर-वधू में राम-सीता की छवि देखते हैं-

"भाँवर परत हे, हो भाँवर परत हे हो नोनी दुलरी के
होवत हे दाई मोर राम अऊ सीता के बिहाव
एक भाँवर परगे, एक भाँवर परगे
हो नोनी दुलरी के हो नोनी दुलरी के
अगिन देवता दाई हावै मोर साखी।"[8]

आदिवासी बहुल छत्तीसगढ़ की हलबा जनजाति अपने प्रिय लोकगीत धनकुल लोकगीत का आरंभ श्रावणी अमावस्या अर्थात् हरेली के दिन से करते है और भादो मास के तीज (हरितालिका) को विसर्जन करते है। उस लोकगीत में प्रभु राम की वंदना करते हुए कहते हैं-

"उठो उठो मोर धनकुल डांडी, हरि बोलो, हरि बोलो भाई।
राम कहि बैठो, हरि बोलो, हरि बोलो, हरि बोलो भाई।
धनकुल डांडी के नौ सौ मलनिन नौ सौ चंवर डोले।
माई नौ सौ चंवर डोले।"[9]

लोक-विधा पंडवानी की कथा महाभारत के महानायक श्रीकृष्ण की है, लेकिन पंडवानी के दोनों शैलियों में वेदमती और कपालिक शैली के कलाकार कथा का आरंभिक आलाप और विसर्जन में राम का स्मरण करना नहीं भूलते-

"रामा सिया रामा लखन सिया रामा महाभारत मं,
महाभारत मं भइया सबो कथा मिलथे महाभारत मं
भरत चरित सुन आवव जाके महाभाारत मं
ताकर पाप निकट नहिं आवे महाभारत मं
रामा सिया रामा लखन सिया रामा महाभारत मं
महाभारत मं ग मोर भइया सबो कथा हावय
महाभारत मं।"[10]

सुआ महिलाओं द्वारा किया जाने वाला लोकनृत्य-गीत हैं। यहाँ विशेषकर दीपावली के समय गाया जाता है। इस लोकगीत में स्त्री जाति की करुणा और व्यथा के साथ रामकथा भी इस लोकनृत्य-गीत के विषय होते हैं।

राम के असाधारण अस्वाभाविक और अवतारी कृत अपूर्व और विस्मयकारी है। गुरु की आज्ञा से उन्होंने शिव-धनुष तोड़ा और सीता से ब्याह किया, इसका सुंदर वर्णन करते

हुए सुवना (तोता) से कहते हैं–

"अजोधिया ले आईन राम–लखन रे सुवना,
गुरु के अगिया पाई।
अपन–अपन ताकत भर तो रे सुवना
धनुष ल नई राजन उठा पाईन।
सिरी भगवान तिन बरोबर रे सुवना,
धनुष ल लिहिन उठाय।"[11]

जँवारा–गीत देवी अराधना से जुड़ा पर्व है, लेकिन यह अद्‌भुत संयोग है कि चैत्र नवरात्र और शारदीय नवरात्र दोनों राम से जुड़े हैं–

"फूल चढ़ावौ हो मोरे सालिक रामा हो वीर हनुमान
कवने रंग तुलसी कवने रंग रामा,
कवने रंग हो मोरे वीर हनुमान
हरा रंग तुलसी सावल रंग रामा
लाल रंग हो मोरे वीर हनुमान
कहां रहिथे तुलसी कहंवा रहिये रामा
कहंवा रहिथे मोर वीर हनुमान
चौरा रहिथे तुलसी सिंघासन रहिथे राम,
मंदिर रहिथे मोर वीर हनुमान
का खाथे तुलसी का खाथे रामा,
का खाथे मोर बीर हनुमान
पानी खाथे तुलसी मिठाई खाथे रामा,
बरफी खाथे मोर वीर हनुमान।"[12]

लोक–पर्व भोजली सावन माह में मनाया जाने वाला देवी का त्यौहार है। देवी की प्रार्थना–गीतों के साथ ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों के साथ माता कौशल्या राम सीता का उल्लेख भी मिलता है–

"देवी गंगा, देवी गंगा लहर तुरंगा हो लहर तुरंगा
हमरो देवी भोजली के भींजै आठो अंगा।
अहो देवी गंगा.....।
कौसल्या माइ के मइके म भोजली सरोबो
सिया राम के दरसन करके तोला परघाबो
अहो देवी गंगा....।"[13]

ददरिया लोकगीतों की रानी है। यह मूलतः शृंगार प्रधान है, फिर भी लोक इन गीतों में राम और रामकथा के पात्रों का सहज उल्लेख करता है। निम्न ददरिया–गीत में सीता की खोज में निकले राम–लक्ष्मण–हनुमान हैं–

"बोलो बोलो मुनिरंजन हरि गुन गावों रे चिरैया बोले।
पागा ल बाँधे पुरुत करके। राम झिरिया नहाले सुरुत करके।
कोन बन मं आमा कवन बन जाम।
कोन बन के चिरैया बोलथे राजाराम।

राम धरे धनुहीं लखन धरे बान।
सीता माई के खोजन बर छुटे हे हनुमान।।"[14]

'फाग' छत्तीसगढ़ का बासंती-गीत है। फाल्गुन मास में होली के अवसर पर गाए जाने के कारण ही इन्हें 'फाग' कहते हैं। फाग-गीतों में मुख्यत: राधा-कृष्ण का संबंध होता है, लेकिन राम-सीता के भी फाग-गीत मिलते हैं। फाग शृंगार-गीत के साथ-साथ आनंद और उल्लास का भी गीत है-

"अजोध्या मां राम खेलें होरी।
अजोध्या मां राम खेले होरी।।
अरे बजे नगाड़ा दसों जोड़ी।
अजोध्या मां राम खेले होरी।।"[15]

बसदेवा स्थायी अधिवास वाले परंतु घुमक्कड़ी जीवन व्यतरीत करने वाले गायक होते हैं। 'जय गंगान' तथा 'हर बोले' इनकी गायकी के टेक शब्द हैं। इन टेक पदों की गायकी के कारण इन्हें जय गंगान के नाम से भी जाना जाता है। ये मूलत: वैष्णव गायक होते हैं, इसलिए ये इनहीं के भजन या गीत गाते हैं। बसदेवा-गीत में केवट प्रसंग का दृश्य आता है-

"मोर बनवासी राजा राम बनोबर्स मँ सीताराम। जय गंगान
राम लच्छमन दोनों भाय संग मँ रहेन सीता माय। जय गंगान
मोर आगे कदम बढ़ावय राम जमुना जी ले होवय पार। जय गंगान
जमुना माता यल गहिरी कइसे नाँहके डोंगा पार। जय गंगान
बाजु मँ केवट बइठे ग जेला रामजी पारै हांक। जय गंगान
मोर आला भगती केवट गे ऐ गंगाले लगा दे पार। जय गंगान
देखै केवट रूपो लाज मनोमन्न मँ सोचे बात। जय गंगान
धन्न भाग मोर किसमत मोर सइँमुख उतर गये भगवान। जय गंगान
मोर आगे दे दे चरन ल तोर कालदंत मोर मुठन मां। जय गंगान
दे दे राम चरन ल तोर तब करिहौं गंगा ल पार। जय गंगान।"[16]

छत्तीसगढ़ में गौरी-गौरा, नारी-उत्सव और विवाह-उत्सव है। यह पर्व दीपावली के अवसर पर बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। गौरा अर्थात् शिव और गौरी अर्थात् पार्वती की मूर्ति बनाकर गौरा-गौरी स्थापित किया जाता है। निम्न गौरा-गीत में कैकेयी द्वारा भरत के लिए राजपाट माँगना और राम के लिए वनवास। राम-सीता-लक्ष्मण वन की ओर प्रस्थान करते हैं-

"ऊंचे गुड़ी हो चौखड़ छाये
निगुन धराये बान हो राजा।।
जेहि तीर पौढ़े राजा दसरथ
जेहि नहिं जागे जलवेग राजा।।
पानी छींछ के जगायों राजा।
सो तै मंगवे मैं सोइ दे हौं
मंगिहों ले हौं बकसीस राजा।।
मांगे बर मंगिहौं तोला दे नहिं जाहै
मंगिहौं ले हौं बकसीस राजा।।

चतुर गुन भरत के राज मांगेव
राम लछिमन के बनवास।।
आगू-आगू राम चले जाय
पाछू म लछमन भाई
माझ मझोलन सिता जानकी
चित्रकूट बर जाइ रे भाई।"[17]

रामकथा के कई प्रसंग लोक-भजन के रूप में गाया जाता है। यह लोक-भजन राम जन्मोत्सव पर गाया गया है, जहाँ राम माता कौशल्या को अपना ब्रह्म रूप दिखा रहे हैं-

"जन्म लेत रघुराई, अजोध्या म जनम लेत रघुराई।
सोवत सपना दसानन जागे, उठि बैठि अकुलाई,
लंका के राज ल विभीषण ल देईस, देवता के पद छुड़ाइस।
खैचिं पिताम्बर राम जगावें, उठि कौशिल्या माई,
तुम सो सुतेव आनंद पलंग में, कुच के दूध पिलाई।
उठि के माता चौदिस निरखे, कतुहन नजर न आई,
सुंदर बालक पलंग पर पौढ़े शोभा बरन नइं जाई।
शंख, चक्र, गदा, पदुम बिराजे, चार भुजा रघुराई,
दो भुजा के अलोप कर दे, कुच के दूध पिलाई।"[18]

सीता-स्वयंवर में रामजी द्वारा धनुष तोड़ना। तत्पश्चात् सीता-राम विवाह प्रसंग इस लोक-भजन में प्रस्तुत है-

"जै सियाराम जानकी माई।
राजा जनक के कुंवारी कन्या,
चंवदिसी प्त्र भेजाई।
देस-देस के भूपति आवय,
कौन चाप चढ़ाई।।
प्रथम उठय बाणासुर दानव,
उठे धनुष सधे सकुचाई।
दस मस्तक बीस भुजा थकगे रावण के,
बल पौरुष डार गंवाई।
कहत राम सुनो भाई लक्ष्मण,
करिबोन कौन उपाई।
उठाई धनुस दोई टुकड़ा करिबो,
सुरधुन बजे बधाई।"[19]

देश में स्वतंत्रता आंदोलन के समय गाँधी जी ने खादी को स्व-सम्मान का प्रतीक माना था। निम्न लोकगीत के माध्यम से खादी स्व-सम्मान और राम को वीरता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

"खेलत है लछिमन जती हो
राम जी धनुषधारी
सब फूल ले कते फूल भारी हो
राम जी धनुषधारी

सब फूल ले कपसा फूल भारी हो
राम जी धनुषधारी
सब लोहा ले कते लोहा भारी हो
राम जी धनुषधारी
सब लोहा ले नांगर लोहा भारी हो
राम जी धनुषधारी
सब कपड़ा ले कते कपड़ा भारी हो
राम जी धनुषधारी
सब कपड़ा ले खादी कपड़ा भारी हो
राम जी धनुषधारी।"[20]

एक छत्तीसगढी लोकगीत में अपने आराध्य राम से अनुरोध के साथ पर्यावरण प्रतिरक्षण का भी संदेश देते हैं-

"कउन कोड़ावै ताल सगुरिया कउन बँधावै पारे।
कउन लगावँय घन अमरैया, कउन करयँ रखवारे।
राम कोड़ावँय ताल सगुरिया लखन बँधावँय पारे।
सीता लगावँय घन अमरैया हनुमत करयँ रखवारे।
कउन बरन हे ताल सगुरिया कउन बरन रखवारे।
कउन बरन हे घन अमरैया कउन बरन रखवारे।
स्याम बरन हे ताल सगुरिया सेत बरन हे पारे।
हरा बरन हे घन अमरैया लाल बरन रखवारे।।"[21]

समय-चक्र के साथ हर युग और हर काल में शासकों के युग-धर्म होते हैं। इस तरह शासितों के भी कुछ कर्त्तव्य होते हैं। शासक और शासित के ये धर्म आपस में इस तरह जुड़े होते हैं कि इन दोनों को मिलाकर युग-धर्म बनता है। समय-चक्र के साथ कुछ युग-धर्म में परिवर्तन होते हैं, तो शाश्वत युग-धर्म ही राम-गाथा है, राम का चरित्र है। राम का चरित्र गंगा की तरह पावन है, जिसमें डुबकी लगाने से सभी पवित्र हो जाते हैं। राम - दो अक्षर का यह शब्द जन-जागृति के लिए बीज-मंत्र है। राम की मर्यादा, चरित्र अनुपयोगी नहीं हुए, आज भी जन-जन के उत्कर्ष के लिए राम का शील सीढ़ी है, शिखर पर चढ़ने का साधन है। लोक-जन जब तक शील और सत्य की कामना करेंगे, तब तक उन्हें राम की आवश्यकता होगी। दिशा प्रदान करेगा। राम सूर्य है, जिनके रहते कभी तम आ नहीं सकता।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. त्रिपाठी, रमानाथ (1998) : रामगाथा. राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्राक्कथन से, पृ. 5.
2. सिन्हा, विजय कुमार (2005) : छत्तीसगढ़ के लोक-साहित्य में राम और राम-काज. वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 226.
3. सोनी, जे.आर. (2008) : वाल्मीकि, तुलसी एवं लोकसाहित्य में राम, छत्तीसगढ़ में राम. छत्तीसगढ़ अस्मिता प्रकाशन, रायपुर, पृ. 160.
4. यादव, राजन (2018) : रामकथापरक छत्तीसगढ़ी लोकगीत और जीवन मूल्य, वैश्विक जीवन मूल्य और रामकथा. जे.टी.एस. पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ. 249.
5. वही, पृ. 249.
6. वही, पृ. 250.

7. वही, पृ. 250.
8. वही, पृ. 250.
9. परमार, नारायण लाल (2000): धनकुल गीत, छत्तीसगढी लोकगीतों की भूमिका. पहचान प्रकाशन, रायपुर, पृ. 96.
10. निर्मलकर, बलदाऊ प्रसाद (2005): पंडवानी में राम राम और राम-काज. वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 257.
11. कुलदीप, जगदीश (2005) : छत्तीसगढी सुवागीतों में राम की महत्ता, राम और राम - काज. वैभव प्रकाशन, रायपुर, पृ. 244.
12. नायडू, हनुमंत (1993): जँवारा गीत, छत्तीसगढ़ी लोकगीत. विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, पृ. 46.
13. यादव, राजन (2018): रामकथापरक छत्तीसगढी लोकगीत और जीवनमूल्य, वैश्विक जीवन मूल्य और रामकथा. जे.टी.एस. पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ. 251.
14. वही, पृ. 251.
15. नायडू, हनुमंत (1993): जँवारा गीत, छत्तीसगढी लोकगीत. विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर, पृ. 34.
16. यादव, राजन (2015): छत्तीसगढी लोकगीतों में राम वनवास प्रसंग, राम वन गमन की साहित्यिक निष्पत्ति. अखिल भारतीय साहित्य परिषद न्यास, नई दिल्ली, पृ. 27.
17. वर्मा, शकुन्तला (1971) : छत्तीसगढ में प्रचलित लोक-गीत, छत्तीसगढी लोक-जीवन और ललित-साहित्य का अध्ययन. रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 148.
18. पटेल, विद्यानंद (1994): छत्तीसगढ़ी भजनों की लोक परम्परा एक सांस्कृतिक अध्ययन. शोध-प्रबंध से, पृ. 120.
19. वही, पृ. 122.
20. परमार, नारायण लाल (2000): छत्तीसगढी लोक गीतों में नई चेतना के दर्शन छत्तीसगढी लोकगीतों की भूमिका. पहचान प्रकाशन, रायपुर, पृ. 31.
21. यादव, राजन (2018): रामकथापरक छत्तीसगढी लोकगीत और जीवनमूल्य, वैश्विक जीवन मूल्य और रामकथा. जे.टी.एस. पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ. 260.

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रतिरोध में हिंदी उपन्यास

•अनिता प्रजापत

सारांश- वैश्वीकरण से पल्लवित उपभोक्तावाद ने मनुष्य को धन और संसाधनों की आपाधापी में पूर्णतः उलझा दिया है। लालसाओं का ऐसा ज्वार जगा दिया है कि बड़ी से बड़ी वस्तु की प्राप्ति के लिए वह लालसा पाले हुए है, भले ही वह उसकी पहुँच में न हो। त्याग और सहज जीवन-पद्धति के विपरीत अनंत अभिलाषा और अधिकाधिक उपभोग पर आधारित बनावटी जीवन-पद्धति इस उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है। इसने मनुष्य को प्रदर्शन, छल-छद्म, तर्कहीन अनुकरण की ऐसी संस्कृति में ढ़ाल दिया है कि वह भौतिक वस्तुओं के पीछे पागल होकर दौड़ रहा है। और बदले में अपना सुख-चैन, जीवन का वास्तविक आनंद, सहज-सरल जीवन खोता चला जा रहा है। हिंदी उपन्यासकारों ने वर्तमान युग की इस उपभोक्तावादी संस्कृति को, उसके रूपों को गहराई से देख-परखकर और उसके दुष्परिणामों की पड़ताल कर अपने उपन्यासों में उसका यथार्थ चित्रण किया है तथा इसका पुरजोर प्रतिरोध उपस्थित कर अपनी संवेदनशीलता और सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है।

मुख्य शब्द- उपभोक्तावाद, वस्तु, भौतिकता, प्रदर्शन, सुख, लालसा

उपभोक्तावादी संस्कृति अधिकाधिक वस्तुओं के स्वामित्व और उपभोग से सुख प्राप्त करने में विश्वास करती है। इस समाज में वस्तुओं का कोई उपयोगिता मूल्य नहीं होता, सिर्फ उपभोग मूल्य होता है। उपभोक्ता की अपनी रुचियाँ, प्रतिक्रियाएँ और स्वप्न सो जाते हैं वह कृत्रिम आवश्यकताओं के मनोवैज्ञानिक जाल में फँस जाता है। तर्कहीनता, प्रदर्शन और छल–छद्म पर आधारित उपभोक्तावादी संस्कृति वस्तुओं को पाने की, उपभोग की एक बर्बर होड़ पैदा करती है और वस्तुओं की उपलब्धि को सामाजिक प्रतिष्ठा से जोड़ देती है।

भारतीय संस्कृति अपने त्याग और तप की विशिष्टता के कारण जीवंत है। यहाँ मानव जीवन की सफलता त्याग द्वारा संभव मानी गई है, भोग द्वारा नहीं। पाश्चात्य संस्कृति जहाँ भोग का उपदेश देती है, वहीं भारत की आध्यात्मिक संस्कृति त्याग और योग का संदेश देती रही है। त्याग के लिए तपकी आवश्यकता होती है और तप में मन और इंद्रियों को वश में रखना होता है। इंद्रिय सुख भोग पर आधारित भौतिकवाद कभी भी यहाँ चरम लक्ष्य नहीं रहा। लेकिन आधुनिक व्यवस्था में उपभोग के बिना किसी व्यक्ति के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। उसे भोजन, कपड़ा, आवास, चिकित्सा तथा आधुनिक जिंदगी को संभव और बेहतर बनाने वाली दूसरी कई चीजों की आवश्यकता होती है। इन्हें खरीदना और उपयोग में लाना ही उपभोग है। यह उपभोग जीवन की बुनियादी जरूरत है। इसके विपरीत ऐसी वस्तुएँ जो वास्तव में मनुष्य की मूल आवश्यकता की दृष्टि से उपयोगी नहीं है, लेकिन व्यावसायिक दृष्टि से, प्रचार के द्वारा जरूरी बना दी गयी है, यह उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है।

बदलती दुनिया के साथ उपभोग का स्वरूप बदल रहा है। एक समय तक बदलती दुनिया में उपभोक्ता वस्तुओं के साथ–साथ देश प्रेम, सामाजिकता और मानवीय संवेदना का एक संसार सुरक्षित था, जब उपभोक्ता, उपभोक्तावस्तुओं और राष्ट्रीय संस्कृति के बीच संपर्क बना हुआ था। लेकिन आज वैश्वीकरण की अपसंस्कृति की आँधी और उससे

• सहायक आचार्य हिन्दी, डॉ. भीमराव अंबेडकर राजकीय महाविद्यालय श्रीगंगानगर, राजस्थान

पल्लवित उपभोक्तावाद हमारी संस्कृति के श्रेष्ठ को लील रहा है। मनुष्य भौतिक दृष्टि से संपन्न और आत्मिक दृष्टि से अत्यंत विपन्न होता जा रहा है। अब उपभोक्ता, उपभोक्ता वस्तुओं और राष्ट्रीय संस्कृति का पारस्परिक संबंध टूट गया है। अब केवल उपभोक्तावादी संस्कृति है, जिसने सभी पुराने आदर्श उलट-पलट दिए हैं।

भूमंडलीकरण की उपज उपभोक्तावादी संस्कृति का चित्रण विविध रूपों में उपन्यासों में हुआ है और इसका पुरजोर विरोध विभिन्न कथाकारों ने अपनी-अपनी तरह से किया है। इन उपन्यासों ने उपभोक्तावादी संस्कृति से उत्पन्न संकटों पर विचार करते हुए, पाठकों को एक सही सोच देते हुए, उनमें इस संस्कृति के दुष्परिणामों की परिणति के प्रति गहरी समझ विकसित करने का प्रयास किया है। उपभोक्तावाद इस विश्वास पर आधारित है कि अधिक उपभोग और अधिक वस्तुओं का स्वामी होने से अधिक सुख और खुशी मिलेगी। इस सोच का प्रसार पहले अभिजात वर्ग तक था, अब यह धीरे मध्यमवर्ग, निम्न मध्यम वर्ग और ग्रामीण लोगों तक भी पहुँच गया है। अब सभी लोगों में वस्तुओं के प्रति आसक्ति पनप गई है, वस्तुओं का उपभोग प्रतिष्ठा का आधार समझा जाने लगा है। यह संस्कृति वस्तुओं को शुद्ध व्यावसायिकता के कारण योजनाबद्ध रूप से लोगों पर आरोपित कर रही है और मनोविज्ञान की आधुनिकतम खोजों का इसके लिए प्रयोग कर रही है कि इन वस्तुओं की माया लोगों पर इस हद तक छा जाये कि वे इसके लिए पागल बने रहें।'काशी का अस्सी' उपन्यास में वस्तुओं के प्रति पागलपन को काशीनाथ सिंह इस प्रकार दर्शाते हैं-"ऐसा कि जो तुम्हारे घर जाए या तुम्हें देखे, उसके लार टपकने लगे, उसकी नींद और उसका चैन छिन जाए, तड़प उठे कि वह चीज जो तुम्हारे पास है, उसके पास सुबह नहीं तो शाम तक आ ही जाए। और जब तक न आए तब तक न खाना अच्छा लगे, न पीना, न जीना।"[1]

इस उपभोक्ता समाज में लोग वस्तुओं को देखकर एक प्रकार की भूख से भर जाते हैं। भरे पेट में भी भूख। कई लोगों के लिए तो घूमने की जगह ही बाजार है। उन्हें वस्तुओं के उस पार का कोई संसार दिखाई नहीं देता। वे अंधाधुंध ढंग से बस वस्तुएँ खरीदने में विश्वास करते हैं, भले ही उनका उपयोग हो अथवा न हो। अमेरिकी मल्स संस्कृति ने इस प्रवृत्ति की सौगात दी है। 'पासवर्ड' उपन्यास में कमल कुमार लिखती है-"हमारी अलमारियाँ कपड़ों और चीजों से भरी होती हैं। हम और खरीद कर उनमें रखते जाते हैं। आधे से ज्यादा कपड़े पहनते नहीं, चीजें इस्तेमाल नहीं करते। मन से उतर जाते हैं, क्योंकि नए फैशन से खरीद लिए होते हैं। पुरानों का क्या किया जाए। कई बार लालच में किसी को भी देते भी नहीं और पहनते भी नहीं। मार्केट की ताकत है हम और खरीद लाते हैं, खरीदना एक मजबूरी बन जाता है। कई बार बीमारी भी और कई बार यह थेरेपी होती है।"[2] यह आज के उपभोक्ता समाज की वास्तविकता है, जिसका निरूपण लेखिका ने किया है। चीजों को इकट्ठा करना और उनसे अपने को स्थापित करने की मानसिकता या प्रतिष्ठा से जोड़कर देखने की प्रवृत्ति का चित्रण 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में भी मिसेज अग्रवाल के माध्यम से हुआ है।"मम्मी का यों दिन-रात शॉपिंग में व्यस्त रहना। दिन में तीन-तीन बार साड़ियाँ बदलना, मैचिंग की चूड़ियाँ, मैचिंग की चप्पल। उनके ड्रेसिंग रूम में लाइन लगी हुई अलमारियाँ थीं और उनमें कम से कम एक हजार साड़ियाँ ब्लाउज, पेटीकोट, चूड़ियों के ढेर, चप्पलों की कतारें, मेकअप का सामान... हालांकि लगाती वे केवल हल्की लिपस्टिक और बिंदी ही थी।"[3]

उपभोक्तावादी संस्कृति को पूरी ताकत सूचना क्रांति से मिली है। अखबार, टी.वी., मोबाइल इसके हथियार हैं, जिनके माध्यम से सीधे उपभोक्ताओं को संबोधित किया जाता है,

सम्मोहित किया जाता है। उपभोक्ता सामग्री पैदा करने वाली कंपनियाँ मुफ्त, छूट और इनाम के प्रलोभन रच कर खरीददारों को कभी बरगलाती है, तो कभी भड़कीले विज्ञापनों के द्वारा एक ऐसा मानसिक माहौल तैयार करती हैं कि लोग मॉडलों की सुंदरता और आकर्षण का राज विभिन्न तरह के परिधानों और सौंदर्य प्रसाधनों में देखने लगते हैं। सुंदरता का अर्थ स्वाभाविक सौंदर्य से बदलकर खास-खास कंपनियों के बने परिधानों में सजना या खास तरह के क्रीम पाउडर से पुता होना मान लिया गया है। फैशन, प्रदर्शन, विज्ञापन लोगों के मन मस्तिष्क पर, खासकर युवा पीढ़ी पर ऐसा प्रभाव जमाते हैं कि वह विज्ञापन में देखी वस्तु को पाने के लिए तीव्र लालसा से भर जाता है। 'दस बरस का भँवर' उपन्यास में रविंद्र वर्मा बाजार,विज्ञापन और उपभोक्तावाद की इस संगठन शक्ति के बारे में कहते है- "भौतिकतावादी दृष्टि,उपभोक्तावाद, बाजार, बाजार की ब्रांडेड संस्कृति इन्हें सनकी (क्रेज़ी) बना रही है, बाजार इन्हें भड़काता है।"[4] अन्यत्र वे कहते हैं,"हर लड़के को लिवाइस जींस, सेलफोन, मारुति और उन तीन लड़कियों में से एक लड़की चाहिए जो एक नए ब्रीफ़ के विज्ञापन में समुद्र की लहरों से दौड़ती हुई लड़के की ओर रोज़ टी.वी. के परदे पर आती है।"[5] यह संस्कृति छोटे से छोटे बच्चों को भरमा रही है। मध्यवित्त परिवार भी मारुति और उससे भी बढ़िया बड़ी गाड़ियों की रफ्तार देखकर उन्हें प्राप्त करने का स्वप्न पालते हैं। विदेश की हर चीज को अपने पास देखना चाहते हैं।"यह पिज्जा और डिजाइनर कपड़ों का संसार घरों में टी. वी. का पर्दा उठाकर घुस रहा है। बच्चे, हजारों के कपड़े और जूते माँगते हैं।"[6]

आज के इस उपभोक्तावादी समाज में उपभोक्ता की अभिरुचियों, हितों और जरूरतों से उपभोक्ता वस्तुओं का कोई संबंध नहीं रह गया है। इस सदी के पूर्व तक उत्पादनकर्ता कंपनियाँ उपभोक्ताओं की अभिरुचियों, हितों और जरूरतों की उपेक्षा नहीं कर सकती थीं। उपभोक्ता भी चीजों की उपयोगिता और गुणवत्ता परखते थे। लेकिन आज वस्तुओं के उपभोग की बर्बर होड़ प्रारंभ हो गई है। चीजें अल्पकालिक हो गई हैं। खरीदो, भोगों, इस्तेमाल करो और फेंको की संस्कृति है, जहाँ व्यक्ति के स्थान पर कंपनियाँ उनकी मार्केटिंग और विज्ञापन मिलकर खरीद की प्राथमिकताओं का निर्धारण कर रहे हैं।'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी इस स्थिति का चित्रण इस प्रकार करती है-"अब तो देश के दस करोड़ मोबाइल फोन वाले परेशान हैं कि पचासों मॉडलों में से कौन-सा मोबाइल खरीदें। अभी चंडीगढ़ के एक युवक ने मोबाइल का फैंसी नंबर प्राप्त करने के लिए पन्द्रह लाख रुपये दिए हैं और उसके माँ बाप ने उसकी इस सफलता पर मिठाई बाँटी है। दो करोड़ क्रेडिट कार्ड वाले लोग परेशान हैं कि कौन-सा एयरकंडीशन, कौन-सा कैमरा, कौन-सा वैक्यूम क्लीनर और कौन-सा माइक्रोवेव खरीदें। के.वी. ने एक कोरियन कंपनी की बड़ी गाड़ी खरीद ली है और उसमें बैठकर कभी ऐसा नहीं हुआ कि उन्हें अपने दिल में एक खुशी की लहर महसूस न हुई हो। खासकर जब पास से मारुति जेन या सेंट्रो गाड़ियाँ गुजरती हैं, तो के.वी. अपने को शाबाशी देते हैं कि सिर्फ दो-तीन लाख की कंजूसी करके छोटी गाड़ी खरीद उन्होंने अपने को इस खुशी से वंचित नहीं किया।"[7]

उपभोक्तावाद ने वर्तमान युग में धीरे-धीरे पैसे का, धन का आदमी से ज्यादा महत्व कर दिया है। मानवीय संबंध और संवेदना के सबसे निश्छल कोनों में भी बाजार पहुँच गया है। पैसा अहम हो गया है। पारिवारिक संबंधों को अनदेखा कर बाजार में तब्दील होने वाला मनुष्य पूर्णतः कृत्रिम और यांत्रिक मनोवृत्ति का शिकार हो गया है। सारे रिश्ते-नाते नफा-नुकसान, आर्थिक मुनाफे की तराजू पर तौले जाने लगे हैं। मानवीय मूल्य, प्रेम,

संवेदना, ईमानदारी, नैतिकता आदि सभी अनावश्यक एवं अप्रासंगिक होते दिखाई दे रहे हैं। ऐसी सौदागिरी सभ्यता के लिए 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर लिखते हैं–"जब तक इनसानी सभ्यता का भविष्य सौदागिरी सभ्यता में बदला जा रहा हो, जब मनुष्य के सुकून सपनों और अरमानों को मुनाफे की तिजोरियों में कैद किया जा रहा हो... तब एक बड़ी इनसानी सभ्यता को फरेबी सौदागरों के जाल में फँसाया जा रहा हो, वह वक्त बहुत नाजुक होता है। ऐसे वक्त में सिर्फ बाजार की कद्रें ही नहीं बदलतीं, रिश्तों के मयार और मूल्य भी बदलते हैं... दिलों के एहसास भी बदलते हैं ..."[8] वैश्वीकरण के इस युग में इनसानी रिश्तों को पीछे छोड़कर पैसे की जो सुनामी आई है, उसमें सारे श्रेष्ठ जीवन मूल्य बह गए हैं। 'चाय का दूसरा कप' उपन्यास में ज्ञानप्रकाश विवेक जीवन मूल्यों के क्षरण पर अपना चिंतन इस प्रकार व्यक्त करते हैं–"तब लोग जेब से खाली होते। तब, लोगों के दिल संवेदना से भरे होते। तब बाजार तो था लेकिन वह लश्कारे नहीं मारता था। वह अपना तिलिस्म नहीं फैलाता था। वह ठगता नहीं था।"[9] सबकुछ को प्राप्त करने के लिए नई पीढ़ी बेतहाशा भाग रही है,समय नहीं है उसके पास दो मिनट चैन से बैठने का, अपनों के दु:ख–सुख सुनने का। काशीनाथ सिंह कहते हैं–" डॉक्टर, इंजीनियर, अफसर सब बनना चाहते हैं, आदमी कोई नहीं बनना चाहता।"[10] आदमियत के खत्म होते जाने की पीड़ा को 'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रामुद्गल ने बखूबी चित्रित किया है। दो वृद्धों की कथा के माध्यम से वृद्धावस्था की त्रासद स्थितियों की मार्मिक अभिव्यक्ति करने वाला यह उपन्यास दर्शाता है कि तीव्र औद्योगिक विकास और महानगरीय संस्कृति ने, उपभोक्तावाद और भूमंडलीय अपसंस्कृति ने मनुष्य के सम्मुख लालसाओं का ऐसा अंबार लगा दिया है कि धन का ही महत्व रह गया है, रिश्तो–नातों की सारी ऊष्मा धीरे–धीरे खत्म हो रही है। वृद्ध परिजनों के लिए नई पीढ़ी के पास न तो उनके जीते–जी समय है और ना ही मरणोपरांत अंतिम संस्कार के लिए। जिस तरह से बेटे–बहू इस रस्म को निपटाते हैं, उस पर लेखिका लिखती हैं–"...दोनों अन्य भाई अड़चनों के चलते दाह–संस्कार में सम्मिलित नहीं हो पाएंगे। ट्रेन से समय पर पहुँचना कठिन होगा। हवाई किराया पहुँच के भीतर की बात नहीं है। पहली को कर्नल स्वामी का दाह–संस्कार कर दिया गया। चौथे के लिए रुकने का उनके पास समय नहीं था। फूल चुन कर वापस लौट गए।"[11]

उपभोक्तावाद की मोहिनी ने समाज को अपनी गिरफ्त में इस कदर ले लिया है कि पुरातन मूल्यों की धज्जियाँ उड़ रही है और नए मूल्यों का अधूरा–सा स्वीकार युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित कर रहा है।उसे 'फास्ट फूड' की तरह 'फास्ट सक्सेस' चाहिए। हर नौजवान रातों–रात अंबानी बनने के सपने देखता है। इस फास्ट सक्सेस की चाह ने छल–छद्म, लूट, अपराध, साइबर अपराध आदि को बढ़ावा दिया है। इस "उपभोक्तावादी समाज में हर आदमी किसी को छल रहा है और कहीं खुद भी छला जा रहा है। इस समय 'लूटो नहीं तो लूट लिए जाओगे' का भारी अमानवीय दबाव है।"[12] इस छल युग में एक बड़ा अपराध, लूट का तरीका साइबर क्राइम के रूप में सामनेआ रहा है। गिरिराज किशोर का 'स्वर्ण मृग' उपन्यास साइबर क्राइम की इस दुनिया के भीतर गहराई से प्रवेश कराता है, जो नित्य लगभग सभी कंप्यूटरों और मोबाइलों पर जीती गई किसी लॉटरी की सूचना देते रहते हैं। सामान्य आदमी 'ईजी मनी' के फेर में इनके जाल में फँस जाता है। इसी जाल में 'स्वर्ण मृग' का नायक फँसते हुए दर्शाया गया है, जो लाख मिलियन पाउंड के चक्कर में अपनी पूरे जीवन की कमाई 11–12 लाख रूपया देकर भी वांछित राशि नहीं प्राप्त कर पाता है। उसे मरुस्थल की मृगमरीचिका भटकाती रहती है।'ईजी मनी' की मानसिकता वाले वर्ग के लिए लेखक कहता है–" हमारा

गरीब देश एक विचित्र मानसिकता का शिकार हो रहा है। बिना कुछ किए करोड़पति या अरबपति बनने की लालसा। यह वर्ग इंटरनेट-कामी वर्ग है, जो शिक्षित और आधुनिक सभ्यता का संवाहक होने का दावा करता है।"[13] लेखक ने उपन्यास के माध्यम से साइबर क्राइम के लॉटरी-कांडो की असलियत की पोल खोलने और इस स्वर्ण मृग के सत्य को पाठकों के समक्ष उजागर करने का प्रयास किया है।

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के व्यक्ति की जरूरतें अनंत हो गई है।वह 'खूब कमाओ, खूब खरीदो और खूब उपभोग करो' कि मानसिकता से परिचालित है। इसी के चलते, अगर उसके पास पैसा नहीं है तो ऋण लेकर, उधार लेकर भी वह उपभोग करना चाहता है, मजा लेना चाहता है। आज चार्वाक का जीवन दर्शन 'ऋणं कत्वा घृतं पीवेत'अप्रासंगिक हो गया है। व्यक्ति को मकान खरीदना हो, गाड़ी खरीदनी हो या अन्य कुछ, वह बैंक या ऑफिस से लोन लेता है। क्रेडिट कार्ड तो आज हर किसी का साहूकार है। हमारी पूरी संस्कृति क्रेडिट कार्ड संस्कृति, उधार जीवी संस्कृति बनती चली जा रही है। गिरिराज किशोर 'स्वर्ण मृग' उपन्यास में इस उधार जीवी संस्कृति पर चोट करते हैं। वे कहते हैं-" इस देश का क्रेडिट कार्ड हम लोगों को कल्पतरु की तरह लगता था। जो माँगोगे वह मिलेगा। मकान हो, कार हो, फ्रीज हो... छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी चीज हो, क्रेडिट से माँगो सब हाजिर। सबकुछ क्रेडिट पर, किस्त भरतें रहें, माल मिलता रहेगा। यानी कार्ड को दियाबत्ती दिखाते रहो, बस।"[14] रवींद्र कालिया के उपन्यास '17 रानडे रोड़' का मुख्य पात्र सम्पूरन उपभोक्तावादी संस्कृति में लिप्त नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जो पूर्णत: उधार की संस्कृति में पगा है। वह बिना पैसे के खरीदारी कर सकता है। वह आज खूब खर्च करता है, बिना यह परवाह किये कि कल को 'बिल' कैसे अदा किए जाएँगे।

उपभोक्तावाद ने सबकुछ को उपभोग के दायरे में शामिल कर दिया है। कला, संगीत, साहित्य, धर्म, संस्कृति, संबंध, यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य-सभी उपभोग योग्य वस्तु में परिणत हो गए हैं। व्यक्ति इन सब का सिर्फ उपभोग करना चाहता है और खुशी प्राप्त करना चाहता है, यह खुशी या मजा चाहे फास्ट फूड से मिले या पूजा-कीर्तन से। आये दिन देखने में आ रहा है कि पूजा स्थलों पर होने वाले धार्मिक आयोजनों में भी आध्यात्मिक रीमिक्स, भजन-कीर्तन पर भी लोग ऐसे नाचते हैं जैसे किसी बारात में नाच रहे हो। धर्म भी उपभोग की वस्तु बन गया है। धार्मिक प्रवचन के भव्य आयोजन, भव्य मंदिरों का निर्माण, धर्म-स्थलों का पर्यटन स्थलों में रूपांतरण आदि सभी उपभोक्तावाद के ही चिह्न हैं।'उत्तर बनवास' उपन्यास में अरुण आदित्य ने अध्यात्म, धर्म में आये इस उपभोक्तावाद पर गहरी चोट की है-" लाखों रुपये का पंडाल सजाया जाता है और उससे भी ज्यादा के इस्तिहार दिये जाते हैं। भक्तों को जुटाने के लिए भी एक बड़ा नेटवर्क काम करता है। सबकुछ किसी कारपोरेट गतिविधि की तरह बड़े इन्वेस्टमेंट, इंफ्रास्ट्रक्चर और ह्यूमन रिसोर्स के दम पर चलता है।"[15] प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने स्वामी सत्यानंद के आश्रम के जीवंत चित्र के माध्यम से आश्रमों और डेरों के पंच सितारा होटल-संस्कृति में संलिप्त होने का वास्तविक वर्णन किया है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वर्तमान युग का हर व्यक्ति उपभोक्तावाद के तंत्र में फँस कर हासिल करने की दौड़ में अपना सब कुछ गँवाता जा रहा है। दुनिया से सुख-शांति छिनती चली जा रही है। केवल भोग में सुख खोजने का परिणाम यह हो रहा है कि व्यक्ति अपना सारा समय और ऊर्जा भौतिक सुख के साधनों को एकत्र करने में ही लगा रहा है, वास्तविक आनंद, आत्मिक आनंद, संवेदनाओं, मूल्यों से वह दूर होता जा रहा है। जिसके

भयावह परिणाम भी सामने आ रहे हैं। निरंतर सुख–साधन जुटाने में ही, दौड़ते रहने के कारण सामाजिकता की बजाय वैयक्तिकता बढ़ रही है, और सब कुछ पाने की लालसा पूरी न होने के कारण वह निराशा, अवसाद, तनाव, अकेलेपन आदि का शिकार हो रहा है। अनेक प्रकार के अपराध बढ़ रहे हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में उपभोक्तावादी संस्कृति के विविध रूपों का वास्तविक चित्रण हुआ है तथा उस सब का प्रतिरोध भी उपस्थित किया गया है, जिससे मनुष्य की मनुष्यता किसी ना किसी रूप में क्षीण होती है। सजग उपन्यासकारों ने उपभोक्तावाद की परिणति दिखाकर पाठकों को इसके दुष्परिणामों के प्रति भी सचेत किया है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. काशीनाथ सिंह, 2003, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, पृष्ठ संख्या 142
2. कमल कुमार, 2010, पासवर्ड, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 23
3. प्रभा खेतान, 2009, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 135
4. रविंद्र वर्मा, 2007, दस बरस का भँवर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली –2 पृष्ठ संख्या 77
5. वही, पृष्ठ संख्या 77
6. वही, पृष्ठ संख्या 73
7. अलका सरावगी, 2008, एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–2, पृष्ठ संख्या 113
8. कमलेश्वर, 2010, कितने पाकिस्तान, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 271
9. ज्ञानप्रकाश विवेक, 2010, चाय का दूसरा कप, पृष्ठ संख्या 10
10. काशीनाथ सिंह, 2003, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 151
11. चित्रा मुद्गल, 2004, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2, पृष्ठ संख्या 138
12. शंभूनाथ, 2000 संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 160
13. पुष्पपाल सिंह 2016, 21 वीं सदी का हिंदी उपन्यास–वैश्वीकरण का कालीदह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 395
14. वही, पृष्ठ संख्या 396
15. अरुण आदित्य, 2010, उत्तर बनवास, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ संख्या 123

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ का शताब्दी वर्ष और प्रेमचन्द

• निशा राठौर
••अभिषेक कुमार गुप्ता

सारांश- प्रस्तुत शोधपत्र ''महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ के शताब्दी वर्ष और प्रेमचन्द'' के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया गया है, कि काशी विद्यापीठ और प्रेमचन्द ने असहयोग आन्दोलन में रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा भारत के भावी भविष्य को एक नई दिशा प्रदान की। काशी विद्यापीठ में शिक्षण कार्य के दौरान प्रेमचन्द ने अपने चिन्तन और विचारधारा को धार देने का कार्य किया। जिससे समाज को उनके साहित्य के माध्यम से एक नई दिशा मिली। काशी विद्यापीठ ने हाल ही में अपना शत्वादी वर्ष को पूरा किया है। अतः प्रेमचन्द और विद्यापीठ के विविध आयाम पर चर्चा करना आवश्यक है।

मुख्य शब्द- असहयोग, रचनात्मक कार्यक्रम, राष्ट्रीय शिक्षा, आज, ज्ञानमण्डल, काशी विद्यापीठ

शोधविधि – इस शोधपत्र में मुख्यत: ऐतिहासिक, व्याखात्मक एवं विवेचनात्मक विधि का प्रयोग करने का प्रयास किया गया है।

भारत के असहयोग के दौरान 10 फरवरी 1921 ई. को राष्ट्रीय शिक्षण संस्थान के रूप में काशी विद्यापीठ (वर्तमान में महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ) की स्थापना की गयी। इस शिक्षण संस्थान का शिलान्यास महात्मा गाँधी द्वारा किया गया था। इसी वर्ष महात्मा गाँधी के भाषण से प्रेरित होकर प्रेमचन्द ने गोरखपुर में 14 फरवरी 1921 को स्कूल के इंस्पेक्टर पद से सरकारी नौकरी छोड़ दी, अपने त्यागपत्र को उन्होनें 'रफ्तारे जमाना' कहा है। यह स्पष्ट है, कि काशी विद्यापीठ और प्रेमचन्द दोनों के उद्देश्य समान थे। दोनों ही अंग्रेजी शासन के असहयोगी थे। दोनों का उद्देश्य भारत को परतन्त्रता की बेड़ी से मुक्त करना था। दोनों ही 'रफ्तारे जमाना' से प्रेरित थे। प्रेमचन्द को स्वदेशी, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, राष्ट्रभाषा, खादी, चर्खा आदि में विश्वास था। संयोग से काशी विद्यापीठ की स्थापना भी इन्हीं सब कारणों से प्रेरित था।[2]

त्यागपत्र देने के चार माह बाद कानपुर स्थित मारबाड़ी विद्यालय के प्रधानाध्यापक हो गये। हालांकि विद्यालय के प्रबन्धक से कुछ अनबन हो गयी और 22 फरवरी 1922 को त्यागपत्र देकर काशी में आ गये।[3] प्रेस और प्रकाशन के चक्कर में घूमते हुए प्रेमचन्द ज्ञानमण्डल पहुँचे। वहाँ पर वह शिवप्रसाद गुप्त के सम्पर्क में आए। शिवप्रसाद गुप्त उस समय काशी की बड़ी हस्ती थे। उनका घर 'सेवा उपवन' राष्ट्रीय विचारों का केन्द्र था। सभी प्रकार के राष्ट्रीय तत्व आपसे प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहायता पाते थे। शिवप्रसाद गुप्त जी ने कई संस्था का निर्माण किया था। जिनमें आज, ज्ञानमण्डल और काशी विद्यापीठ था। ये प्रकृति में मूलत: एक दूसरे के पूरक थे। प्रेमचन्द आज और ज्ञानमण्डल में सेवा प्रदान करने लगे। यहाँ पर शिवप्रसाद गुप्त ने उन्हें हर तरह की सहायता प्रदान की। परन्तु कुछ कारणों से 'आज और ज्ञानमण्डल' से उन्हें अलग होना पड़ा। जिसके कारण उनके लिए विद्यापीठ में नियुक्ति का प्रबन्ध किया गया। परन्तु प्रेमचन्द पुन: अध्यापक नही बनना चाहते थे। वे मूलत: साहित्यकार थे। फिर भी वे विद्यापीठ गए। प्रेमचन्द को कुमार

• शोध परामर्शिका (एसोसियेट प्रोफेसर) आगरा कॉलेज आगरा
•• शोद्यार्थी डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा

विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। विद्यापीठ का कुमार विद्यालय उस समय भदैनी में स्थित था। प्रेमचन्द कबीरचौरा में रहते थे।[4]

प्रेमचन्द ज्ञानमण्डल और विद्यापीठ में नौकरी की दृष्टि से नहीं आए थे। मनुष्य प्राय: तीन चीज चाहता है – 1. विचार के अनुरूप साथ 2. जीवन निर्वाह के लिए कार्य 3. अपनी रूचि और विकास के अनुरूप कार्य, कही भी कार्य कीजिए, परन्तु बन्धन और स्वतन्त्रता की एक सीमा होती। प्रतिभाशाली स्वचेता व्यक्ति स्वतन्त्र रहना चाहता है। प्रेमचन्द में भी यही स्थिति एवं अवस्था दिखायी पड़ती है। उन्होनें 14 जुलाई 1922 को विद्यापीठ में कार्यभार ग्रहण कर लिया। वहाँ पर किसी के हस्तक्षेप न होने के कारण उन्हें काम करने तथा आराम में विघ्न नही पड़ता था। एक ही साल के अन्दर विद्यापीठ की महत्ता राष्ट्रीय शिक्षण केन्द्र के रूप में बढ़ गयी। जिससे इसमें कार्य करने वाले अपने को धन्य समझने लगे। यद्यपि विद्यापीठ के पास बड़ी ईमारतें नहीं थीं। परन्तु उसका महत्व उसके निर्माण के उद्देश्यों, विचारधारा, कार्यप्रणाली और उसके योग्य अध्यापकों तथा छात्रों के कारण था। प्रेमचन्द इन सब से जुड़कर खुश थे।[5] आपको डॉ. भगवानदास, शिवप्रसाद गुप्त, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द तथा श्रीप्रकाश आदि जैसे विराट व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के साथ कार्य करने का अवसर मिला। इन साथियों के अतिरिक्त लाल बहादुर शास्त्री, त्रिभुवन नरायन सिंह, कमलापति त्रिपाठी, राजाराम शास्त्री, चन्द्रशेखर आजाद आदि छात्र उन्हें अध्यापन के लिए मिले। अपने अध्यापकों के समान छात्र भी राष्ट्रीय प्रेरणा से स्फुरित थे। काशी विद्यापीठ भारत के भावी नवनिर्माण के लिए अग्रसर था। काशी विद्यापीठ में उस समय देश के राष्ट्रीय स्तर के नेता का आगमन होता है, जिससे काशी में राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरणा, दिशा और गति मिलती थी।[6] काशी विद्यापीठ का वातावरण राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण था। काशी विद्यापीठ की विचारधारा और प्रेमचन्द का चिन्तन एक था। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में जिस वातावरण को सहजता से उठाया है तथा उन्होनें जहाँ से साहित्य की विषयवस्तु को ग्रहण किया है। वही से चिन्तन और विचार भी लिया था। उनका मुख्य क्षेत्र हिन्दी प्रदेश था। इन्हीं क्षेत्रों में भारतीय पुर्नजागरण से लेकर गाँधी और समाजवाद के प्रभावी आन्दोलन हुए। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में सहजता से इसका निरूपण किया है। यही कारण है, कि आज भी हिन्दी क्षेत्र के आन्दोलन में प्रेमचन्द की भाषा और सामाजिक–राजनीतिक चित्रणों का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। तब की राजनीतिक संकुचित नहीं थी। जिसके कारण साहित्य भी सीमित नहीं था। दोनों जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करते थे। काशी विद्यापीठ के छात्र तथा अध्यापक राजनीति के साथ ही साहित्य, संस्कृति, पत्रकारिता, विचारधारा और दर्शन का भी नेतृत्व करते थे। ऐसी ही बात प्रेमचन्द में परिलक्षित होती है। आप पत्रकार, लेखक और राजनीतिक चिन्तन के साहित्यकार थे। आपने ग्रामीण तथा शहरी परिवेश का जिस तरह चित्रण किया है। उससे उनकी क्रान्ति दोनों वर्गों द्वारा पूर्ण होती है। परिवर्तन की जरूरत दोनों वर्गो को है, क्योंकि दोनों ही उपनिवेशी विचारधारा से शोषित थे। प्रेमचन्द शोषण और अन्याय को खत्म करना चाहते थे। इसके लिए वे सभी वर्गों और समूहों से सहयोग चाहते थे। उन्हें किसी से घृणा नहीं थी, अपितु वे शोषण और अन्याय से घृणा करते थे। भारत की राजनीतिक चेतना के निर्माण में विद्यापीठ की महती भूमिका है। यहाँ पर दक्षिण के प्रदेश तथा दूसरे अहिन्दी क्षेत्र से भी छात्र शिक्षा ग्रहण करने आये। जिससे विद्यापीठ का राष्ट्रीय चिन्तन भारत के सुदूर प्रदेशों में भी फैला। प्रेमचन्द का साहित्य भी हिन्दी क्षेत्र को

लाँघ गया। उसने भारत के सभी क्षेत्र की जनता में चेतना का प्रसार किया।

प्रेमचन्द का स्वभाव अर्न्तमुखी था। वे अपनी कल्पना या चिन्तन की दुनिया में खोये रहते थे। अधिक मिलना-जुलना तथा बहस उन्हें पसन्द न था। वे राजनीतिज्ञों के सामान्य व्यक्तित्व से अलग लेखक प्रवृत्ति के थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी और प्रेमचन्द के छात्र श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखते है, "वे जब स्कूल में आते थे, तो अंग्रेजी उपन्यास लाते थे। खाली समय में उनका अध्ययन करते थे। वह पढ़ते थे, फिर सोचते जाते थे। वह अपने कथानक के स्वपन में इस प्रकार डूबे रहते थे, कि उन्हें अकस्मात् देखने पर कोई अफीमची या स्वपनद्रष्टा समझ सकता था"।[7]

डॉ. सम्पूर्णानन्द जी के जेल में बन्द होने के कारण प्रेमचन्द जी ने "मर्यादा" का सम्मादन किया। मर्यादा में सम्पादक- श्रीयतु सम्पूर्णानन्द (जेल में) स्थानापन्न सम्पादक- श्रीयतु प्रेमचन्द के नाम से पत्रिका का सम्पादन हुआ। यह पत्रिका ज्ञानमण्डल से प्रकाशित होती थी। जिसमें सभी प्रकार के लेखों के अतिरिक्त साहित्य की विविध विद्याओं का प्रकाशन होता था।[8] प्रेमचन्द ने हंस पत्रिका के प्रथम सम्पादकीय में लिखा- "हंस भी मानसरोवर की शान्ति छोड़कर, अपनी नन्ही-सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए हुए समुद्र पाटने आजादी की जंग में योगदान देने चला"।[9]

प्रेमचन्द गुलामी और गरीबी दोनों से मुक्ति चाहते थे। विद्यापीठ के दूसरे व्यक्तियों के समान जेल नहीं गये। किन्तु उनकी पत्नी जेल गयी। शायद ही काशी विद्यापीठ के किसी अध्यापक की पत्नी जेल गयी हो। काशी विद्यापीठ के संकल्पपत्र में लिखा है - कभी भी किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं ली जायेगी। उसी तरह प्रेमचन्द ने भी सरकारी उपाधि "राय साहब" लेने से इन्कार कर दिया। दोनों को सरकार की नहीं जनता की उपाधि एवं सहयोग चाहिए।[10]

निष्कर्ष - वस्तुतः यह कहा जा सकता है, कि विद्यापीठ के वातावरण ने प्रेमचन्द के विचार और चिन्तन को समृद्ध किया। प्रेमचन्द समग्र रूप से अपने लेखक लगते है। उन्होनें ऐसे साहित्य की रचना की है, जिसको लेकर हम विश्व के समक्ष उपस्थित हो सकते है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक जीवन को अपने लेखन के माध्यम से यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर जनता को प्रेरित किया। काशी में साहित्य और साहित्यकारों की लम्बी परम्परा है। प्रेमचन्द उसी परम्परा के उज्जवल नक्षत्र है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. URL: http://www. m.g.k.v.p.ac.in दिनांक 10.02.2021
2. डा. युगेश्वर, 1982, प्रेमचन्द विविध आयाम, प्रकाशक काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
3. दैनिक जागरण, 3 फरवरी 2021 ई. संस्करण, वाराणसी।
4. डॉ. युगेश्वर, 1982, प्रेमचन्द विविध अयाम, प्रकाशक काशी विद्यापीठ वाराणसी।
5. वही
6. तिवारी रमेश चन्द्र, कृष्णनाथ सम्पादक, 1983 ई., काशी विद्यापीठ हीरक जयन्ती ग्रन्थ, प्रकाशक काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
7. गुप्त मन्मथनाथ, कलम का मजदूर प्रेमचन्द।
8. दैनिक जागरण, 3 फरवरी 2021 संस्करण वाराणसी।
9. प्रेमचन्द, हंस, 1930
10. बच्चन सिंह, डॉ. वशिष्ठ नारायण, बनारस के यशस्वी पत्रकार, 2011 ई., विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

दुष्चिंता, तनाव व विषाद को दूर करने में श्रीमद्भागवद्गीता की भूमिका

• सुरभि मिश्र

सारांश- विश्वपटल पर भारतीय धर्मग्रन्थ श्रीमद्भागवद्गीता का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो 'सार्वभौमिक सत्य' के सिद्धान्त पर आधारित है। पूर्वी व पश्चिमी दोनों संस्कृतियों में गीता को समान सम्मान प्राप्त है। जे. पी. बलोथी (1984) के अध्ययनानुसार, गीता के समान कोई त्याग, दया, धर्म, व्रत, तीर्थ व आत्मसंयम नहीं है। अतः गीता के परम उपदेश समस्त मानव जाति हेतु अनुपालनेय है।

मुख्य शब्द- तनाव, दुष्चिंता, तनाव, विषाद

प्रस्तावना- मूलतः महान ग्रन्थ श्रीमद्भागवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण व उनके शिष्य अर्जुन के मध्य संवाद पर आधारित है जो हस्तिनापुर राज्य पर आधिपत्य हेतु कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध के समय घटित हुआ। युद्धक्षेत्र में अर्जुन अपने कर्तव्य-पथ से विमुख होकर, जीवन के कठिनतम् दौर से गुजर रहे होते हैं, धीरे-धीरे वे विषादयुक्त होने लगते हैं। शोकयुक्त मनःस्थिति, वातावरणीय तनाव तथा मानसिक छन्दों के परिणामस्वरुप वे दमनात्मक प्रवृत्ति व अर्जित निरसाध्यता की ओर बढ़ते हैं। ऐसे समय में मानवता के रक्षक भगवान श्रीकृष्ण के मानसिक उपचारात्मक उपदेशों जो 18 अध्यायों तथा 700 श्लोकों में समाहित है, से लाभान्वित होकर अर्जुन ज्ञानोदय व मुक्तिमार्ग पर अग्रसारित होते हैं।

आज के वैज्ञानिक व तकनीकी युग में मनुष्य अनेक महत्वाकांक्षाओं के साथ जीवन निर्वाह करता है, उसे दैनिक जीवन के कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु अनुकूल व विपरीत दोनों तरह की परिस्थितियों में समायोजन करना होता है वो चाहे घर हो, ऑफिस हो, फैक्ट्री हो, सरकारी दफ्तर या कोई भी ऐसा स्थान जहाँ समान उद्देश्यों हेतु लोग उपस्थित होते हैं, हर जगह उपयुक्त प्रबन्धन आवश्यक होता है। उक्त समस्याओं के परिणामस्वरूप मानसिक विकृति, शंकाएँ, चिन्ता, विषाद, तनाव व अलगाव जैसी गम्भीर समस्याओं का जन्म होता है।

अनेक देश-विदेश में किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि भगवाद्गीता के उपचारात्मक पहलुओं के सहयोग से जीवन के चिन्ताओं व तनाव को दूर कर मन को नियंत्रित कर पाना सम्भव है। भागवद्गीता के अध्याय 6, श्लोक सं. 35 में कहा गया है,

"असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।"

अर्थात, "निःसंदेह मन चंचल व कठिनता से वश में होने वाला है परन्तु अभ्यास व वैराग्य से मन को वश में या नियंत्रित किया जा सकता है।

रामचन्द्र राव तथा गोस्वामी (1983) ने भी अध्ययनोपरान्त यह सिद्ध किया है कि भागवद्गीता 'इमोशनल इंटेलिजेन्स' (सांवेगिक बुद्धि) के विभिन्न घटकों को भी उजागर करता है। श्रीमद्भागवद्गीता के 18 अध्याय तीन मुख्य योग में विभाजित किये गये हैं। योग, मन व शरीर में तनाव, कमजोरी, दुष्चिन्ता व विरुचि को दूर कर कर्म-पथ की ओर उन्मुख करता है।

• एसोसिएट प्रोफेसर (मनोविज्ञान) जुहारी देवी गर्ल्स पी. जी. कालेज कानपुर

अध्याय (1-6) कर्म योग

1. अर्जुन विषाद योग
2. सांख्य योग
3. कर्म योग
4. ज्ञान कर्म सन्यास योग
5. कर्म वैराग्य योग
6. आत्मसंयम योग

बी.जी. तिलक के अनुसार, कर्मयोग क्रिया की प्रधानता पर बल देता है। जब मनुष्य उपयुक्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह नि:स्वार्थ कर्म पथ पर अग्रसर होता है। गीता के अध्याय 3 श्लोक सं. 19 में भी भगवान ने कहा है, "आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।"

अध्याय (7-12) भक्ति योग

7. ज्ञान-विज्ञान योग
8. अक्षर ब्रह्म योग
9. राज विद्याराज गुह्य योग
10. विभूति योग
11. विश्वरूप दर्शन योग
12. भक्ति योग

भक्ति योग के अन्तर्गत 'पराभक्ति' आती है जिसमें मुक्ति को छोड़कर कोई अन्य अभिलाषा नहीं होती। डी. वर्मा (2016) तथा प्रभुपदा (2015) के अनुसार, भक्ति योग या मुक्ति मार्ग साधक के अन्तर्मन में प्रेम व सेवाभाव जाग्रत करता है। ईश्वर या परमशक्ति के प्रति त्याग, विश्वास, प्रेम व अनन्त विश्वास से साधक को परम-ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अध्याय (13-18) ज्ञान योग

13. क्षेत्र - क्षेत्रविभाग योग
14. गुणत्रय विभाग योग
15. पुरुषोत्तम योग
16. दैवासुर सम्पद्विभाग योग
17. श्रद्धात्रय विभाग योग
18. मोक्ष सन्यास योग

विवेकानन्द के अनुसार, ज्ञानयोग के अन्तर्गत सबसे पहले निषेधात्मक रूप से उन सभी वस्तुओं से ध्यान हटाना है, जो वास्तविक नहीं है, फिर उस पर ध्यान लगाना है जो हमारा वास्तविक स्वरूप है - अर्थात् सत् चित् एवं आनन्द। गीता के अनुसार, मानव अज्ञानवश बन्धन की अवस्था में पड़ जाता है। अज्ञान का अन्त ज्ञान से होता है इसलिए गीता में मोक्ष पाने के लिए ज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

गीता के मुख्य उपदेश योग है इसलिए गीता को योगशास्त्र कहा जाता है जिस प्रकार मन के तीन अंग हैं दृ ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। इसलिए इन तीनों अंगों के अनुरूप गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग व कर्मयोग का समन्वय हुआ है।

भागवद्गीता - मनोवैज्ञानिक उपचारात्मक प्रणाली के रूप मे -

एस. दास. (2015) के अध्ययनानुसार, गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन को एक क्लाइन्ट के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो मुख्यत: लक्ष्योन्मुखी द्वन्द्व सांसारिक आनन्द में ब्रिकचि तथा रिश्तेदारों व मित्रों को खो देने के भय से ग्रसित है। इसलिए इस अवसाद योग या अर्जुन-विषाद योग कहा गया है।

द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण को एक थेरेपिस्ट के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो

अर्जुन को अवसाद से बाहर जाने के लिए निर्देशित करते है तथा संभ्रान्तियों को दूर करते है। वे मन की नकारात्मकता को दूर करके धर्म के अनुसार आचरण व उचित कर्म करने हेतु एक प्रेरक की भूमिका निभाते हैं।

तृतीय अध्याय से अर्जुन का उपचारात्मक सत्र प्रारम्भ होता है जहाँ भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को मोह त्याग कर कर्म करने हेतु निर्देशित करते हैं उनकी "कॉग्निटिव रीस्ट्रक्चरिंग" करते हैं। कॉर्ल रोजर्स (1997) के अनुसार, मोह एवं आसक्ति त्यागने व विषाद कम करने हेतु 'आत्म ज्ञान' परम आवश्यक है।

अन्य अध्यायों में अर्जुन को स्वयं को परमशक्ति के प्रति समर्पित करके परिणाम की चिन्ता किये बिना कर्म करने को कहा गया है। साधारण मनुष्यों की समस्या यहीं से प्रारम्भ होती है, व्यक्ति इसी कारण दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में दुश्चिन्ता, अवसाद व तनाव का भागी बनता है। बी. बाजपेयी (2014) के अध्ययनानुसार यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि यदि व्यक्ति अपनी सारी चिन्ता, इच्छाएँ एवं अहम् को परमशक्ति को समर्पित करके स्वयं को वर्तमान परिस्थिति एवं कर्म पर केन्द्रित करे तो वह मन व शरीर दोनों को नियंत्रित कर जीवन जी सकता है।

धीरे-धीरे जब मनुष्य 'ज्ञान योग' में प्रवेश कर लेता है तो उसे कर्मशक्ति का ज्ञान हो जाता है, विचारों में सम्पन्नता आ जाती है, सत्य का ज्ञान हो जाता है तथा मनुष्य स्वयं के सारे सुख, दःख, आनन्द व क्षति से ऊपर उठकर ईश्वरीय गुणों में समाहित हो जाता है। प्रभुपदा (2016) तथा जेस्टे (2008) ने इसे मोक्ष की अवस्था या आत्म-स्वतंत्रता की अवस्था कहा है।

अतः श्रीमद्भागवद्गीता में अनके मनोवैज्ञानिक पहलू समाहित है। भाटिया (2013), होल्मस (2012), कालरा व उनके सहयोगी (2012) तथा मैस्करो (2003) के अध्ययनानुसार, विगत वर्षों में अनेक मनोउपचारात्मक प्रविधियाँ तथा तनाव-नियंत्रण कौशलों को विकसित किया जा चुका हैं भागवद्गीता के ज्ञान को भी एक उपचारात्मक प्रविधि के रूप में प्रयोग किये जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत प्रपत्र में भागवद्गीता में समाहित महत्वपूर्ण पहलुओं को बताने की कोशिश की गई है, जिसके व्यापक उपयोग से दिन-प्रतिदिन की समस्याओं, तनाव, दुश्चिन्ता व विषाद को दूर किया जा सकता है तथा एक तनावमुक्त जीवन की कल्पना साकार की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. कार्ल रोजर्स (1977), सी. कॉर्ल रोजर्स ऑन पर्सनल पॉवर (गूगल स्कॉलर)
2. कालरा, एस. एवं सहयोगी (2012), पेसेन्ट सेन्टर्ड केयस एण्ड थेरेपटिक पेसेन्ट एजुकेशन वैदिक इन्सिपरेशन, जनरल ऑफ मिड लाइफ हेल्थ 3(2), 59
3. जेस्टे डी. वी. (2008)य 'कम्पैरिजन ऑफ द कान्सेप्चुलाइजेशन ऑफ विजडम इन एन्सिएन्ट इण्डियन लिटरेचर विद मॉर्डन व्यूज' फोकस ऑन भागवद्गीता साइकाइट्री, 71 : 197-202
4. तिलक, बी. (2017), गीता रहस्यय न्यू दिल्ली : डायमण्ड पॉकेट बुक्स, इण्डिया
5. दास, एस. (2015), श्रीमद्भागवद्गीताय साधक संजीवनीय गोरखपुर, गीताप्रेस इण्डिया।
6. प्रभुपदा (2016), कृष्ण, द रिजर्वायर ऑफ प्लेजरय मुम्बई, द भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, इण्डिया।
7. भागवद्गीता, गोरखपुर प्रेस
8. भाटिया, एस. सी. (2013), भागवद्गीता एण्ड कन्टेम्पररी साइकोथेरेपीज, इण्डियन जनरल ऑफ साइकाइट्री, 55 (6), 315
9. मैस्करो, जे. (2003), अध्याय 1-18, द भागवद्गीता, पेन्गूइन, 1962, पुनः मुद्रित 3-86
10. रामचन्द्र राव एस. के. (1983), द कॉन्सेप्शन ऑफ स्ट्रेस इन इण्डियन थॉट (द प्रैक्टिकल इनवाल्वमेंट इन गीता एण्ड आयुर्वेद), निमहन्स जे., (1) 123 द्व 31 (गूगल स्कॉलर)
11. होल्मस, आर. एल. (2012), नॉन वायलेन्स इन थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस, वेवलेण्ड प्रेस
12. बाजपेयी, बी. (2014), गीता एण्ड श्रीकृष्ण, न्यू दिल्ली, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, इण्डिया।

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

हिन्दी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्रों की राजनीति में भूमिका

• उर्मिला शुक्ल
•• मधुलता बारा
••• मल्लिका मिश्र

सारांश- जिस प्रकार धर्म संस्कारों में विद्यमान रहता है, उसी प्रकार राजनीति कर्त्तव्यों में विद्यमान रहती है। नारी-पात्र अपने को राजनीति से दूर नहीं कर सकती हैं। कभी-कभी वे राजनीति में शिकार होती हैं, तो कभी वे राष्ट्र को मुक्त कराने हेतु हथियार उठा लेती हैं। भारतीय इतिहास में ऐसे नारी-पात्रों की कमी नहीं है, जिन्होंने देश की राजनीति बदल दी हो। हिंदी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों की नायिकाएँ चौला, अंबपाली, रानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, मृगनयनी, निपुणिका, भट्टिनी, महामाया ये सभी सफल राजनीतिज्ञ रही हैं। इन नारी-पात्रों का अध्ययन करते हुए पाठकगण को नारी की असीम साहस, चातुर्य तथा ज्ञान का परिचय मिलता है, जिसके कारण वह नारी के विविध रूपों से परिचित होता है और उसका सम्मान करता है। स्वराज्य हेतु देशोद्धार हेतु पुरुषों को उनके कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करने वाली नानी ही तो है, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पुरुषों को राजनैतिक रूप से जागृत करती है।

मुख्य शब्द- धर्म, संस्कार, कर्त्तव्य, साहस, चातुर्य

प्रस्तावना- राजनीतिक तत्व भी नारी के संघटन के लिए आवश्यक है, क्योंकि समाज को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार धर्म हमारे संस्कारों में विद्यमान रहता है, उसी प्रकार राजनीति हमारे कर्त्तव्यों में विद्यमान रहती है। नारी अपने को राजनीति से दूर नहीं कर सकती है। कभी–कभी वह राजनीति की शिकार होती है, कभी वह देश को मुक्त कराने के लिए हथियार उठाती है। भारतीय इतिहास में ऐसी नारी–पात्रों की कमी नहीं है, जिन्होंने देश की राजनीति बदल दी हो। रानी लक्ष्मी बाई, रानी दुर्गावती, मृगनयनी, ये सभी सफल राजनीतिज्ञ रही हैं। ये ऐतिहासिक पात्र वर्तमान में नारियों की प्रेरणा–स्रोत हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास 'सोमनाथ' में चौला क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कन्या है। वह मरु–कच्छ के शासक दद्दा चौलुक्य की राजनंदिनी एवं नृत्यकला में पारंगत अद्वितीय सुंदरी है। गजनी का सुल्तान अमीर महमूद उस पर मुग्ध हो जाता है। चौला को प्राप्त करने के लिए वह अपनी पूरी तैयारी के साथ प्रभासपट्टनम पर आक्रमण कर देता है। कुमार भीमदेव प्रभासपट्टनम की रक्षा करते हुए अत्यंत घायल एवं मूर्च्छित हो जाता है। घायलावस्था में भीमदेव को खंभात की खाड़ी ले जाया जाता है, जहाँ पहले से ही चौला विद्यमान रहती है। अमीर महमूद वहाँ भी चौला को प्राप्त करने के उद्देश्य से आक्रमण कर देता है। चौला खंभात में दुर्ग की रक्षा का भार स्वयं को देने के लिए भीमदेव से विनती करते हुए कहती है– "महराज इस तलवार की आपको आन है, दुर्ग मुझे दीजिये। मैंने कहा– मेरे चरणों में जैसा नृत्य–कौशल है, हाथों में वैसा ही युद्ध–कौशल भी है। महराज वह कौशल देखें।"

• निर्देशक, सहा. प्राध्यापक शासकीय जे. योगानंदम स्नातकोत्तर छत्तीसगढ़ स्वशासीमहाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
•• सह-निर्देशक,सहा. प्राध्यापक साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर
••• शोधार्थी, साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़)

घायल एवं मूर्च्छित भीमदेव को सेनापति एवं सैनिकों की निगरानी में गुप्त मार्ग से सुरक्षित आबू के लिए भेजकर वह मार्ग को बंद कर देती है। चौला, शोभना के साथ हाथ में तलवार लेकर गर्भ-गृह की रक्षा हेतु तैयार हो जाती है। शोभना, चौला का वेश धारण करके अमीर महमूद को चकमा देने में कामयाब हो जाती है। चौला बनी शोभना अमीर महमूद के साथ गजनी के लिए प्रस्थान करती है, ताकि महमूद चौला के लिए और खून की नदियाँ न बहाए। महमूद का प्रधान और गौड़ दोनों लक्ष्य पूर्ण हो चुका था, उसकी समझ से उसे प्राणों से प्रिय चौला रानी की प्राप्ति हो चुकी थी। अत: वह वापस अपने देश शोभना को लेकर चला जाता है।

इधर गुजरात के अधीश्वर के रूप में भीमदेव राज्यासीन हुए। भीमदेव जब चौला को राजसी ठाठ-बाट से राजगढ़ लाने का आदेश देते हैं, तब राज्य-परिवार, मंत्रीगण, सेठ-साहूकार और अन्य वरिष्ठ जन देवी चौला को गुजरात की महारानी बनाकर राजगढ़ लाने का विरोध करते हैं। चौला के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। चौला गुजरात को गृह-क्लेश से बचाने व भीमदेव की राज-मर्यादा को रखने के लिए वह अपने प्रेम का बलिदान देते हुए पुन: देव-नर्तकी बन जाती है। इस तरह चौला अंत में भीमदेव के रूप में सशक्त राजा गुजरात को प्रदान करती है।

'वैशाली की नगर-वधु' में अंबपाली वैशाली की सर्वाधिक सुंदरी होने के कारण कानून के अनुसार जबर्दस्ती नगर-वधु बना दी जाती है। अपने इस अपमान का बदला वह अपने वाग्दत्ता पति हर्षदेव को लेने को कहती है, लेकिन वह असमर्थ हो जाता है। अंबपाली के जीवन में द्वितीय पुरुष मगध नरेश बिंबिसार आता है। बिंबिसार अंबपाली को प्राप्त करने के लिए अपना राज्य उस पर न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं। बिंबिसार को अपना शरीर सौंपने से पूर्व अंबपाली सम्राट को दो शर्त पूर्ण करने को कहती है- प्रथम यह कि बिंबिसार और अंबपाली का औरस-पुत्र ही मगध का भावी सम्राट होगा, द्वितीय जिस लिच्छवी गणतंत्र ने उसे बलपूर्वक नगर-वधु बनाया, उसे जलाकर भस्म करना।

अंबपाली को दिए वचन (शर्त) को पूर्ण करने के लिए मगध सम्राट वैशाली पर आक्रमण कर देते हैं। अंबपाली के कारण समस्त देश में भूचाल आ जाता है। शत्रु राज्य की नारी के चरणों में शक्तिशाली मगध राज्य विसर्जित हो गया। "लाखों नर-संहार के पश्चात् मगध की विजय, पराजय में परिणित हो गई - नारी के कारण, महान सम्राट बिंबिसार बंदी बनाया गया - नारी के कारण, फिर उसकी प्राणों की रक्षा भी हुई - नारी के कारण। कौशल का राज्य अपदस्थ हुआ - नारी के कारण, और इतना ही क्यों समस्त सत्ता का अपहरण हुआ - नारी के कारण, उनकी धर्म-सत्ता को भी छिन्न-भिन्न होना पड़ा - नारी के कारण और नारी के इंगितों से आलोकित तत्कालीन उत्तरी भारत का मनोमुग्धकारी चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।"

'झाँसी की रानी' उपन्यास में झाँसी राज्य पर कुप्रबंध और ऋण का इतना बोझ बढ़ गया था कि झाँसी राज्य को कोर्ट कर लिया गया। झाँसी का शासन अंग्रेजों के हाथों में था, सिर्फ नगर का शासन गंगाधर राव के हाथ में था। विवाह के उपरांत झाँसी पर अधिकार उनको इस शर्त पर मिला, कि झाँसी में अंग्रेजों की फौज रखी जाएगी और फौज का पूरा खर्च झाँसी राज्य को उठाना पड़ेगा। गंगाधर राव ने शर्त निभाने के लिए झाँसी राज्य के दो लाख सत्ताईस हजार चार सौ अठावन रुपए वार्षिक आय का इलाका अंग्रेजों को सौंप दिया। 1842 ई. में जब लक्ष्मीबाई का विवाह गंगाधर राव के साथ हुआ, तब रानी ने धीरे-धीरे प्रशासकीय कार्यों की ओर ध्यान देना शुरु किया। अंग्रेजों की शासन-नीति उसे जरा भी पसंद नहीं आई। 1853 में गंगाधर राव की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने झाँसी पर कब्जा कर लिया एवं रानी को साठ हजार

वार्षिक पेंशन देने का वचन देकर झाँसी के किले पर अधिकार कर लिया।

रानी बाहर महल में रहते हुए अपने विश्वासपात्र मित्रों के माध्यम से सैन्य- संगठन में लग जाती है। रानी के सिपाही पूरे देश में घूम-घूम कर दूसरे राज्यों से सहायता एवं युद्ध में सहयोग की अपील करते हैं। रानी ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध-नीति के तहत सभी को 31 मई 1858 तक अपने गुस्से को दबाकर रखने की सलाह दी, लेकिन 6 मई को असमय ही क्रांति की बिगुल बज गई। अंग्रेजों ने सभी जगहों पर विद्रोह को दबाकर झाँसी पर आक्रमण कर दिया। रानी और उसके वीर सिपाहियों ने अंग्रेजों का डटकर सामना किया, लेकिन पीर अली और दुल्हाजू राव की गद्दारी के कारण रानी के हाथ से झाँसी का किला निकल गया। रानी ग्वालियर पहुँची और अंतिम बार 18 जून 1858 को अंग्रेजी सेना से टक्कर ली। युद्ध में घायल रानी ने बाबा गंगाराम की कुटिया में अंतिम साँस ली।

रानी दुर्गावती राजनीतिशास्त्र एवं राज-कार्यों में दक्ष थी, उतनी ही वह शस्त्र-विधा में दक्ष थी। वह कुशाग्र बुद्धि की थी। अपने पिता कीर्तिसिंह के साथ बैठकर राजकीय समस्याओं पर बातें किया करती थी। विवाहोपरांत रानी दुर्गावती राज-कार्य में अपने पति दलपति शाह का सहयोग करती है। राजकीय समस्याओं पर उन्हें सलाह भी देती है, जैसे- सेना की आवास-प्रवास योजना, घुड़सवारों के लिए घोड़े का चुनाव, खजाने की रोकड़ की जाँच, राज्य के सीमाावर्ती क्षेत्रों की स्थिति का पता लगाना आदि।

दलपतिशाह की असमायिक मृत्यु से रानी वीर नारायण सिंह की संरक्षिका के रूप में शासन की बागडोर अपने हाथों में लेती है। वह अत्यंत सक्रियता के साथ प्रशासनिक कार्यों को करना प्रारंभ करती है। साहस, योग्यता एवं अपनी दूरदर्शिता से प्रशासन की जटिल समस्याओं एवं राज-कार्यों को बड़ी कुशलता से सँभालती है। शासन-सुविधा को ध्यान में रखकर वह अपनी राजधानी सिंगौरगढ़ से चौरागढ़ बनाती है। मियाना अफगानों को युद्ध में परास्त करती है। मालवा के शासक बाजबहादुर को युद्ध में परास्त करती है और उसका चाचा फतेह खाँ रानी के हाथों मारा जाता है। भारत सम्राट अकबर की निगाह गोंड़वाना राज्य पर पड़ती है, वह आसफ खाँ के नेतृत्व में गोड़वाना पर आक्रमण कर देता है। रानी दुर्गावती बड़ी बहादुरी से अकबर की सेना का सामना करती है, लेकिन राज्य के गद्दार सुघ्घर सिंह के द्वारा गोड़वाना के गुप्त मार्गों की जानकारी शत्रुओं को बताने के कारण वह परास्त होती जाती है। युद्ध के मैदान में कनपटी एवं गरदन पर तीर लगने से घायल हो जाती है। युद्ध में पराजय निश्चित जानकर वह अपने हाथों से अपने सीने पर कटार घोंपकर अपना प्राणांत कर लेती है। रानी ने सात से आठ वर्ष बड़ी कुशलता से राज्य का शासन-व्यवस्था सँभाला था।

वृंदावन लाल वर्मा ने अपने उपन्यास 'मृगनयनी' में पंद्रहवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी के काल को इतिहास का काला काल कहा है। उत्तर में सिकंदर लोदी व उनके साथी के परस्पर युद्ध, राजस्थान में राणा कुंभा का अपने ही पुत्र के हाथों मारा जाना व वहाँ की अराजकता, गुजरात में महमूद बघर्रा का रक्तपात, मालवा में गयासुद्दीन व उसके उत्तराधिकारी नसीरुद्दीन का अत्याचार और अय्याशीप्रियता, दक्षिण में विजय नगर और बह्मनी सल्तनत का टुकड़ों में बँटना और इन सबसे घिरा हुआ ग्वालियर राज्य पर सिकंदर लोदी द्वारा पाँच बार आक्रमण, लेकिन हर बार खाली हाथों वापस लौटना।

मृगनयनी गरीब परिवार की अत्यंत सौंदर्यवती कन्या है। वह साहसी, निर्भीक एवं पराक्रमी होने के साथ-साथ बड़ों के प्रति सम्मान व मर्यादा का भाव उसके स्वभाव में है। विवाहोपरांत ग्वालियर की रानी मृगनयनी राजा मानसिंह को सदैव उसके कर्त्तव्यों के प्रति

सचेत करती रहती है। मृगनयनी से ही प्रेरणा पाकर मानसिकह अपने सैनिकों को प्रशिक्षित कर सेना में वृद्धि करते हैं। सिकंदर लोदी जब ग्वालियार पर आक्रमण करने अपनी विशाल सेना के साथ आगे बढ़ता है, तब एक बार मानसिंह सोचता है कि उसे सोना-चाँदी देकर टाल दिया जाए। मृगनयनी, राजा मानसिंह को सिकंदर लोदी का सामना करने को प्रोत्साहित करती है और स्वयं रनिवास की सुरक्षा की जिम्मेदारी ले लेती है।

अपने पुत्रों के बड़े होने पर वह ग्वालियर के उत्तराधिकार के प्रश्न पर बड़ी रानी के पुत्र विक्रमादित्य को उत्तराधिकारी बनाने एवं अपने पुत्रों को बड़े भाई की आज्ञा पालन करने को पत्र लिखकर राजा को देती है और उस पत्र की एक प्रति रानी सुमन मोहिनी को भिजवा देती है। इस तरह मृगनयनी भविष्य में भी ग्वालियर को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करती है। प्रत्यक्ष तौर पर वह राजनीति के क्षेत्र में योगदान नहीं देती है, लेकिन वह राजा मानसिंह को राष्ट्र के प्रति, उसके कर्त्तव्यों के प्रति ज्ञान कराकर, सेना को सुदृढ़ बनाने में सहयोग करके अप्रत्यक्ष रूप से अपना महत्पूर्ण योगदान देती है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' के नारी-पात्र निपुणिका, भट्टिनी और महामाया राजनीति की शिकार कन्याएँ हैं, जो अपने साहस से विषम परिस्थितियों का सामना करती हैं। कभी-कभी वे अवसादों में घिर जाती है, लेकिन अपने उच्च मनोबल से वे उन अवसादों से बाहर भी आ जाती हैं। "मध्यकालीन सामंतशाही, उसकी हीनता, उसके पाप, उसकी छाँव में पलती हुई नागरिक सभ्यता की निर्वीर्यता, राजमहलों के अंदर गह्वर में बंदी तड़पता हुआ नारीत्व, आश्रय पाता हुआ क्रूर विलासी समुदाय, मिथ्या-दर्प, ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ पर ठहरा हुआ धर्म पांडित्य तथा मानव-मूल्यों को गलत ढंग से आँकने वाली पनपती हुई दृष्टियाँ ये सभी बाणभट्ट की आत्मकथा के परिवेश में जीवंतता से उभरे हैं।"

निपुणिका को राजनीति की अच्छी जानकारी है, तभी तो जब महाराज हर्षदेव अपने सभा पंडित के रूप में बाणभट्ट को नियुक्ति-पत्र देते हैं, तब निपुणिका नियुक्ति-पत्र को देखकर बाणभट्ट की खूब भर्त्सना करती है। महामाया जब राष्ट्र पर संकट के बादल घुमड़ते देखती है, तो वह अपनी ओजस्वी वाणी से समूचे जनावर्त की विचारधारा को ही विद्रोह की ओर पलट देती है। जो प्रजा अभी तक राष्ट्र की रक्षा के लिए राजा, महाराजा और उसकी सेना की ओर देखती थी, वह स्वयं राष्ट्र की रक्षा के लिए तैयार हो जाती है।

इस तरह महामाया के ओजस्वी राष्ट्र-प्रेम के स्वरों ने पूरी राजनीति ही पलट दी थी। वह युद्ध के द्वारा दस्युओं को मार भगाना चाहती थी, वहीं दूसरी ओर भट्टिनी दस्युओं का ह्रदय-परिवत्रन करके आर्यावर्त में आने वाली विपत्ति को सदा के लिए टालना चाहती है, क्योंकि अगर युद्ध को सदा के लिए टाला जा सकता है, तो वह सिर्फ ह्रदय- परिवर्तित करके।

'दिव्या' उपन्यास की नायिका दिव्या सागल नगर के धर्मस्थ की प्रपौत्री है, जो नृत्यकला, संगीतकला में कुशल अद्वितीय सुंदरी है। महाश्रेष्ठी प्रेस्थ का पुत्र पृथुसेन और दिव्या एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और विवाह करना चाहते हैं, लेकिन अति-महात्वाकांक्षी प्रेस्थ अपने पुत्र का विवाह गणपति मिथोद्रस की पौत्री सीरो से कराकर महाकुलीन व समाज में आदर का पात्र बनना चाहता है, अत: वह पृथुसेन को समझाता है कि "तुम मद्र के गणपति का विश्वासपात्र बनकर सामंत पद का अधिकार पाकर अपने द्रव्य से मद्र की रक्षा के लिए एक पृथक सेना रख सकते हो। वह सेना तुम्हारी शक्ति होगी। तुम मद्र गणराज्य का स्वरूप बदल सके हो। मैं तुम्हें परम भट्टारक मद्र के गणपति के आसन पर देखना चाहता हूँ। मद्र के छत्रपति राजा के आसन पर देखना चाहता हूँ। यदि मगध में शूद्र मौर्य वंश का राज्य स्थापित हो

सकता है, तो मद्र में प्रेस्थ वंश का राज्य क्यों नहीं स्थापित हो सकता।"

पिता के तर्कपूर्ण बातों को मानकर पृथुसेन दिव्या की उपेक्षा कर गणपति की पौत्री सीरो से विवाह कर, उत्तराधिकारीहीन गणपति की सारी संपत्ति, वंश का सम्मान और कुल गणराज्य में सेनापति का पद प्राप्त करता है। पृथुसेन दास कुल में जन्म पाने के कलंक से मुक्त होकर मद्र का सबसे अधिक समृद्ध और सम्मानित सामंत बन जाता है। एक समय ऐसा भी था, जब पृथुसेन का दास-पुत्र होने के कारण आभिजात्य व कुलीनवंशीय द्वारा अपमान किया जाता था। अगर वह दिव्या से विवाह करता तो संपूर्ण द्विज-समाज को अपना शत्रु बना लेता, परंतु सीरो से विवाह करके वह सामर्थ्यवान बनकर कुलीन वर्गों के मध्य सम्मान का पात्र बन जाता है। सीरो से विवाह के बाद कुल गणराज्य की सत्ता उसके हाथों में आ जाता है।

यशपाल ने 'अमिता' में बौद्धकालीन भारत की पृष्ठभूमि का वर्णन किया है। कलिंग के महाराजा करवेल की मृत्यु के उपरांत एकवर्षीय बालिका अमिता को युवराज्ञी घोषित किया जाता है। पाँच वर्ष उपरांत जब सम्राट अशोक विशाल सेना लेकर कलिंग पर आक्रमण करता है, तब महारानी नंदा की अनुपस्थिति में छह वर्षीय अमिता को साम्राज्ञी घोषित किया जाता है। अशोक के साथ युद्ध में कलिंग की पराजय होती है और अशोक के सैनिक कलिंग के नागरिकों पर अत्याचार करते हैं, उसे देखकर अमिता अशोक को बाँधने जंजीर लेकर आगे बढ़ती है। साम्राज्ञी अमिता के साहस, शौर्य और वीरता भरी बातों को सुनकर चण्ड, निर्दयी व क्रूर विश्व-विजेता सम्राट का हृदय परिवर्तित हो जाता है। वह कलिंग की महारानी के समक्ष स्वीकार करता है कि वह किसी से छिनेगा नहीं, किसी को डरायेगा नहीं, किसी को मारेगा नहीं। अब अशोक हिंसा और युद्ध से विजय की कामना नहीं करेगा। वह कलिंग की विजयी महारानी की भाँति निश्चल प्रेम से संसार के हृदयों का विजय करेगा। इस तरह छः वर्षीय नन्हीं बालिका की बातों से अशोक अपने विश्व-विजय अभियान को रोक देता है। मासूम अमिता भारत के इतिहास की राजनीति को बदल कर रख देती है।

हिंदी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों के नारी-पात्रों का अध्ययन करने पर पाठकगण को नारी के असीम साहस, चातुर्य तथा ज्ञान का परिचय मिलता है, जिसके कारण वह नारी के विविध रूपों से परिचित होता है और उनका सम्मान करता है। स्वराज्य हेतु, देशोद्धार हेतु पुरुषों को उनके कर्त्तव्यों के प्रति सचेत करने वाली नारी ही तो है, जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पुरुषों को राजनीतिक रूप से जागृत करती है। अतः नारी ही वह शक्ति है, जो पुरुषों को राजनीतिक रूप से जागृत कर देश की शासन व्यवस्था में सुधार लाती है। वर्तमान में तो नारियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से कंधे-से-कंधा मिलाकर चल रही है। नारियों का संबंध न सिर्फ परिवार, समाज व धर्म के क्षेत्र से होता है, अपितु वे राजनीति के क्षेत्र में भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय भूमिका निभाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. बाणभट्ट की आत्मकथा. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1971.
2. भारद्वाज, विद्याभूषण. आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण. मेरठ : प्रकाशन प्रतिष्ठान, प्रथम संस्करण.
3. यशपाल. अमिता. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2010.
4. यशपाल. दिव्या. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, संस्करण, 1977.
5. वर्मा, वृंदावन लाल. झाँसी की रानी. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, संशोधित संस्करण, 2011.
6. वर्मा, वृंदावन लाल. मृगनयनी. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, संस्करण, 2004.

7. वर्मा, वृंदावन लाल. रानी दुर्गावती. झाँसी : मयूर प्रकाशन, आठवाँ संस्करण, 1973.
8. शास्त्री, आचार्य चतुरसेन. वैशाली की नगरवधु. मेरठ : हिंद पॉकेट बुक्स, प्रथम संस्करण, 1948.
9. शास्त्री, चतुरसेन. सोमनाथ. मेरठ : हिंद पॉकेट बुक्स, संस्करण 2013.

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा कवि

•शैलेन्द्र कुमार ठाकुर
••कृष्णा चटर्जी
••• गिरिजा साह

सारांश- छत्तीसगढ़ के समकालीन कवियों में युवा कवियों का काव्य जन मानस को चेताने वाला काव्य है। वास्तव में कविता लोक चेतना को चेताने का सबसे बड़ा हथियार होती है। बाल्मीकि से लेकर कालिदास, कबीर, तुलसी, मुक्तिबोध, धूमिल जैसे उन तमाम कवियों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए काव्य सृजन किया। आज के भौतिक एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में समाज के चिंतनीय धारा में बहुतायत बदलाव आया है। छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा रचनाकारों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ ही साथ सामाजिक, राजनैतिक एवं जनमानस की लोक चेतना को जगाते हुए अपने नैतिक मूल्यों को बरकरार रखा है। इनकी रचनायें छत्तीसगढ़ की ही नहीं यह हिन्दी साहित्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। युवा कवियों के हृदय में प्रेम के साथ ही समाज के नवनिर्माण की एक झलक दिखाई देती है जो साहित्य धर्म के लिए उपयुक्त एवं उपयोगी है।

मुख्य शब्द- जन मानस, लोक चेतना, मूल्यों की स्थापना, काव्य सृजन

प्रस्तावना- स्वतंत्रता के पश्चात साहित्य सृजन में नये आयाम विकसित हुए, उन्हें विभिन्न दशकों में विभिन्न नामों से अभिहीत किया गया। प्रयोगवाद और उसकी परवर्ती काव्य परम्पराएँ लगातार सृजन के लिए जमीन तलाशती रही। व्यक्तिवादी चेतना और विदेशी प्रभावों के कारण प्रारंभ में काव्य प्रवृत्तियों को पाठकों का समर्थन अपेक्षाकृत कम मिला। यही कारण है कि कविता प्रयोगधर्मी रही। प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता और इनसे जुड़े अनेक वादों ने अपनी पहचान बनाने का प्रयास किया। स्वातंत्रयोत्तर राजनीतिक परदृश्य में व्यक्तिवाद से जनवाद की ओर कवियों का मुड़ना नये काव्य दौर की सबसे बड़ी उपलब्धि रही। कविता की सही पहचान सातवें दशक में बनने लगी। नयी कविता को नया आयाम देने वाले प्रमुख कवि थे रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, शमशेर और मुक्तिबोध। इन कवियों ने जनता की मनोवृत्तियों को कविता के दायरे में यथावत प्रस्तुत किया, उसी भाषा और उसी चेतना के साथ। इसी समय एक नया नाम समीक्षकों की ओर से उभरा 'समकालीनता'। वास्तव में समकालीनता का सतही अर्थ है 'अपने समय काश।

कविता मूलत: युग संदर्भों की देन होती है । उसमें अतीत और भविष्य के चित्रण युग संदर्भ से जुड़कर ही आते हैं। इसलिए यह कहना उचित होगा कि प्रत्येक रचना समकालीन होती है। डॉ. भगवान सिंह लिखते हैं कि – "समकालीनता कालगत समवर्तित या समसामयिकता का पर्याय नहीं है, किसी कालखण्ड में लिखी गयी कविताएँ समकालीन भी हो यह जरूरी नहीं है।"[1]

समकालीन हिन्दी कविता नाम से ही स्पष्ट है, ऐसी कविता जो आज भी मौजूद है अर्थात जो समसामयिक है। अधिकांश विद्वान 1960 के बाद की कविताओं को समकालीन कविता का प्रारंभ मानते है क्योंकि वस्तु, भाव और कलापक्ष तीनों ही दृष्टियों से इस समय

•शोध निर्देशक डॉ. खूबचंद बघेल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय भिलाई-3 जिला -दुर्ग (छ.ग.)
••शोध सह निर्देशक शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर महाविद्यालय दुर्ग
•••शोध छात्रा

की कविताएँ पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न थी। वैसे देखा जाए तो समकालीन कविता की तलाश नयी कविता से ही प्रारंभ होती है जो नवें दशक के कवियों और आज के कवियों में भी देखी जा सकती है। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि समकालीन कविता मानवीय संवेदना और नये काव्य शिल्प की कविता है।

छत्तीसगढ़ के समकालीन हिन्दी कवियों में प्रमुख रूप से अपनी पहचान बनाने वाले कवियों में प्रभात त्रिपाठी, विनोद कुमार शुक्ल, एकांत श्रीवास्तव, शरद कोकाश, जयप्रकाश मानस, बसंत त्रिपाठी, नासिर अहमद सिकंदर, रवि श्रीवास्तव, कमलेश्वर साहू, अशोक सिंघई इत्यादि हैं। इन कवियों ने मानवीय संवेदना महत्वकांक्षा, जीजीविशा, कुण्ठा इत्यादि को केन्द्र में रखकर कविताओं की रचना की है। कुछ कवियों ने स्त्री विमर्श को अपने काव्य के केन्द्र में रखा। इस तरह देखा जाए तो कवियों का मूल उद्देश्य जीवन मूल्यों की स्थापना रहा है।

प्रभात त्रिपाठी समकालीन हिंदी कविता के प्रमुख कवि हैं। इन्होंने पिछली पीढ़ी के लेखन से स्वयं को अलगाते हुए नयी पीढ़ी की नयी समझ के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कविताएँ लिखी हैं। आज की इस विषम परिस्थिति में जब मनुष्य संकीर्णता और अकेलेपन से जूझ रहा है ऐसे में कविता ही है जो मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने में सक्षम रहे। प्रभात त्रिपाठी की कविताएँ जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों से हमारा साक्षात्कार कराकर हमें जीवन जीने की राह दिखाती है। उनकी रचना "अंतिम की राह" में कवि ने जीवन के अंतिम पड़ाव की बेतरतीबी और खामोशी को चित्रित करते हुए लिखा है "व्यक्ति याददास्त के धुन खाते बक्से को खंगालता है कि कोई आत्मीय रंग, कोई चित्र, कोई सुख शायद कुछ दिखे। वह रात के तीसरे पहर के विवश जागरण में कोई अशुभ वारदात की कामना भी कर लेता है ताकि बार-बार भिक्षुक मुद्रा में हाथ पसारे रहने की नियति से मुक्ति तो मिले। मुक्ति की यह तड़प विरल है।"[2] इस तरह हम देखते हैं कि कवि ने जीवन के अंतिम पड़ाव का बड़ा ही सुंदर, सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। इस समय मुक्ति की उत्कंठा, विवशता, प्यार एवं सम्मान की चाहत व्यक्ति रखता है उसे न पाकर वह बेचैन हो उठता है -

"कुछ भी सूझता नहीं करने को
बेनींद रात के तीसरे पहर के अरूण एकान्त में
लगभग भागता ही रहता है दिमाग
झुंझलाते सन्नाटे में देखता अपना अतीत।"

इस तरह कवि एक तरफ झुंझलाते सन्नाटे में अपने अतीत को देखता है तो दूसरी ओर अतीत से भागते हुए स्वयं को या समय को। यहाँ हमें कविता के अनेक स्तर दिखाई पड़ते हैं। उनकी अगली कविता "मध्यरात की बेचैनी" में कवि ने अकेलेपन को रेखांकित किया है। इसी 'तरह इस लालची समय में' नामक कविता में कवि ने जीवन जीने की इच्छा, समस्या एवं अस्मिता की खोज पर टिप्पणी की है -

"झूठ का रंग उतना ही सफेद है
जितना तुम्हारी साफ धुली कमीज
और अब
उसे तुम्हारा बच्चा पहन रहा है।"

कविता में कवि का आक्रोश दिखलाई पड़ता है। वह अपनी जमीन और माटी की ओर लौटने की गुहार करता है। जड़ों की ओर लौटने का गुहार मर्भान्तक है -

"आओ आओ मेरे अनुयायी समाज के असली राजनेता
तुम्हारी असलियत के तहखाने में सुरक्षित अंधेरे के भीतर
तुम्हारे निजी प्रेम कविता में घुस रहा है समय
बोलो उनके स्वागत में सलाम बजाओगे या उसके साथ जोर आजमाओगे?

ऐसा प्रतीत होता है यह धिक्कार कवि ने स्वयं को और राजनीति से राजनीति को दिया है। यहाँ व्यंग्यात्मकता का चित्रण करते हुए कवि आतुर हो उठता है। 'बड़बड़ाना' एवं 'आखरी वक्त' इनकी अन्य रचनाएँ हैं। इन कविताओं में उपेक्षित, दलित, शोषित और स्त्रियों की समस्याओं पर लेखक ने चिंता जाहिर की है। प्रभात त्रिपाठी की कविताएँ अमानुशीकरण की प्रक्रिया में सर्जनात्मक हस्तक्षेप दर्ज करती है। मनुष्य के विवके को जागृत कर उन्हें मनुष्यता का पाठ पढ़ाती है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रभात त्रिपाठी की कविताएँ बनावटीपन से जीवन यथार्थ के करीब है।

इसी तरह छत्तीसगढ़ के प्रमुख कवियों में 'विनोद कुमार शुक्ल' का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने बड़बोलापन एवं अलंकारिता से दूर अपनी कविताओं की रचना की है। उनकी कविताएँ सहज, सरल और जीवन के करीब हैं। उनके विषय में श्रीरंग जी ने लिखा है कि – "विनोद कुमार शुक्ल देखा–देखी लीपापोती करने वाले संकीर्तनिया कवि नहीं है वह अपनी लीक स्वयं बनाने अपनी भाषा गढ़ते हैं और अलग तकनीकी शैली ईजाद करते हैं जो दुर्लभ है। इनकी कविताओं में कई–कई परते हैं जो बार–बार पढ़ने पर उधड़ती चली जाती है। लेकिन धैर्य और लगात की मांग करती है। ये ऐसी सपाट कविता नहीं है कि कविता होकर भी कविता का गाम्भीर्य न रखै।"[3]

कविता समयबद्ध नहीं होती। कविता में कवि एक समय से दूसरे समय (कालखण्ड) में आ जा सकते हैं अपने विचारों के माध्यम से। यही दूरदर्शिता कवि में खरापन लाता है। विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ अपने समय के साथ ही भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभाश भी देती है। 'सब कुछ होना' कविता में जब कवि अपने घर में अन्न की चिंता करते हैं तो अनायास ही पूरी पृथ्वी में अन्न की चिंता से उसकी सोच जुड़ती है जो भविष्य की चिंता है। विनोद कुमार शुक्ल किसी आध्यात्मिक असमंजस में पड़े कवि नहीं हैं, पर अपनी स्थिति की विडम्बना की जो पहचान उनमें है और जिसे वे बिना चूक अपनी कविता का मूलाधार बनाते रहे हैं उसके रहते वे अब यह देख पाते हैं कि व्यक्त नहीं होता घटित। विनोद कुमार शुक्ल की कविता को पढ़ते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कविताएँ अधिक गहरी अर्थवत्ता रखती है। अवधारणाओं को समझने के लिए धैर्य आवश्यक है। आज के समय में हमें विनोद कुमार शुक्ल की कविता के अलावा और कौन जताता है कि जहाँ हम रहते हैं, वहीं तिलिस्म है। व्यक्ति में व्यक्तित्व को बचाये रखने की सभी सम्भावनाएँ विनोद कुमार शुक्ल की कविता में दृष्टिगोचर होता है।

"एक विशाल चट्टान के ऊपर
एक चट्टान इस तरह रखी हुई है
कि अभी गिरने को है
कि इस अभी गिरने को है चट्टान की छाया में
अभी एक चरवाहा आकर खड़ा हो गया है।"[4]

आज के समय में जब मनुष्य प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं ऐसे समय में विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ हमें प्रकृति की ओर लौटने के लिए बाध्य करती है। 'जो मेरे घर कभी नहीं आयेंगे' नामक कविता में वे लिखते हैं –

"जो मेरे घर कभी नहीं आएँगे।
मैं उनसे मिलने
उनके पास चला जाऊँगा।
एक उफनती नदी कभी नहीं आयेगी मेरे घर
नदी जैसे लोगों से मिलने
नदी किनारे जाऊँगा।
कुछ तैरूंगा और डूब जाऊँगा।[5]

कवि स्मृति व चिंतन शक्ति के साथ कल्पना का सहारा लेता है व यथार्थ और यथार्थेत्तर यात्रा की ओर ले जाता है। भौतिक जगत के सारे परिवर्तन पहले मनोजगत से ही होकर गुजरता है। छत्तीसगढ़ के कवियों ने जिस तरह से मानव मनोजगत का चित्रण अपनी कविताओं में किया है इससे स्पष्ट है कि इनकी कविताएँ मानव जगत और उसके परे जो भी घटित हो रहा है उसका दिग्दर्शन हमें कराती है।

आज राजतंत्र नहीं है लोकतंत्र है। लेकिन क्या वास्तव में आज हमारे समाज में वही लोकतंत्रात्मक व्यवस्था है जिसकी कल्पना राष्ट्र निर्माताओं की थी? हकीकत यह है कि लोकतंत्रात्मक व्यवस्था एक कल्पना बनकर रह गयी है। समाज और राजनीति में नौकरशाही और दलाली हावी है। कवि इसे देख क्षुब्ध होते है और लिखते हैं –

"राजमहल के गलियारे
रोशन रहते हैं
सत्ता के बिचौलियों से
ऐसे में
सत्ता लोगों तक
पहुँचे भी तो कैसे।"[6]

समकालीन कवियों की चिंतनधारा को देखा जाय तो अधिकाधिक कवियों ने समाज के निचले पायदान पर खड़े आम आदमी की चिंता की है। उनके अभ्युत्थान के लिए काव्यात्मक चेतना का प्रसार भी कवियों का मुख्य ध्येय रहा है। वास्तव में कवि वही होता है जो अपनी कविता को जनमानस के चेताने या जगाने के उद्देश्य से लिखता है। इस विचारधारा को बरकरार रखते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेम प्रीति की भी बाते की हैं। अल्पना त्रिपाठी ने लिखा है कि – राधा अब प्रेम नहीं करती

राधा के बाल मन में उठा एक भाव प्रेम का
ना स्पर्श की चाह थी न थी वस्ल की अधीरता
बढ़ जाता धड़कनों का धड़कना
उसे देखने, देख लेने मात्र से
एक टक आकाश में देखता मन
उसका एक चित्र सा बनता
वही चित्र बैठ जाता मन में
बातें करती रहती मन ही मन उससे
देखना तो तीस दिनों में एक आध बार ही होता
बसा था आँखों में तीसों दिन
उसकी आँखों में अब बेकरारी नहीं
अब करार हो ऐसा भी नहीं
अंदर की दुनिया बीराने का बसेरा
सपनों के देवता कर गए कूच।[7]

छत्तीसगढ़ के युवा कवियों की पांत में खड़ी अल्पना त्रिपाठी अपनी लेखनी के द्वारा नयी उम्मीद की रोशनी समाज में फैला रही है। इन्होंने मिट्टी नामक कविता में जो विचार दिए हैं वह नये समाज को सोचने के लिए एक आधार दिया है –

जिस मिट्टी में जन्म लेती
पलती बढ़ती सनती गढ़ती
उसी से विदा हो जाती
जिस मिट्टी को पहचानती नहीं

उसी में खाक होने की दुआ ले।[8]

समकालीन कवियों ने अपने काव्य द्वारा अपने आस-पास के वातावरण को प्रभावित करते हुए सौंपे हुए समाज को जगाने-चेताने का काम किया है।

निष्कर्ष - छत्तीसगढ़ के समकालीन कवियों में युवा कवियों का काव्य जन मानस को चेताने वाला काव्य है। वास्तव में कविता लोक चेतना को चेताने का सबसे बड़ा हथियार होती है। बाल्मीकि से लेकर कालिदास, कबीर, तुलसी, मुक्तिबोध, धूमिल जैसे उन तमाम कवियों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए काव्य सृजन किया। आज के भौतिक एवं भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में समाज के चिंतनीय धारा में बहुतायत बदलाव आया है। छत्तीसगढ़ के समकालीन युवा रचनाकारों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ ही साथ सामाजिक, राजनैतिक एवं जनमानस की लोक चेतना को जगाते हुए अपने नैतिक मूल्यों को बरकरार रखा है। इनकी रचनायें छत्तीसगढ़ की ही नहीं यह हिन्दी साहित्य के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। युवा कवियों के हृदय में प्रेम के साथ ही समाज के नवनिर्माण की एक झलक दिखाई देती है जो साहित्य धर्मा के लिए उपयुक्त एवं उपयोगी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह भगवान, पहल 37 पृष्ठ 31
2. श्री रंग, छत्तीसगढ़ के कवि, विभा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 11
3. श्री रंग, छत्तीसगढ़ के कवि, विभा प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 19
4. वही पृष्ठ क्र. 24
5. सिंघई अशोक, कविता छत्तीसगढ़, प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान रायपुर (छ.ग.) पृ. 4
6. श्री रंग, छत्तीसगढ़ के कवि विभा प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 81
7. अल्पना त्रिपाठी - फेसबुक से
8. वही - फेस बुक से

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

साहित्य के उपकरण

•मधुकर राठोड

सारांश- मनुष्य द्वारा साध्य भाषा को अदभूत निर्मित कहा जा सकता है होठ तालू कंठस्नायु कंठ में निहित स्वरयंत्र के सहयोग ध्वनि निर्मित सभी प्राणी किया करते है। परंतु मनुष्य ने मुख्येंद्रिय के उपयुक्त घटकों के सहयोग से, स्वरों के विशिष्ट आरोह -अवरोह उत्पन कर विशिष्ट स्वरों और ध्वनियों की निर्मिती की और विशिष्ट अर्थ से उन्हें सपन्न कर दिया। इस प्रकार मानव ने ही अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखकर शब्द और भाषा की निर्मिती की। इस आवश्यकता का नाम ही नाम संदेश-प्रक्षेपण रहा है। अपने एहसास को दूसरे तक पहुंचाने के लिए उसने भाषा के रूप में एक अमूर्त चिन्ह व्यवस्था का निर्माण किया। कहते है कि लगभग चालीस लाख वर्ष पूर्व मनुष्य चार पैरों के स्थान पर दो पैरों का प्राणी बन गया। तब से लगभग बीस लाख वर्ष प्राणिशास्त्रीय आवश्यकता के अनुसार उसकी बुध्दि में भाषा का एक केंद्र धीरे-धीरे विकसित होते गया। लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व विश्व के सभी मानव समूह की भाषाए विकसित होने लगी और दस हजार वर्ष पूर्व संदेश प्रक्षेपन के साधन के रूप में भाषा का प्रयोग आरंभ हुआ। उसके बाद भिन्न-भिन्न लिपियों का निर्माण हुआ। भाषा के विकास के साथ मनुष्य की आंतरिक विचार शक्ति भी विकसित होती गयी। भाषा के आधार पर समाज का नियंत्रण होता गया और इसी बिंदु पर एक विशिष्ट समाज की पहचान का माध्यम भाषा बनी। भाषा के आधार पर आगे चलकर साहित्य, विज्ञान आदि का भी विकास होता गया। सामान्य भाषा में प्रतीकों-बिंबों का प्रतिभा या कल्पना के संस्पर्धा से प्रयोग शुरू हुआ। रूपांतरण की यह प्रकिया ही भाषा को साहित्यिक भाषा स्तर प्रदान करती रही है। अंतः साहित्य के इन उपकरणों से भी क्रमशः परिचित होना अध्येता के लिए आवश्यक है।

मुख्य शब्द- तालू, कंठस्नायू, प्रक्षेपन, नियंत्रण, संस्पर्धा, संदेश-प्रक्षेपण

शाब्दिक दृष्टि से बिंब का अर्थ है– प्रतिमा, आकृति, रूप या चित्र। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य जब इंद्रियों के माध्यम से स्थूल जगत की विभिन्न वस्तुओं के संपर्क में आता है, तो उनका प्रतिबिंब या चित्र उसके मन पर अंकित हो जाता है। यही प्रतिबिंब आवश्यकता पड़ने पर हमारी वासना, संस्कार, स्मृति या भावना इत्यादि को जागृत करने का कार्य करता है। संचित अनुभूतियों के रूप में ये बिंब हमारे अवचेतन मन में हमेशा विद्यमान रहते है, पर आवश्यकतानुरूप स्मृति व कल्पना के सहयोग से पुनः हमारे चेतन–मन के स्तर पर बिंबित होकर हमें भिन्न–भिन्न प्रकार के बोध प्रदान करते है। कवि या कलाकार इन्हीं बिंबों को अपनी रचना में प्रस्तुत करता है तथा इन्हें देखकर या पढ़कर दर्शक या पाठक विषय बोध प्राप्त करते है। स्पष्ट हुआ कि बिंब ऐंद्रिय अनुभूति का प्रतिबिंब है, क्योंकि अनुभूति का विषय बनकर अभिव्यक्ति की स्थिति में विशेष अर्थवत्ता प्राप्त करता है।

लेक्सि ने बिंब कि परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है–काव्यात्मक बिंब शब्दों के माध्यम से निर्मित एक ऐसा चित्र है, जिसका किसी न किसी प्रकार के ऐंद्रिय गुण से संपर्क हो। डॉ.नगेंद्र के अनुसार–काव्य बिंब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक मानस छबि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा होती है।

बिंब का स्वरूप- काव्य बिंब को समझने के लिए उसके लक्षणों को समझ लेना चाहिए। काव्य बिंब का पहला लक्षण है–चित्रात्मकता। जिस प्रकार चित्र में वस्तु का

•सहयोगी प्राध्यापक हिन्दी, प्रो. रामकृष्ण मोरे महाविदयालय आकुर्डी पुणे 44

प्रतिबिंब होता है, उसी प्रकार बिंब में भी उसका ऐसा प्रतिबिंब होता है, जो पाठक के मन में उस वस्तु की अनुभूति जगा सके। दूसरा लक्षण है–शब्द रूपात्मकता। अर्थात काव्य में बिंब चित्र की भाँति रंग रेखाओं में नहीं, अपितु शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत होता है। तीसरा लक्षण है–ऐंद्रियता। अर्थात वह चित्र केवल स्थूल वस्तु का ही प्रतिबिंब न हो, बल्कि उसका संबंध ऐंद्रिय बोध से हो या उसमें हमारी इंद्रियों को प्रभावित करने की क्षमता हो। चौथा लक्षण है–भावोंत्पादकता यानी काव्य बिंब में भावोंत्पादन का सामर्थ्य हो। पाँचवें लक्षण के अनुसार उसमें आरोपन का अभाव हो अर्थात वह अलंकारों की तरह मूल वस्तु पर बाहर से आरोपित न हो। उसका वस्तु से सीधा संबंध हो, वरना बिंब और अलंकार में कोई अंतर नहीं रहेगा।

काव्य–बिंब के अनेक भेद दर्शाए गए हैं। फलस्वरूप इसमें अतिव्यापकता ही आ गई है अर्थात काव्य की प्रत्येक वस्तु बिंब में ही समा सकती है। हमारे समझने की बात सिर्फ यह है कि क्या बिंब चाक्षुश अनुभूति से संबंध है या अन्य इंद्रियों के भी? पश्चिम के प्राय:अनेक विद्ववानों ने बिंब का संबंध ऐंद्रिय अनुभूति से माना है। वे बिंब को वस्तुरूप मानते हैं। यह परस्पर विरोधी विचार है। गुलाब के फूल का बिंब हमारे मन पर उभर सकता है, पर उसकी गंध का चित्र कैसे संभव है? गायिका की प्रतिमा हमारे मन पर अंकित हो सकती है, पर उसकी स्वर –माधुरी का प्रभाव –बिंब मानस चित्र कैसे अंकित हो सकता है? वास्तव में जहाँ चाक्षुश अनुभूतियाँ बिंब रूप में चित्रित होती है, वहाँ घ्राणेंद्रियों एवं श्रवणेंद्रियों के माध्यम से प्राप्त सूक्ष्म एवं अगोचर गुणों की अनुभूतियाँ संस्कार रूप में मन में विद्यमान होती है। स्पष्ट है कि गंध एवं ध्वनि का बिंब नहीं, संस्कार मात्र अंकित होता है। क्योंकि इनका बिंब या चित्र संभव ही नहीं। अत: गंध या ध्वनि के बिंब की कल्पना करना भाषा के साथ खिलवाड़ करना है। यदि बिंब के अंतर्गत हमें सभी प्रकार कि अनुभूतियों को स्वीकार करना है, तो बिंब की परिभाषा से चित्र, मूर्त रूप, प्रतिबिंब इत्यादि शब्दों को निकाल देना होगा। वास्तव में बिंब केवल चाक्षुश होता है। बिंब के भी कुछ भेद किए गये है। यथा सरल–बिंब, तात्कालिक–बिंब, विश्रृखलित–बिंब, प्रतिमाशून्य–बिंब, रूपकात्मक बिंब, अलंकारिक बिंब, प्रतीकात्मक–बिंब ये भेद न केवल अनावश्यक है, बल्कि उसके मूल स्वरूप के भी प्रतिकूल है। बिंबों को रूपकों और अलंकारों से संबंध करके भी अलंकारादि की सीमा का उल्लंघन कर उनके पार्थक्य को मिटा देना है। बिना प्रतिमा या मूर्त विधान के बिंब का विधान ही नहीं हो सकता तो इस स्थिति में प्रतिमाशून्य बिंब की कल्पना कैसे स्वीकार की जा सकती है?

1. बिंब और अलंकार - कुछ अलंकारों में बिंबात्मकता का एवं कुछ बिंबों में अलंकारिकता का गुण दृष्टिगोचर होता है। फिर भी दोनों एक नहीं हैं। बिंब योजना का उद्धेश्य जहाँ केवल वस्तु के रंग रूप को ही गोचर रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे ऐंद्रिय बोध प्रदान करना है। जबकि अलंकार का लक्ष्य प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत का सादृश्य या वैशम्य प्रदर्शित करते हुए बौद्धिक चमत्कार उत्पन्न करना भी होता है। बिंब जहाँ केवल उपमेय का बोध कराता है, वहाँ अलंकार में उपमान का संयोग होता है। बिंब का आधार सामान्यत: स्वाभावोक्ति होती है, जबकि अलंकार का आधार अतिशयोक्ति हुआ करती है।

संक्षेप में बिम्ब वस्तु के प्रत्यक्ष चित्रण द्वारा प्रभाव उत्पन्न करता है, वहाँ अलंकार अप्रत्यक्ष या अन्य विषय के साथ सहयोग कर इसे संपादित करता है। स्पष्ट है कि अलंकार और बिंब दोनों को पृथक सिद्धांत के रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए।

2. बिंब और प्रतीक - बिंबवादियों ने प्रतीकात्मक बिंब तथा प्रतीकवादियों ने बिंबात्मक प्रतीक जैसे भेदों को स्वीकार कर अनावश्यक रूप में अपनी सीमाओं का अतिक्रमण ही

किया है। वस्तुत: दोनों में पर्याप्त अंतर है। यथा–1. बिंब में विषय वस्तु का बोध प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अभिधा में प्रस्तुत किया जाता है। 2. बिंब की शब्दावली एक अर्थ पर आश्रित होती है, तो प्रतीक में कम से कम द्वियार्थक होती है। 3. बिंब का लक्ष्य चित्रात्मकता है।

3.बिंब निर्माण की प्रक्रिया - डॉ.नगेंद्र ने बिंब निर्माण की प्रक्रिया का विवेचन करते हुए उसके तीन स्तरों का निर्देशन किया है–

1.अनुभूति का निर्वेयक्तिकरण।

2.साधारणीकरण।

3.शब्दार्थ के माध्यम से अभिव्यक्ति।

इनसे कवि की सृजन प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

4. बिंब का काव्यात्मक मूल्य - जिस प्रकार वक्रोक्ति,प्रतीक इत्यादि का लक्ष्य काव्य में सौंदर्य या आकर्षण को उत्पन्न करना है, उसी प्रकार बिंब निर्मिति का भी यही लक्ष्य है। बिंब योजना में मूल वस्तु को ही इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, जिससे हमारी कल्पनाशक्ति को उत्तेजित करती हुई अनुभूतिगम्य हो सकें। जहॉ इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं ही पाती, अर्थात न तो कल्पना शक्ति का संचार होता है और न ही भावानुभूति का, वहॉ बिंब निरर्थक बन जाते है।

5. बिंबं विधान और रस सिद्धांत - बिंब विधान पर रस सिद्धांत के दृष्टिकोण से विचार करें तो वह काव्य में स्थायीभाव के चित्रण का माध्यम सिद्ध होता है। कवि बिहारी की नायिका के भावों एवं अनुभवों को बिंब रूप में ही प्रस्तुत किया गया है–इस क्षेत्र में यह उनकी सफलता का रहस्य है। काव्यत्मक बिंब का लक्षण ही यह है कि वह भावावेग से अनुप्रणित हों।

2.मिथक :

1.मिथक का स्वरूप- मिथक सत्य नहीं होता,यह इसके नाम से ही ध्वनित होता है। इसका प्रयोग खासकर यूरोपीय भाषा में सत्य के विपरीतार्थक शब्द के रूप में किया जाता है,लेकिन इसके साथ यह भी सत्य है कि जिन जातियों के मनुष्यों द्वारा यह बोला या सुना जाता है उनके लिए तो यह सत्य ही होता है। मूलत:इसकी सत्यता विश्वास पर आधारित है और विश्वास की अवस्थित के लिए धर्म–भाव की आवश्यकता स्वंय सिद्ध है। संभवत:इसी दृष्टिकोण से हिंदी में मिथ के लिए 'धर्मगाथा' शब्द प्रयोग में आया है। धर्मगाथा वस्तुत: धार्मिक भाव से युक्त गाथा ही है। यह स्पष्टत: देखने में कहानी ही लगती है, पर इसके लिए पात्रों की मानसी–सृष्टि नहीं की जाती, बल्कि देवी–देवताओं को ही पात्र के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।

2. मिथक और लोककथा - 'जनरल एन्थ्रोपोलोजी' में लोक–कहानियों और मिथक का पार्थक्य स्पष्ट करने की कोशिस की है। उसके अनुसार वे कथाए मिथ है जिनमें प्राकृतिक व्यापारों का मानवीकरण कर दिया गया है और जिन्हें किसी प्रागैतिहासिक युग के साथ भी जोड़ दिया गया है। मिथक को सामान्यत:गंभीरता के साथ ग्रहण किया जाता है, जबकि लोक–कहानियॉ मनोरंजन तक सीमित होती हैं। किंतु इतने से बात बनती हुई नहीं दिखाई पड़ती। वस्तुत:मिथक और लोक–कहानियों के बीच स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती है। सच तो यह है कि मिथक और लोक–कहानियों को केवल विश्वास के आधार पर अलगाया जा सकता है। समुदाय का सत्य ही तो विश्वास है। सत्य एक सापेक्ष शब्द है और इसकी धारणा परिवर्तनशील है। जब सामाजिक प्रतिमान बदलते है तो इसमें व्यतिक्रम के लक्षण दिखाई पड़ने लगते है और एक युग का मिथक दूसरे युग में कहानी बन जाता है और लोक कहानी मिथक बन जाती है। इसलिए मिथक के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें देवी–देवताओं का समावेश, तथ्य के प्रति आस्था के साथ–साथ धार्मिक लाभ की संभावना

एवं महात्म्य की भावना से जुड़ी धार्मिक आस्था का भी आलेख हो।

किम्वाल यंग ने 'सोशल साइकोलॉजी' में कहा है कि "मिथक मानव मनोविज्ञान की एक अनिवार्य विशेषता है तथा यह भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक जगत के तथा सांमजस्य की आवर्तक समस्याओं से उत्पन्न है। मिथक और आख्यान मानवसमाज और संस्कृति के लिए उसी प्रकार अनिवार्य है, जिसप्रकार अपने उपयोगितावादी लक्ष्यों की ओर भौतिक विश्व को मोड़ने के लिए यांत्रिक आविष्कार और बौद्धिक साधनों का व्यवहार।

3.मिथक की अवधारणा

विविध दृष्टिकोण - सामाजिकता की दृष्टि से मिथक का उपयोग बड़ा वैविध्यपूर्ण रहा है और इसलिए इसे देखने और परखने के लिए कई संप्रदाय बन गये-प्राकृतिक, ऐतिहासिक, प्रकृतिवादी आदि। इसी समय एपिकारस 600 ई.पू.और थियोगेनस 500 ई.पू.ने रूपात्मक संप्रदाय की बात कहीं। उनकी यह स्थापना थी कि ग्रीक देवता प्राकृतिक पदार्थो के मानवीकरण है। इसीसे मिलता जुलता प्रकृतिवादी संप्रदाय है, जिसने यह घोषणा की कि मिथक अपने अंतिम विश्लेषण में किसी न किसी प्राकृतिक व्यापार की कथात्मक अभिव्यक्ति है। किंतु मिथक में किस प्रकार के प्राकृतिक व्यापारों की अभिव्यक्ति होती है-इस पर विवाद खड़ा हुआ। परिणाम स्वरूप यह संप्रदाय विभक्त हो गया। चंद्र, सौर और ऋतुवादी सब ने अपने-अपने आधार पर मिथक की व्याख्या की। एक ने चंद्रमा की विशेषताओं और उसके व्यापारों को मिथक का मूल माना, जबकी दूसरे ने सूर्य को मिथ का प्रेरक एवं मूल उत्सव स्वीकार किया है। जब की तीसरे ने यह सिद्ध किया कि समस्त प्रकृति ही मिथ का आधार है।

मिथक कि व्याख्या -

1. मैक्समूलर ने सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्य जाति के मिथक अंधकार और प्रकाश के संघर्ष में अंधकार पर विजय के चिरन्तन विश्व नाटक की कथात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। उसने तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि सूर्य ही सभी मिथों का आधार है।

2.मेलिनोवस्की के अनुसार, विचारों और कथाओं में प्रतीकात्मकता का अवकाश बहुत कम है, और वस्तुत: मिथ न तो अकर्मण्य भावोदगार है,न व्यर्थ की कल्पना की निरूदेश्य अभिव्यक्ति, वरन मिथ एक ठोस एवं महत्वपूर्ण सामाजिक वास्तविकता है।

स्पष्टय: मिथक मानस का आद्यरूप है तथा यह दिवा स्वप्न यथार्थ का विरूपण या भ्रांत ज्ञान न होकर विज्ञान और प्रयोजन ज्ञान से भिन्न किंतु उनकी तरह ही संगत चिंतन प्रणाली है।

3.प्रतीक - श्री रामचंद्र वर्मा ने प्रामाणिक हिंदी शब्द कोष में प्रतीक शब्द के इस प्रकार अर्थ दिए है:1. चिन्ह, लक्षण, निशान 2. मुख-मुँह 3. आकृति-सूरत 4. किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई या काम करने वाली वस्तु 5. प्रतिमा मूर्ती 6. बातों का सूचक। अर्थो की यह विविधता ही प्रतीक की व्यापकता सिद्ध करती है। हमारे जीवन में प्रतीक शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो में हुआ करता है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में हमारे गौरव का प्रतीक तिरंगा राष्ट्रध्वज है। धार्मिक क्षेत्र में प्रस्तर या धातु की मूर्तियों में किसी विशिष्ट देवत्व को मानकर प्रतीक रूप में उस मूर्ति की पूजा की जाती है। इसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करनेवाले शब्द 'प्रतीक' कहे जाते है। यों हमारी भाषा के प्रत्येक शब्द ही प्रतीकात्मक है। इसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में किसी भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्द 'प्रतीक' कहें जाते है। यदि किसी मृत शरीर को देखकर कहा जाए कि 'पक्षी उड़ गया, पिंजरस रिक्त हो गया'- तो यहाँ पक्षी प्राणों का प्रतीक तथा पिंजरा शरीर का प्रतीक यही

आशय लिया जाएगा। प्रतीकों के प्रयोग में मुख्य रूप से ये प्रयोजन होते है –

1. सूक्ष्मभाव, विचार या कल्पना को स्थूल रूप में प्रस्तुत करना। जैसे अवसाद को अंधकार या प्रकाश को ज्ञान का प्रतीक मान लेना।
2. अपरिचित वस्तु की पहचान वस्तु के द्वारा करा देना। यथा, ज्ञान को दीपक तथा भक्ति को चिंतामणि के रूप में प्रस्तुत करना।

2.प्रतीक और अलंकार - इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रतीकों के प्रयोजन भी वहीं है, जो अलंकारों का है। प्रतीक का प्रयोग मूलवस्तु, भाव या विचार के रूप–साम्य, क्रिया साम्य या प्रभाव साम्य के आधार पर होता है। यही बात निरंग रूपक, अन्योक्ति और समासोक्ति अलंकारों में भी प्राप्त होती है।

नहीं पराग, नहीं मधुर मधु, नहीं विकास यहि काल।
अलि कलि ही सो बंध्यों, आगे कौन हवाल।।

इस उदाहरण में मधु शहद, तथा पराग एवं अविकसित कलिका, अस्फुट यौवन बाला का प्रतीक है। अलंकारों में अन्योक्ति, समासोक्ति इत्यादि में प्रस्तुत–अप्रस्तुत दोनों अर्थ चमत्कारपूर्ण है,जबकि प्रतीकात्मकता में केवल अप्रस्तुत अर्थ ही चमत्कारपूर्ण होता है।

3.प्रतीकवाद का उद्‌भव - फ्रांस के एक प्रसिद्ध कवि जीन मोरे ने अपनी पत्रिका 'फिगारो' के एक अंक में 1886 ई. में प्रतीकवाद की घोषणा कर दी। वास्तव में प्रतीकवाद का जन्म प्रकृतवाद के विरोध में हुआ है। प्रतीकवादी मनुष्य के सोच का मूल का कारण इंद्रिय को ही मानता है। इसी कारण प्रकृतिवादी के लिए लौकिक इंद्रियजन्य आवश्यकताएँ महत्वपूर्ण बन गई। कवि जीन मोरे के बाद इस वाद का प्रचार तेजी से होता गया। अलबर्ट ओरिएट ने 1891 में एक लेख प्रकाशित कर प्रतीकवाद की व्याख्या अधिक स्पष्ट रूप में प्रस्तुत की। उनके अनुसार प्रतीकवाद की निम्न विशेषताएँ होती है–

1. प्रतीकवाद भावात्मक होता है।
2. भावों को स्थूल रूप प्रदान करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक है।
3. वह संश्लेषणात्मक हो।
4. वह विषयपरक न हो।
5. वह अलंकृत हो ।

4.प्रतीकवाद का महत्व -

1. शैली तथा व्यंजना संबंधी नवीन प्रयोग।
2. परंपरागत छंदों का परित्याग।
3. मुक्त छंदों की उद्‌भावना।
4. साहित्य को राजनीति से ग्रसित होने से बचाया।
5. सौंदर्य से प्रतिष्ठा की।
6. काव्य और संगीत में सामंजस्य स्थापित किया।

हिंदी साहित्य पर प्रतीकवाद का प्रभाव - आधुनिक युग में प्रतीकों का प्रयोग सामान्य रूप से होता रहा है। छायावादी तथा प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि इन्हें प्रतीकवादी भी कहा गया है। पाश्चात्य प्रतीकवादियों की तरह छायावादी कवियों ने भी स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म, यथार्थ के स्थान पर आदर्श, लौकिक के स्थान पर अलौकिक की प्रतिष्ठा की। दोनों ही छंदों के स्थान पर लय और संगीत के सांमजस्य पर जोर देते है। दोनों ही कला में सौंदर्य को महत्व देते हैं। दोनों ही साहित्य को राजनीति से दूर रखते है। इसी कारण

यदि छायावादी को प्रतीकवाद भी कहा जाए तो एक सीमा तक वह उचित ही माना जाएगा। छायावाद की तुलना में प्रयोगवाद पर प्रतीकवाद काफी प्रभाव रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं की प्रयोगवादी कवियों ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति का प्रयास किया है।

4. फंतासी - अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति करने के लिए साहित्यकार जिन उपकरणों का इस्तेमाल करता है, उनमें 'फंतासी' भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है। फंतासी के लिए हिंदी में स्वप्न-चित्रमूलक साहित्य, ललित कल्पना, अतिकल्पना, उपकल्पना, स्वैरकल्पना इत्यादि शब्दों का यत्र-तत्र उपयोग होता है। अंग्रेजी के फैंटसी शब्द से फंतासी शब्द बना है। यह शब्द आधुनिक साहित्य में विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस तरह के साहित्य के उपकरण है, जिसके माध्यम से साहित्य, विज्ञान का भी विकास होता है।

संदर्भ ग्रंथ स्त्रोत -

1. साहित्यशास्त्र -डॉ.नारायण शर्मा
2. साहित्यशास्त्र- डॉ.माधव सोनटक्के
3. साहित्यशास्त्र परिचय- प्रो.राधावल्लभ त्रिपाठी
4. साहित्यशास्त्र- प्रो.प्रेमरत्न गुप्ता

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

''शिक्षा के अधिकार का मध्यप्रदेश के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में क्रियान्वयन :झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले के विशेष संदर्भ में''

• माया रावत

सारांश- राष्ट्र की अमूल्य धरोहर, कर्णधार एवं इसके भावी निर्माता बालकों के शैक्षणिक, मानसिक, शारीरिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध होने पर ही राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित रह सकता है। देश के सामाजिक, आर्थिक विकास में भी शिक्षा अहम् भूमिका अदा करती है। यहीं नहीं वरन् शिक्षा ही सामाजिक क्रांति का आधार है। अतः बालकों की समुचित शिक्षा व्यवस्था करना राज्य और समाज का प्रमुख दायित्व हैं। सुस्थिर एवं प्रभावी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बालकों में अनेक चारित्रिक विशेषताओं को विकसित किया जा सकता है, ताकि वे भावी जीवन में एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में तैयार किये जा सकें तथा राष्ट्र निर्माण में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकें। इस शोध पत्र में अध्यायवार शोध की संक्षेपिका प्रस्तुत की जा रही है।

मुख्य शब्द- कर्णधार, आध्यात्मिक दृष्टि, सामाजिक क्रान्ति

राष्ट्र की अमूल्य धरोहर, कर्णधार एवं इसके भावी निर्माता बालकों के शैक्षणिक, मानसिक, शारीरिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध होने पर ही राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित रह सकता है। देश के सामाजिक, आर्थिक विकास में भी शिक्षा अहम् भूमिका अदा करती है। यहीं नहीं वरन् शिक्षा ही सामाजिक क्रांति का आधार है। अत: बालकों की समुचित शिक्षा व्यवस्था करना राज्य और समाज का प्रमुख दायित्व है। सुस्थिर एवं प्रभावी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बालकों में अनेक चारित्रिक विशेषताओं को विकसित किया जा सकता है, ताकि वे भावी जीवन में एक उत्तरदायी नागरिक के रुप में तैयार किये जा सकें तथा राष्ट्र निर्माण में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकें। किन्तु विडम्बना इस बात की है कि देश में करोड़ों बालक गुणवत्तायुक्त शिक्षा से वंचित है, समाज के कमजोर वर्गों में अनुसूचित जनजातियों के लाखों बालक पढ़ाई अधूरी छोड़कर अर्थाजन में लग जाते हैं। ऐसे समय में ''शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया जाना एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी प्रयास है। यह भारतीय संविधान की कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का एक अनुपम उदाहरण है। अब कोई भी 6 से 14 वर्ष की आयु का बालक शिक्षा को नि:शुल्क प्राप्त करने के लिये राज्य को वैधानिक रुप से बाध्य कर सकता है। यह सर्वाधिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने की दिशा में राज्य द्वारा किया गया महत्वपूर्ण कदम है। मध्यप्रदेश शासन द्वारा भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम की क्रियान्विति के माध्यम से अनुसूचित जनजातीय की क्षेत्रों में शिक्षा के सार्वभौमिकता की मुहिम को बल मिला है। इसके माध्यम से झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले में समावेशी शिक्षा की ओर किए प्रयासों को भी बल मिलेगा और शिक्षा की परिधि में समाज के जनजातीय वर्ग को लाने की मूल भावना को मूर्तरुप दिया जा सकेगा। ताकि शिक्षा के क्षेत्रों में व्याप्त क्षेत्रीय एवं वर्गवार विषमताओं को समाज किया जा सकें। मध्यप्रदेश के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में ''शिक्षा का अधिकार'' सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने का एक सार्थक प्रयास है। गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने

• सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान, शासकीय आदर्श महाविद्यिालय हरदा (म.प्र.)

के लिये उचित प्रशिक्षण व्यवस्था, शिक्षा संबंधी आधारभूत तकनीकी व अन्य सुविधाओं की उपलब्धता व जनसहभागिता को प्रोत्साहित करके ही इसका क्रियान्वयन किया जाना संभव है और मध्यप्रदेश शासन इस ओर प्रयासरत् है, क्योंकि शिक्षा के अधिकार की अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में प्रभावी क्रियान्विति से झाबुआ जिले में व्याप्त निरक्षरता के उन्मूलन में भी मदद मिलेगी एवं सार्वत्रिक शिक्षा के उद्देश्य को भी प्राप्त किया जा सकेगा। प्रस्तुत शोध छः अध्यायों में विभक्त है –

प्रथम अध्याय के अंतर्गत प्रस्तुत विषय का परिचय, उद्देश्य, शोध की प्रविधियाँ तथा संबंधित साहित्य की समीक्षा का उल्लेख स्तम्भ हैं, वे उन परिस्थितियों का निर्माण करते है जिनके आधा बहुमत की इच्छा निर्मित और क्रियान्वित होती है। वे इस दृष्टि से भी प्रजातंत्र के अनिवार्य तत्व है कि उनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शारीरिक मानसिक और नैतिक विकास की सुरक्षा प्रदान की जाती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा भारत के लोगों को मूलभूत अधिकार प्रदान किये गये, उनमें से संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार को सम्मिलित किया गया है, लेकिन वह सर्वसामान्य को शिक्षा का अधिकार प्रत्यक्षतः नहीं देता। यह अधिकार अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि से भाषा, धर्म लिपि एवं संस्कृति के आधार पर शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना का अधिकार देता हैं। इसमें मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा का अधिकार शामिल नहीं किया गया मात्र नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 45 में उल्लेख हैं।

तत्पश्चात् 86वां संविधान संशोधन (2002) करके अनुच्छेद 21 (क) समाविष्ट किया जिसमें 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान कर, इस अनुच्छेद के अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बना दिया। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने एवं विकास के लिये अनेक योजनाओं, नीतियों, आयोग समितियों का गठन किया है, जिसका की विस्तृत अध्ययन किया गया हैं। शिक्षा किसी भी सभ्य समाज की प्रमुख आवश्यकता बल्कि कहना चाहिए कि शिक्षा ही समाज को सभ्य बनाती है। शिक्षा से ही राष्ट्र की समाज की ओर व्यक्ति की उन्नति संभव हैं। इसलिये दुनिया के अनेक देशों में शिक्षा को मौलिक अधिकारों के रुप में मान्यता दी गई है। दरअसल होना तो ये चाहिए कि शिक्षा के अधिकार के साथ–साथ शिक्षा में बराबरी की बात भी की जाए। एक जैसी शिक्षा ही समता मूलक शिक्षा समाज का मजबूत आधार हो सकती है। भारत में अब शिक्षा का अधिकार अधिनियम संसद में पारित होकर कानून का रुप ले चुका है। इसके अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम में बच्चों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों, स्कूलों और सरकार के सभी के कर्तव्य निश्चित कर दिये है। अतः निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करना सभी बच्चे का अधिकार है। सरल शब्दों में इसका अर्थ यह है कि सरकार 6 से 14 वर्ष के आयु के सभी बच्चों की निःशुल्क पढ़ाई के लिये जिम्मेदार होगी। इस प्रकार इस कानून ने देश के बच्चों को मजबूत साक्षर और अधिकार सम्पन्न बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम में सभी बच्चों के लिये गुणवत्ता पूर्ण और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। जिससे ज्ञान, कौशल, मूल्यों से सम्पन्न करके उन्हें भारत का प्रबुद्ध नागरिक बना सकें। शिक्षा का अधिकार अधिनियम एक बड़ी जिम्मेदारी है जिसे समाज के सभी वर्गों को मिलाकर वहन करता है। किसी भी अधिनियम या कानून की सफलता देशवासियों की सामूहिक जिम्मेदारी होती है, जिसकी शुरुआत घर से होती है। सरकार की यह भी अपेक्षा है कि प्रत्येक

परिवार अपने 6 से 14 वर्ष के बच्चों को शिक्षण हेतु विद्यालय भेजे। इस अधिनियम को सफल बनाकर राष्ट्र विकास का मार्ग प्रशस्त करें। बच्चों के लिये मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम दिनांक 1 अप्रैल 2010 से देश में पूर्ण रुप से लागू हो गया है। इस अधिनियम के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को पूर्णत: मुफ्त एवं अनिवार्य करना है। अब यह केन्द्र तथा राज्यों के लिये कानूनी बाध्यता मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा सभी को सुलभ हो सके। सरल शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि सरकार प्रत्येक बच्चे की 8वीं तक नि:शुल्क पढ़ाई के लिये जिम्मेदार होगी। चाहे वह बालक हो अथवा बालिका या किसी भी वर्ग का हो। इस प्रकार इस कानून ने देश के बच्चों को मजबूत साक्षर और अधिकार सम्पन्न बनाने का मार्ग तैयार कर दिया है। इस प्रकार शिक्षा का अधिकार अधिनियम ने सभी बच्चों के लिये गुणवत्तापूर्ण और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है।

उद्देश्य - "शिक्षा के अधिकार का मध्यप्रदेश के अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में क्रियान्वयन : झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले के विशेष संदर्भ में" इस अध्ययन में न केवल लाभदायक ही नहीं अपितु फलदायक भी होना चाहिए। उपरोक्त बात को दृष्टि में रखते हुए हमारे अध्ययन का उद्देश्य इस प्रकार है –

1. झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले की अनुसूचित जनजातियों में शिक्षा की स्थिति का आंकलन करना।
2. अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में शिक्षा के अधिकारों के प्रति जागरुकता का पता लगाना।
3. अनुसूचित जनजातियों के लिये राज्य द्वारा लागू की गई शिक्षा की योजनाओं के क्रियान्वयन की स्थिति को ज्ञात करना।
4. अनुसूचित जनजातियों में शिक्षा के मार्ग में आने वाली बाधाएँ एवं समस्याओं को ज्ञात करना।
5. अनुसूचित जनजातियों में शिक्षा प्रसार की सीमाओं (कमियों) का पता लगाना।
6. अनुसूचित जनजातीयों के विकास से सम्बन्धित सरकारी नीतियों, सरकारी शिक्षा नीति, योजनाएँ, कार्यक्रम आदि का मूल्यांकन करना।
7. अनुसूचित जनजातियों का अध्ययन करके उनके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में शिक्षा का प्रभाव एवं योगदान का विश्लेषण करना।

अध्ययन क्षेत्र - इस अध्याय में अध्ययन क्षेत्र का परिचय दिया गया है। अध्ययन क्षेत्र वहाँ की भौगोलिक परिदृश्य, पृष्ठभूमि, प्रशासनिक विभाजन, जनसंख्या, शैक्षणिक स्थिति, वन संरचना आदि का अनुसूचित जनजातियों की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहचान का विस्तृत से अध्ययन किया गया है।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध में वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति की देवनिदर्शन पद्धति की नियमित अंकन प्रणाली से झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले की कुल 6 तहसीलों में से 5 गाँवों का चयन किया गया है तथा प्रत्येक चयनित गाँव में से 10 परिवारों का चयन किया गया है। साथ ही तथ्यों का संग्रहण, वर्गीकरण और विश्लेषण वैज्ञानिक इंद्रियानुभविक पद्धति से किया गया है। इस प्रकार तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से किया गया है।

विश्व स्तर पर आज हमारा भारत देश हर तरह से सम्पन्न और प्रगतिशील माना जाता है। आज देश ने आकाश से बढ़कर ब्रह्मंड को छूने में कामयाबी हासिल की है। लेकिन इस पूरे प्रगतिशील दौर में आज भी देश में शिक्षा का स्तर अधिक चिन्ताजनक बना हुआ है।

आज भले ही हमारे पास हर एक किलोमीटर पर स्कूल और पाठशालाएँ मौजूद हों, लेकिन शिक्षा का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। आज के दौर में भले ही हमने ज्यादा से ज्यादा बच्चों को स्कूल में दाखिला दिला दिया हो, लेकिन शिक्षा के पैमानों में इन बच्चों की स्थिति और भी चिन्ताजनक हो गई है। देश में सभी के लिए मुफ्त शिक्षा का बिल भले ही पास हो गया हो, लेकिन यह आधारभूत अधिकार अभी भी केवल कागजों पर ही है।

स्कूली शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने के सिलसिले में जो कुछ प्रश्न बार-बार उठाएँ जाते है वे है-शिक्षकों की अनुपस्थिति, अभिभावकों की उदासीनता, सही पाठयक्रम का अभाव, अध्यापन में खामियाँ इत्यादि। परन्तु इन समस्याओं को अलग-अलग रुप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि इनकी जड़ें सारी व्यवस्था में फैली है। इसलिए व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाना जरुरी है। इसके लिये हमें स्कूली शिक्षा व्यवस्था की मूल समस्याओं पर गौर करना होगा। पहली मूल समस्या है प्रवेश की कभी आजादी के 64 साल बाद भी हमारे देश में करोड़ों बच्चे पढ़ाई से वंचित रह जाते है। पूरे देश में यह संख्या 30 प्रतिशत से कम नहीं होगी। आधुनिकत सरकारी आंकड़ों के अनुसार, कक्षा 10 तक पहुँचते-पहुँचते 61 प्रतिशत बच्चों ने पढ़ाई छोड़ दी थी। प्रवेश की समस्या के समाधान के लिए सबसे पहला कार्य होना चाहिए - अतिरिक्त स्कूलों का निर्माण, अतिरिक्त शिक्षकों की बहाली और अतिरिक्त शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों का निर्माण शिक्षा की दूसरी मूल समस्या है इसकी अति निम्न गुणवत्ता। इसे बढ़ाने के लिये सबसे महत्वपूर्ण उपाय है, न्यूनतम मानकों का निर्धारण कर उन्हे सभी स्कूलों में लागू करना। शिक्षा का अधिकार विधेयक की अनुसूची में कुछ मानक निर्धारित किए गए हैं, परन्तु ये नितान्त अपर्याप्त हैं।

हमारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था की तीसरी मूल समस्या है, इसमें व्याप्त असमानता और भेदभाव। देश के सामाजिक वर्गीकरण के साथ-साथ हमारे यहाँ स्कूलों का भी वर्गीकरण हैं, जिसके अनुसार धनी और विशिष्ट वर्ग के बच्चे सामान्य और कम फीस वाले स्कूलों में, जिनकी संख्या कुल स्कूली छात्रों का करीब 80 प्रतिशत है। इसके चलते देश का सामाजिक विभाजन और भी बढ़ता जा रहा है। सभी स्कूलों में न्यूनतम मानक लागू करना न केवल शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ा सकता है, बल्कि शिक्षा व्यवस्था में मौजूद भेदभाव को मिटाने में भी मदद कर सकता है। भेदभाव मिटाने का दूसरा उपाय है। पड़ोस के स्कूल के सिद्धांत को लागू करना, जिसके मुताबिक हर स्कूल को उसके लिए निर्धारित पोषक क्षेत्र अथवा पड़ोस के सभी बच्चों को दाखिला देना होगा। इसका भी शिक्षाधिकार विधेयक में कोई प्रावधान नहीं है, बल्कि स्कूलों के वर्तमान वर्गीकरण को कायम रखने की व्यवस्था है।

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत भारत में शिक्षा की स्थिति स्वतंत्रोत्तर भारतीय शिक्षा नीतियों का विवेचन 1950 से वर्तमान तक का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में भारत में शैक्षिक सुधार हेतु गठित प्रमुख आयोग-समितियों, योजनाओं तथा नीतियों का शिक्षा से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्य कि विवेचना की गई है। साथ ही भारतीय शिक्षा को प्राचीन भारतीय शिक्षा, मध्यकालीन शिक्षा स्वतंत्रता के पूर्व शिक्षा स्वतंत्रता के बाद शिक्षा से लेकर वर्तमान तक की शिक्षा का विस्तृत विवेचन किया गया है।

भारत सरकार ने कानून लागू तो कर दिया है लेकिन प्रदेशों में इस कानून का पालन होने में अभी कुछ और साल लग सकते है। राज्यों में शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य पाने के लिये शिक्षा के क्षेत्र में न तो आधारभूत ढ़ांचा है और न ही आवश्यकता सुविधाएँ व संसाधन। शिक्षा शास्त्रियों का मानना है कि समाज में गरीबी के कारण बच्चे रोजी-रोटी की जुगाड़ में

काम धंधे में लग जाते हैं। गाँव में पशुपालन, खेतीबाड़ी, घरेलू उद्योग, दस्तकारी आदि व्यवसाय में परिवार के बुजुर्ग ही अपने बच्चों को काम में लगा देते है। वर्तमान (वर्ष 2009-10) की बात करे तो मध्यप्रदेश में साक्षरता दर 63.7 प्रतिशत है जो कि राष्ट्रीय औसत से कम हैं। राज्य में लगभग 50 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर है। अनुसूचित जनजाति तथा दलित समुदाय में 60 से 65 प्रतिशत तक निरक्षरता की समस्या है। हालाकि राज्य सरकार ने वर्ष 1998 से राज्य में सामाजिक क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान देते हुए शिक्षा के लोक-व्यापीकरण के लिये प्रयास किए है। वहीं इन प्रयासों के कुछ अच्छे नतीजे भी निकले है। लेकिन शिक्षा के सीमित विकास और इसके विस्तार के बावजूद शिक्षण संस्थाएँ बच्चों को पाठशालालाओं की ओर आकर्षित करने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाई है। सरकारी सूत्रों के अनुसार फिलहाल राज्य में 97,900 प्राथमिक स्कूल है। इनमें 82,185 सरकारी, 919 सैटेलाईट, 13,915 निजी और 881 सरकारी सहायता प्राप्त शालाएँ हैं। वर्ष 2006-07 में इन प्राथमिक और माध्यमिक शालाओं में कुल 1 करोड़ 63 लाख बच्चों का नामांकन हुआ, जो 2007-08 में बढ़कर 1 करोड़ 67 लाख हो गया और वर्ष 2008-09 में यह आंकड़ा कुछ कम होकर 1 करोड़ 65 लाख तक रहा।

जहाँ एक ओर नामांकन वृद्धि पर सरकार ने ध्यान दिया, वही इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि स्कूल आने वाले छात्र-छात्राएँ बीच में ही पढ़ाई छोड़कर स्कूल से निकल जाते है। सरकारी भाषा में इसे शाला-त्याग कहा जाता है। सरकार ने शाला त्यागी बच्चों की दर निकाली है, जिससे साफ पता चलता है कि बड़ी संख्या में बच्चे बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं। मध्यप्रदेश में 4997 हाईस्कूल और 4675 हायर सेकेण्डरी स्कूल है, जिनमें क्रमशः 18.18 लाख तथा 10.64 लाख छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत है।

बीच में पढ़ाई छोड़ देने के कारणों का विश्लेषण करने वालों का मत है कि समाज में गरीबी के कारण बच्चे रोजी-रोटी के जुगाड़ में काम-धंधे में लग जाते है। गाँव में पशुपालन, खेती-बाड़ी, घरेलू उद्योग, दस्तकारी आदि व्यवसाय में परिवार के बुजुर्ग ही अपने बच्चों को काम में लगा देते है। जहाँ तक बालिकाओं का सवाल है, आज भी ग्रामीण इलाकों में तथा अनुसूचित जनजाति और पिछड़ी जातियों में बालिकाओं को साक्षर बनाने पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है। इसके कारणों में सामाजिक जागरुकता का अभाव भी एक है। सरकार के द्वारा अनेक योजनाएँ शुरु की है जैसे निःशुल्क साईकिल वितरण, निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकें तथ अनुसूचित जाति, जनजाति और दलितों को मासिक छात्रवृत्ति के साथ-साथ अनेक सुविधाएं भी दी जाती है, लेकिन इन सबके बाद भी राज्य में साक्षरता का प्रतिशत नहीं बढ़ा और न ही स्तर में कोई आशाजनक सुधार हुआ है। सरकार द्वारा स्कूलों में मध्यान्ह भोजन योजना शुरु करने के बाद कई स्कूलों में विद्यार्थियों की उपस्थिति केवल कागजों पर ही बढ़ी है। इतना ही नहीं, फर्जी प्रवेश संख्या भी बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई है ताकि भोजन के लिए मिलने वाले धन को बटोरा जा सके।

भौतिकवादी एवं सुविधाभोगी युग में आज मध्यप्रदेश के गाँव में जाना नहीं चाहते है। लेकिन सरकारी नौकरी और अच्छे वेतन के लालच में वे नौकरी करते है और कुछ दिनों बाद राजनीतिक व प्रशासनिक जोड़-तोड़ के जरिए किसी शहर स्कूल में अपनी पद-स्थापना भी करा लेते है और थोड़े समय पढ़ाने के बाद घर लौट आते है। राजधानी भोपाल से प्रतिदिन लगभग 500 शिक्षक-शिक्षिकाएं आसपास के 70 किलोमीटर दूर के गाँव के स्कूल में सेवा देने के लिए हर दिनों आना-जाना करते है। इसी तरह कई जिलों में लगभग

400 ग्रामीण शिक्षक रहते है, जबकि उनकी पद-स्थापना आसपास के 40 किलोमीटर तक के गाँवों में है। जिलों के मुख्यालयों और तहसील मुख्यालयों वाले शहरों की बात करें तो राज्य के 15000 से ज्यादा ग्रामीण शिक्षक अपनी पद स्थापना वाले गाँव में न रहकर गाँव में 10 से 50 किलोमीटर दूर तक रहते है और हर दिन आना-जाना करते है। शिक्षकों के गाँव में न रहने से भी पढ़ाई बाधा उत्पन्न होती है, क्योंकि कई बार ये शिक्षक बिना कारण गायब हो जाते है या काफी देरी से स्कूल आते हैं। 16000 स्कूल एक-एक शिक्षक के भरोसे चल रहे है। जब केन्द्र सरकार ने 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिये अनिवार्य शिक्षा का बिल राज्य सभा में पास किया तो लगा जैसे देश में एक तरह की क्रान्ति आ गई। लेकिन व्यवहार में इसका कितना फायदा होगा, यह अभी देखना बाकी है।

वर्तमान में स्कूल शिक्षा की प्रशासनिक व्यवस्था के लिए राज्य स्तर पर लोक शिक्षण संचालनालय है। राजीव गाँधी शिक्षा मिशन द्वारा प्रथम चरण में प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिये काम किया। जुलाई 2000 में प्राथमिक शिक्षा के लिये नई शालाओं की व्यवस्था, शैक्षिक अधोसंरचना, जैसे शाला भवन अतिरिक्त कक्षा का निर्माण, सुविधाओं में सुधार, पठन-पाठन सामग्री का विकास आदि। मध्यप्रदेश में साक्षरता एवं शिक्षा के विकास के लिए किए गए प्रयासों के परिणामस्वरुप साक्षरता वहीं है और सन् 2001 में 64 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर हो गई है, परन्तु अभी भी मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता बहुत कम है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि समाज में गुणात्मक सुधार शिक्षा के माध्यम से ही आता है। इसीलिए शिक्षा को विकास की कुंजी माना जाता है। मध्यप्रदेश में भी देश की शिक्षा नीति के अनुरुप शिक्षा के लिए व्यापक प्रबन्ध किए गए हैं। राज्य में प्राथमिक शिक्षा को लोकव्यापी बनाने, स्कूल शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने, बालिका शिक्षा को बढ़ाने तथा शिक्षा की वृद्धि करने के प्रयास किए गए है। इनके लिए कई योजनाएँ भी चलाई जा रही है। जैसा कि शिक्षा के लोकव्यापीकरण हेतु सर्वशिक्षा अभियान का क्रियान्वयन प्रदेश के समस्त जिलों में किया जा रहा है। अभियान का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक बच्चों को गुणवत्तायुक्त शिक्षा उपलब्ध कराना है। इसके लिए प्रत्येक बसाहट में एक किलोमीटर की परिधि में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा तथा तीन किलोमीटर की परिधि में माध्यमिक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। बालिका शिक्षा को बढ़ाने के लिये बालिकाओं का निःशुल्क गणवेश एवं पाठ्य पुस्तकें देना, आवासीय कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय संचालित करना, माध्यमिक शाला के साथ बालिका छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराना, निःशुल्क साईकिल वितरण जैसी योजनाएँ मध्यप्रदेश में चलाई जा रही है। इस अध्याय के अंतर्गत मध्यप्रदेश राज्य के पुनर्गठन से पहले की शिक्षा तथा पुनर्गठन के बाद से लेकर वर्तमान तक की शिक्षा, शिक्षा के लिए चलाई जा रही योजनाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

शिक्षा के मौलिक अधिकार के पीछे एक महत्वपूर्ण उद्देश्य सार्वभौमिक नामांकन से जुड़ा हुआ है अर्थात् निर्धारित प्रवेश आयु (6 से 14 वर्ष) पर सभी बच्चों का नामांकन करना यह कार्य अभी काफी सीमा तक शेष है। विशेष रुप से जनजातीय क्षेत्रों के बच्चों का नामांकन का कार्य काफी बाकी है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 67 प्रतिशत बच्चे स्कूल में जा रहे है। इसमें अनुसूचित जनजाति के बच्चे काफी कम है और यह समस्या मध्यप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में काफी गंभीर है। मध्यप्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में विशेषकर झाबुआ जिले के सन्दर्भ में शिक्षा के मूल अधिकार के तहत बनाये गये कार्यक्रमों

में अधिक शोषित वर्ग अनुसूचित जनजाति पर ज्यादा जोर दिया गया है ताकि सामाजिक विकास की प्रक्रिया को बल मिल सकें। झाबुआ की जनजातीय क्षेत्रों के बच्चे प्रगतिशील मूल्यों से परिचित हो सके, इससे वहाँ के जनजातीय समाज में गतिशीलता आ सके।

शिक्षा के मूल अधिकार का सम्बन्ध झाबुआ की जनजातीय सामाजिक व्यवस्था से भी सम्बन्ध रखता है, जो वहाँ के लागों को ने केवल सामाजिक अंधविश्वास से बचा सकता है, बल्कि शिक्षा के माध्यम से साक्षर लोग सरकार द्वारा संचालित सामाजिक, आर्थिक योजना का भरपूर लाभ उठा सकते है। जनजातीय क्षेत्र के यही बालक शिक्षा प्राप्त कर आगे चलकर अधिक उचित ढंग से अपने मत का प्रयोग लोकतांत्रिक व्यवस्था में कर सकते है। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के मूल अधिकार का क्रियान्वयन उचित ढंग से किया जाये। शिक्षा के मूल अधिकार के पहले से भी संविधान में कई प्रावधान किए गए थे। संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार – "राज्य विशेष समाज के कमजोर वर्गों अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के उन्नयन को बढ़ावा देगा और सभी प्रकार के सामाजिक शोषण से उनकी रक्षा करेगा।" इसके अलावा अनुच्छेद 330, 332, 335, 338, 342 तथा संविधान की 5वीं एवं 6ठी अनुसूची में जनजातियों की स्थिति में सुधार के लिये विशेष प्रावधान किए गए है। इन्हीं उद्देश्यों को व्यावहारिक स्तर पर सशक्त रुप से लागू करने में आने वाली कमियों को पूरा करने के लिए ही शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने की पहल की गई।

अनुसूचित जनजाति के लोगों को हमारे यहाँ, "वनवासी बन्धु" भी कहा जाता है। क्योंकि ये लोग मुख्यत: वनों में ही रहते हैं, वनोत्पाद ही इनकी जीविका के साधन है। वनों में रहने के जहाँ इन्हें लाभ है एवं वहीं एक हानि यह है कि, सुधार और विकास की ओर धारा हमारे समाज में शहरों और गाँवों में बैठी है। उसकी छींटे तक इनके पास नहीं पहुँच पाती। अत: इनके विकास की विशेष योजनाएँ बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी दृष्टि से अक्टूबर 1999 में एक अलग "अनुसूचित जनजाति मंत्रालय" बनाया गया। अनुसूचित जनजातियों में शिक्षा की स्थिति इस अध्याय के अन्तर्गत दुर्गम इलाकों में रहने वाली जनजातियों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए एवं उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक विकास के लिये केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ, नीतियों तथा आयोग का गठन किया गया ताकि वे विकास की मुख्य धारा में शामिल हो सके। इस अध्याय में स्वतंत्रता से पूर्व अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा से लेकर वर्तमान तक जनजातीयों की शिक्षा की स्थिति का वर्णन किया गया है।

अधिनियम में अनेक प्रावधान विसंगतियों से परिपूर्ण है जिन पर मंथन किया जाना चाहिए अन्यथा इस अधिनियम की व्यवहारिक क्रियान्विति के माध्यम से शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण की मुहिम को जो बल मिला है, उसे अधिनियम की क्रियान्विति की तिथि से अगले 5 वर्ष के लिये आवश्यक वित्तीय संसाधन द्वारा 35000 करोड़ की वित्त आयोग द्वारा व्यवस्था की जाएगी। किन्तु हकीकत में आवश्यकता होगी 1.71 लाख करोड़ की। इतने विपुल संसाधनों की व्यवस्था करना आसान नहीं है। अत: वित्तीय संसाधनों क अपर्याप्तता अधिनियम की क्रियान्विति से मुख्य बाधा बनेगी। ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त गरीबी व बेरोजगारी से ग्रामीणों को शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन से भी बालकों का भी अपने अभिभावकों के साथ पलायन करना होगा। फलत: पढ़ाई अधूरी छोड़कर घर बैठ जाने वाले बच्चों का अनुपात भी बढ़ेगा। अभिभावकों की न्यून आय व कम क्रय शक्ति से बालकों को अल्पवय में ही रोजगार

की तलाश में गाँव से पलायन करने की सम्भावना भी निरन्तर बनी रहती है। अत: अधिनियम में बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में कुछ प्रावधान किए गए होते तो इस वर्ग के बालकों को और राहत मिलती। अधिनियम में गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने पर जोर दिया गया है। योग्यताधारी शिक्षकों की भर्ती व निरन्तर प्रशिक्षण दिए जाने पर भी जोर दिया गया है, किन्तु 12 लाख अतिरिक्त प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था करने के लिए भी अतिरिक्त संसाधनों की व्यवस्था करनी होगी तभी हम कुशलतम प्रशिक्षित अध्यापकों की जमात तैयार कर पाएंगे। अधिनियम के प्रति कक्षा छात्र अध्यापक अनुपात 30:1 निर्धारित किया गया है, किन्तु वर्तमान में यह 50:1 है इसके कम होने की संभावना कतई प्रतीत नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति और गंभीर है। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों की पर्याप्त संख्या के अभाव में बाल–अध्यापक अनुपात असंतुलित होने की संभावना सदैव बनी रहती है। इस हेतु विशेष प्रयास करने होंगे। इसके साथ ही छात्रों में शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए आधारभूत सुविधाएँ प्रदान की जाएगी। किन्तु आज भी ग्रामीण विद्यालय में शिक्षकों, कक्षा–कक्ष, खेलकूद सामग्री, शारीरिक प्रशिक्षण, बैठक व्यवस्था आदि की पर्याप्त सुविधाएँ न होना भी अधिनियम के मूल उद्देश्य "गुणवत्तायुक्त प्राथमिक शिक्षा" की क्रियान्विति पर प्रश्न चिन्ह आरोपित कर देते है। अधिनियम में शिक्षा के द्रुत विकास के लिए सरकारी व निजी क्षेत्र की सहभागिता की बात की गई है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार में सभी का सहयोग अपेक्षित है। निजी विद्यालयों में सरकारी विद्यालयों की तुलना में ऊँचा शुल्क वसूल किया जाता है। वहाँ प्रवेश में 25 प्रतिशत आरक्षण कमजोर वर्ग को दिए जाने का प्रावधान है। संशय पैदा कर देता है। कमजोर वर्ग की सुस्पष्ट परिभाषा अधिनियम में नहीं दी गई है। कमजोर वर्ग का आकलन आय के आधार पर होगा या फिर जातिगत आधार पर? प्रस्तुत अध्ययन व्यवहारिक सर्वेक्षण पर आधारित है। अध्ययन में देव–निदर्शन विधि का प्रयोग किया है, क्योंकि यह संभव नहीं था कि झाबुआ एवं अलीराजपुर जिले की सभी छ: तहसीलों में सर्वेक्षण द्वारा अध्ययन किया जा सके। अत: समग्र में देव निदर्शन पद्धति में नियमित अंकन प्रणाली द्वारा एवं सुविधाजनक अंक प्रणाली द्वारा झाबुआ जिले की कुल पाँच तहसीलों में से प्रत्येक तहसील से पाँच गाँवों का चयन किया गया। प्रत्येक चयनित गाँवों में से 10 परिवारों का चयन किया गया है। इस प्रकार झाबुआ जिले में कुल 300 इकाईयों का चयन करने के लिये देव निदर्शन पद्धति से नियमित अंकन के अनुसार कुल गाँव 1896 तथा उत्तरदाताओं की संख्या 300 का भाग लगाने पर 6.32 प्रतिशत परिणाम आया फिर तहसील की मतदाता सूची में से प्रथम उत्तरदाता क्र. एक नंबर को लिया गया फिर 6 नंबर को लिया गया। इस प्रकार हमने 300 उत्तरदाताओं का चयन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया तथा सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त विश्लेषण है। अनुसूचित जनजातियों का अध्ययन परिवार के मुखिया के आधार पर वर्गीकृत किया गया है, जिसमें 89.2 प्रतिशत पुरुष एवं 10.8 प्रतिशत महिला परिवार की मुखिया है। परिवार के मुखिया की शैक्षणिक योग्यता के आधार पर वर्गीकरण किया गया जिसमें संकलित तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निरक्षर 88 प्रतिशत 8.4 प्रतिशत साक्षर प्राथमिक स्तर 2.8 प्रतिशत माध्यमिक 0.4 प्रतिशत, उच्चतर माध्यमिक 0 प्रतिशत एवं स्नातक में 0.4 प्रतिशत है। जाति के आधार पर वर्गीकरण – भील 50.4 प्रतिशत, भिलाला – 27.6 प्रतिशत, पटेलिया 22 प्रतिशत है। धर्म के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, जिसमें 80 प्रतिशत एवं 20 प्रतिशत ईसाई धर्म को मानते है। व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण जनजाति क्षेत्रों में प्राय: कृषक 80 प्रतिशत कृषि करते है और 16.8 प्रतिशत

मजदूरी करते है एवं 3.2 प्रतिशत नौकरी कर अपना जीवन व्यापन करते है। परिवार की वार्षिक आय के आधार पर वर्गीकरण में परिवारों की वार्षिक आय 80000 से कम 14.4 प्रतिशत परिवारों की आय है और 30001–50000 तक 32.4 प्रतिशत, 50000–70000 तक 26 प्रतिशत 70000–90000 तक 19.6 प्रतिशत, 90000 से अधिक 7.6 प्रतिशत परिवारों की वार्षिक आय है। घर के आधार पर वर्गीकरण 59.6 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति लोगों का घर कच्चा है और 4.4 प्रतिशत पक्का घर है। अभी भी यहाँ की जनजातियाँ कच्चे घरों में रह रही है। परिवार के आधार पर वर्गीकरण 30.4 प्रतिशत जनजाति परिवार, एकल परिवार में रहते है और 69.6 प्रतिशत संयुक्त परिवार में रहते है।

परिवार का वर्गीकरण सदस्यों की संख्या के आधार पर सदस्य संख्या पाँच से कम 9.6 प्रतिशत 6–10 में 28 प्रतिशत, 11–15 में 52.4 प्रतिशत, 16–20 में 8.4 प्रतिशत और 20 से अधिक 0.8 प्रतिशत परिवारों की सदस्य संख्या है, जिसमें से अधिकतर परिवारों में से 11–15 सदस्य संख्या एक ही परिवार में निवास करती है। गाँव के स्कूलों का वर्गीकरण – गाँव में प्राथमिक स्कूल 35.2 प्रतिशत है एवं माध्यमिक स्कूल 46.4 प्रतिशत है, उच्चतर माध्यमिक 10 प्रतिशत है और आंगनवाड़ी 8.4 प्रतिशत है। सभी बच्चों को स्कूल भेजने वाले परिवारों की स्थिति 34.8 प्रतिशत परिवार के सभी बच्चे स्कूल जाते है किन्तु 163 परिवारों के सभी बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। बच्चों को स्कूल न भेजने का कारण मुख्यत: 12.26 प्रतिशत मजदूरी पर जाना, 24.53 प्रतिशत मजदूरी पर जाना, 24.53 प्रतिशत मवेशियों को चराना एवं 18.48 प्रतिशत भाई–बहनों को रखना तथा 44.7 प्रतिशत पलायन करना, गरीबी, पढ़ने की इच्छा न होना उपरोक्त सभी कारण है। प्राय: बच्चों को स्कूल पाठ्यक्रम से सम्बन्धित सभी पुस्तकें उपलब्ध कराने के आधार पर वर्गीकरण (हाँ) 98.8 प्रतिशत बच्चों को पाठ्यक्रम से सम्बन्धित पुस्तकें दी गई और शेष 3 प्रतिशत बच्चे अभी वंचित है। बच्चे शाला नियमित जाने के आधार पर वर्गीकरण। इसमें 83.6 प्रतिशत बच्चे शाला नियमित जाते है तथा 16.6 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते है। अधिकांश बच्चों के स्कूल न जाने का कारण है इसमें से 66.66 प्रतिशत की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। स्कूल की निर्धारित गणवेश के आधार पर वर्गीकरण इसमें अधिकांश स्कूलों में 98.44 प्रतिशत बच्चों की गणवेश तय है तथा 1.6 प्रतिशत स्कूल में गणवेश निर्धारित नहीं है। शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत बच्चों को अनिवार्य स्कूल भेजना अभिभावकों का दायित्व है, इसमें से 69.6 प्रतिशत ही जानते है तथा शेष 30.4 प्रतिशत नहीं जानते है तथा कुछ अभिभावकों को जानकारी ही नहीं है कि उन्हें कानून द्वारा दण्डित किया जायेगा। अधिकांश परिवारों में स्कूल भेजने के अलावा 88.6 प्रतिशत घर का काम करते है, जिसके अंतर्गत मजदूरी पर भेजना, भाई बहनों की देखभाल करना, खेती की देखभाल करना, गाय, भैंस, बकरी चराना इत्यादि काम करवाते है।

शिक्षा से सम्बन्धित सरकारी योजनाओं का सम्पूर्ण लाभ 69.2 प्रतिशत मिला तथा 30.8 प्रतिशत उन्हें शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं का लाभ नहीं मिला, क्योंकि उनमें अभी जागरुकता का अभाव है। कुछ बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते है और स्कूल आना बन्द कर देते है। इसका प्रमुख कारण अर्थोपाजन करना, पलायन करना, शादी कर देना आदि कारण है, जिससे की अनुसूचित जनजाति के शिक्षा के क्षेत्र में काफी पिछड़ा हुआ है। झाबुआ जिले की अनुसूचित जनजाति अभी भी सम्पूर्ण रुप से जन शिक्षा के प्रति जागरुक नहीं है, उनमें जागरुकता का अभाव है। वर्ष में कितनी बार गणवेश दिये जाने के आधार पर 6.8 प्रतिशत बच्चों को वर्ष में एक बार ही गणवेश दी जाती है तथा 93.2 प्रतिशत बच्चों को दो बार गणवेश

दी जाती है। स्कूल में निरीक्षण के आधार पर वर्गीकरण 57.6 प्रतिशत, स्कूलों का निरीक्षण किया जाता है तथा 42.4 प्रतिशत स्कूलों में कभी-कभी निरीक्षण किया जाता है। स्कूलों में निम्न अधिकारियों द्वारा निरीक्षण किया जाता है। 11.2 प्रतिशत उपसंचालक एवं 74.8 बीईओ 12 प्रतिशत मुख्य कार्यपालन अधिकारी तथा जिला पंचायत द्वारा 2 प्रतिशत अधिकारियों द्वारा निरीक्षण किया जाता है। शिक्षा के अधिकार के बारे में जानने सम्बन्धी वर्गीकरण के आधार पर 44.4 प्रतिशत जानते है तथा 55.6 प्रतिशत उत्तरदाता नहीं जानते है। गाँव में सूचना मिलने के आधार पर वर्गीकरण गाँवों में अधिकांश सूचना गाँव के खबरी व्यक्ति द्वारा 46 प्रतिशत दी जाती है तथा 42 प्रतिशत पंचायत द्वारा 72.2 प्रतिशत मोबाईल द्वारा, 2 प्रतिशत समाचार पत्र द्वारा गाँवों में सूचना मिलती है। अत: गाँवों में संचार के साधनों की कमी है। सरकार की शिक्षा से सम्बन्धित चलाई जा रही योजनाओं के आधार पर वर्गीकरण इसमें 48 प्रतिशत उत्तरदाता जानते है तथा 52 प्रतिशत नहीं जानते है तथा जो शिक्षा से सम्बन्धित योजनाएँ वे अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा, पाठ्यक्रम, नि:शुल्क गणवेश, मध्यान्ह भोजन आदि से सम्बंधित सभी योजनाओं के बारे में जानते है। कुछ उत्तरदाता नहीं जानते क्योंकि उनमें उनकी जागरुकता का अभाव है।

सुझाव एवं निष्कर्ष- विधेयक में सभी बच्चों को अनिवार्य रुप से प्रारंभिक से माध्यमिक स्कूल तक की शिक्षा देने पर जोर दिया गया और इस आयु वर्ग के बच्चों को शिक्षा देने से उनके भविष्य का आधार तैयार हो सकेगा। मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून 2009 का पास होना भारत के बच्चों के लिये ऐतिहासिक क्षण है। यह कानून सुनिश्चित करता है कि हर एक बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्राप्त हो और यह इसे राज्य, परिवार एवं समुदाय की सहायता से पूरा करता है। विश्व के कुछ ही देशों में मुफ्त और बच्चे पर केन्द्रित तथा मित्रवत् शिक्षा देने को सुनिश्चित करने का राष्ट्रीय प्रावधान मौजूद है। असमानताओं को दूर करने और गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त प्रयासों की जरुरत होगी। सरकार नागरिक, समाज, शिक्षक संगठनों, मीडिया और प्रतिष्ठित लोगों से प्रासंगिक भागीदारों को साथ बताने में यूनिसेफ निर्णायक भूमिका निभाएगा। मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून 2009 का पास होना भारत के बच्चों के लिए ऐतिहासिक क्षण है। भारत में इतिहास में पहली बार बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा का अधिकार दिया गया है, जिसे राज्य द्वारा परिवार और समुदाय की सहायता से हासिल किया जाएगा। विश्व के कुछ ही देशों में सभी बच्चों को अपनी क्षमताएँ विकसित करने में सहायता के लिए मुफ्त और बच्चों पर केन्द्रित तथा मित्रवत् शिक्षा दोनों को सुनिश्चित करने का राष्ट्रीय प्रावधान मौजूद है। यह एक अनुमान है कि वर्ष 2009 में भारत में 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के ऐसे 80 लाख बच्चे थे जो स्कूल नहीं जाते थे। स्कूल स्थानीय अधिकरणों, अधिकारियों, माता-पिता, अभिभावकों और शिक्षकों को मिलाकर स्कूल प्रबंध समितियाँ बनाए। ये "स्कूल प्रबंध समिति" स्कूल के विकास के लिए योजनाएं बनाएंगी, सरकार द्वारा दिए गए अनुदान का इस्तेमाल करेगी और पूरे स्कूल के वातावरण को नियंत्रित करेगी। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अनिवार्य नि:शुल्क शिक्षा आंदोलन से प्रेरित होकर संविधान लागू होने से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए प्रबन्ध करने का दायित्व राज्यों को सौंपा था। संविधान के इस आदेश की पूर्ति के लिए यद्यपि कहने को प्रारंभ से ही प्रयास किए जाते रहे है पर "दस वर्ष के अन्दर" कार्यक्रम को पूरा करने की 'ईमानदारी कोशिश' कभी

नहीं की गई, परिणाम सामने है। सन् 2000 तक 6 से 14 वर्ष के लगभग 67 प्रतिशत बच्चों के लिये ही शिक्षा का प्रावधान हो सका है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में ऊँचे-ऊँचे लक्ष्य निर्धारित किए गए, पर वे पूरे नहीं हुए। परिणाम यह है कि नौ पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो जाने के बाद भी 6 से 14 आयु वर्ग के बीच करोड़ों बच्चों में से लगभग 6 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जा रहे है। देश में कम से कम एक लाख ऐसी बस्तियाँ है, जहाँ एक किलोमीटर के भीतर स्कूली सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है।

- दसवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा संबंधी सभी को आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध करवाना। उनका नामांकन कर, गुणवत्तायुक्त शिक्षा, समानता के आधार पर शिक्षा प्रदान करना।
- गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करना।
- सबको शिक्षा सुलभ कराना।
- सर्वशिक्षा अभियान।
- दोपहर का भोजन कार्यक्रम।
- जनशाला

सुझाव -

- सिर्फ शहरों और जिलों तक ही सीमित न रहकर गाँवों और छोटे कस्बों तक शिक्षा के सही मायनों को पहुँचाया जाना शिक्षा नीति के सही कार्यान्वयन की आवश्यकता है।
- शिक्षा का अधिकार उतना ही प्रभाव दिखा पाएगा, जितना इसका प्रचार प्रसार होगा। हमारे यहाँ कई अतिमहत्वपूर्ण कानून बने है, लेकिन ये महज इसलिए कामयाब नहीं हो पाते, क्योंकि गाँव के लोगों को उनकी जानकारी ही नहीं है। ऐसे में सरकार को चाहिए कि वह कानून के प्रचार-प्रसार पर भी ध्यान दे। संचार के माध्यमों को सशक्त बनाये।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम का कार्यान्वयन किसी भी राज्य की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इस अधिनियम की सफलता वस्तुत: राज्य के ही हाथों में है। इसके लिए इस अधिनियम में कई जिम्मेदारियाँ निश्चित तौर पर सौंपी जाये।
- शिक्षा की सरकारी योजनाओं का प्रचार-प्रसार करवाना।
- शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत बच्चों को अनिवार्य स्कूल भेजना अभिभावकों का उत्तरदायित्व है।
- शिक्षा से संबंधित सरकारी योजनाओं के प्रति जागरुक करना।
- शिक्षा से संबंधित चलाई जा रही योजनाओं, नीतियों आदि का समय-समय पर निरीक्षण करना।
- शिक्षा के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर कर उसका समाधान करना।

सदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. शोध प्रबन्ध- शिक्षा के अधिकार का मध्यप्रदेश के अनुसूचित जनजाति

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

उच्च शिक्षा की चुनौतियॉ,समस्याएँ एवं निदान

• सुशील कुमार मिश्र

सारांश- स्वत्रंतता के पश्चात् उच्च शिक्षा का तीव्र गति से विकास हुआ है, स्वतंत्रता के समय हमारे देश में विश्वविद्यालयों की संख्या 27 थी। आज इसकी संख्या 789 है, (यू.जी.सी. की वेबसाइट के अनुसार फरवरी 2017 तक) महाविद्यालयों की संख्या 37204 है। उच्च शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ इसमें गिरावट भी आयी है। क्योंकि उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार की ओर ध्यान कम दिया गया, जिसके कारण छात्र, विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् भी बेरोजगार रह रहें है। आज छात्रों का ध्यान ज्ञनार्जन की तरफ कम तथा ऐन-केन प्रकारेन डिग्री प्राप्त करने की तरफ अधिक है। यह शिक्षित बेरोजगारी तथा अन्य समस्याओं के जन्म का कारण बन चुकी है। छात्रों में योग्यता का अभाव है जिस स्तर पर होनी चाहिए, इस कारण आज अनेक समस्यायें है। जिसका निदान ढूँढा जाना आवश्यक है। इस शोध पत्र में उच्च शिक्षा में चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द- शिक्षा, मानवता, तर्क, सत्य

शिक्षा का अर्थ अजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। विद्वानों ने उच्च शिक्षा के दो अभिप्राय बतायें है। (1) ऊँची शिक्षा या श्रेष्ठ शिक्षा (2) जो सामान्य शिक्षा से ऊँचे स्तर की हो। अत: उच्च शिक्षा का अर्थ उस श्रेष्ठ शिक्षा से है जो आजीवन चलती रहती है अत: शिक्षा अजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।

पंण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि – महाविद्यालय और विश्वविद्यालय का दायित्व – मानवता, सहनशीलता, तर्क, विचारों का विकास, सत्य की खोज करना है।

1948 में भारत सरकार ने राधाकृष्णन आयोग का गठन किया। जिसमें उच्च शिक्षा के निम्न उद्देश्य निश्चित किये गये थे –

1. ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ्य एवं मानसिक दृष्टि से प्रबुद्ध हों।
2. ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो राजनीतिक, प्रशासनिक, व्यापार या व्यावसाय, उद्योग (वाणिज्य) क्षेत्रों में नेतृत्व कर सकें।
3. ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना जो दूरदर्शी, बुद्धिमान और बौद्धिक दृष्टि से श्रेष्ठ हो ताकि समाज सुधार के कार्यो में सहयोग दे सकें।
4. विद्यार्थियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों- समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व और न्याय का संरक्षण एवं संवर्धन करना।
5. विद्यार्थियों में राष्ट्रीय अनुशासन की भावना का विकास करना।

उच्च शिक्षा का महत्व एवं आवश्यकता -

1. **उच्च ज्ञान की प्राप्ति-** नये ज्ञान की खोज और सत्य की पहचान करना। (छात्रो में ज्ञान-विज्ञान की क्षेत्र में नये-नये अविष्कार के योग्य बनाना)
2. **विशेषज्ञों का निर्माण -** उच्च शिक्षा द्वारा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म, दर्शन,

• अतिथि विद्वान (विधि) (NET, SET, Ph.D) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, विधि विभाग (म.प्र.)

ज्ञान, विज्ञान, विधि, कला इत्यादि के लिये विशेषज्ञ तैयार करना।

3. **कार्य कुशलता एवं नेतृत्व शक्ति का विकास** - उच्च शिक्षा द्वारा युवकों को उसके रूचि, रूझान, योग्यता और क्षमता के अनुसार किसी कार्य को कुशलता पूर्वक करने के योग्य बनाया जाना। (प्राय: यह देखा गया है कि उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करतें हैं)
4. **छात्रों के दृष्टिकोण को विकास** - जितना विस्तृत ज्ञान होगा उतना विस्तृत दृष्टिकोण होगा।
5. **राष्ट्र का बहुमुखी विकास** - किसी भी राष्ट्र के बहुमुखी विकास के लिये उच्च शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जिस पर किसी राष्ट्र का अर्थिक विकास निर्भर करता है।

उच्च शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक विकास होता है। उच्च शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन लाकर जीवन को सफल बनाता है अत: उच्च शिक्षा एक दोमुखी प्रक्रिया है।

प्राध्यापक व छात्र एक दूसरे से प्रभावित होते है। शैक्षणिक क्रिया तब सफल होती है जब एक व्यक्ति अपने ज्ञान के द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है। अत: हम कह सकते है कि शिक्षा वह है जो मानव को अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर अग्रेषित करती है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा में अनेक चुनौतियॉ एवं समस्याऐं है जिनका निदान खोजा जाना आवश्यक है जो निम्न है -

1) निर्देशन एवं परामर्श का अभाव - छात्र अपने माता-पिता, मित्रों या अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों के दबाव में या अयोग्य व्यक्तियों से परामर्श लेकर अपनी इच्छा से अपने रूचिकर विषयों का चयन नहीं कर पातें। जिससे आगें वे संकट में पड़ जाते है और परीक्षाओं में असफल हो जाते है। कई छात्र तो अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते है। किसी कारण यदि वे अपनी पढ़ाई पूरी भी कर लेते है तो उन्हें आगे अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है और उनका जीवन निराशा से भर जाता है।

अत: यह आवश्यक है कि निर्देशन एवं परामर्श को आवश्यक अंग बनाया जाए। जैसा की दिल्ली तथा बनारस के विश्वविद्यालयों ने इस दिशा में कार्य कर रहें है।

2) शिक्षा का गिरता स्तर - कई शिक्षाशास्त्रियों तथा शिक्षा से जुड़े उच्च अधिकारियों का यह मानना है कि शिक्षा का स्तर पहले की तुलना में गिर चुका है। पहले का दसवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्र आज के बी.ए., एम.ए. किये हुये छात्रों से अधिक योग्य था। इस गिरावट को मुख्य कारण निम्न है - (अ) प्रवेश नीति में असमानता (ब) योग्य तथा अनुभवी शिक्षकों का अभाव (स) छात्रों की संख्या में वृद्धि (द) दोषपूर्ण शिक्षण विधियॉ

उच्च शिक्षा में सुधार के लिये योग्य प्राध्यापकों की नियुक्ति, अतिरिक्त कक्षाओं

की व्यवस्था तथा पाठ्यक्रम को सुगम बनाकर एवं छात्र संख्या में कमी करके उपरोक्त समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

3) छात्र संघ चुनाव - उच्च शिक्षा में छात्रसंघ अनावश्यक सिद्ध हो रहा है - छात्रसंघ के पदाधिकारी अनावश्यक रूप से महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों के प्रबन्धन पर दबाव बनते है और प्रबन्धन कार्यो में हस्ताक्षेप किया जाता है। छात्रगण छात्रशक्ति का प्रदर्शन कर अनावश्यक कार्य के लिए प्राध्यापकों को बाध्य करते हैं। इस समस्या से निपटने के लिए छात्र संघो के उद्देश्य सुनिश्चित किये जाए तथा चुनाव पर नहीं बल्कि मेरिट के आधार पर छात्र संघो का संचालन हो।

4)दोष पूर्ण परीक्षा प्रणाली - आज के समय में परीक्षा प्रणाली में काफी सुधार की आवश्यता है। मात्र 03 घण्टे में 05 प्रश्नों के उत्तर देकर छात्र का मुल्यांकन करना उचित प्रतीत नहीं होता। इसके लिए सतत मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाया जाना चाहिए।

5) छात्र अनुशासनहीनता - उच्च शिक्षा की समस्याओं में यह एक बड़ी समस्या देखने को मिलती है कि छात्रगण अनुशासन हीन होते जा रहें। जिसका कारण उच्च का उद्दश्यहीन होना है। अनुशासन हीनता के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। (अ) परीक्षा के दौरान प्रध्यापको के साथ दुर्व्यव्यव्हार, (ब) अधिकारों का दुरूपयोग (स) अकारण हड़ताल (द) कक्षाओं का बहिष्कार एवं परीक्षाओं में अनुचित साधनो का प्रयोग।

उपरोक्त समस्याओं से निपटने के लिए छात्रों में चरित्र का निर्माण आवश्यक है, साथ ही निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था की जाए।

उच्च शिक्षा की समस्याओं और चुनौतियों से निपटने के लिए छात्रों के साथ-साथ प्राध्यापकों का भी महत्वपूर्ण योगदान होगा। जब तक प्राध्यापकगण अपने दायित्व का समुचित निर्वाहन नहीं करेंगे तब तक उच्च शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण नहीं बनाया जा सकेगा। प्राय: यह देखा गया है कि प्राध्यापकगण अध्ययन-अध्यापन के कार्यो में रूचि नहीं लेते और अन्य कार्यो मे अपना समय व्यतीत कर देंते है। जिससे छात्रगण हतोत्साहित होकर नियमित रूप से कक्षा में नहीं आतें। प्राध्यापकों को पूर्ण तैयारी के साथ नियमित रूप से अध्यापन कार्य करना चाहिए। छात्रों द्वारा यह शिकायत की जाती है कि प्राध्यापकगण प्राचार्य कक्ष या स्टाफ रूम में बैठकर अत्यधिक समय तक राजनीतिक बातें एवं अन्य घरेलू बातों में अपना समय देतें है। जिसका छात्रों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और छात्रगण अन्य साधनों द्वारा अपना पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए इधर-उधर भटकते है। प्राध्यापकगण छात्रों के उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन में लचीलापन दिखातें है। जिससे गंभीर एवं योग्य छात्र को नुकसान पहुँचता है।

उपसंहार - उच्च शिक्षा की चुनौतियॉ और समस्याओं के निदान के लिए छात्रों के साथ प्राध्यापकों को भी अपने दायित्व का निर्वहन सम्यक सर्तकर्ता के साथ करना चाहिए छात्रगण तभी अपने प्राध्यापकों को अपना आदर्श मानेंगे जब प्राध्यापकगण ईमानदारी एवं सर्तकर्ता से कार्य करेंगे। महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय राजनीति अखाड़ा न बने ऐसा प्रयास करना होगा तभी हम, हमारा समाज, हमारा देश विकास कर सकेगा। वर्तमान समय में नियमित प्राध्यापको की अत्यधिक कमी है सरकार ने इस दिशा में कार्य नहीं किया जिससे उच्च शिक्षा का ह्रास होता जा रहा है आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि छात्र, प्राध्यापक एवं सरकार इस दिशा में कार्य करेंगे। जिससे उच्च शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण बनाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. पाण्डेय, डॉ. रामसकल, (2012) भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास , श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2 पेज नं. 13
2. पाठक, पी.डी. (2018–19) शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, पेज नं. 23
3. अरिहन्त पब्लिकेशन, वर्ष 2016 शिक्षा एवं शोध अभियोगता पेज नं. 300
4. डेजी, कुमारी (2013) उच्च शिक्षा प्रणाली, लूसेन्ट पब्लिकेशन, पेज नं. 268
5. सिंह, सेवानी (2013) शिक्षा सिद्धांत एवं आधुनिक भारत में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा –2 पेज नं. 2
6. डॉ. शर्मा (2013) उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा –2
7. पाण्डेय, डॉ. रामसकल, (2012) शिक्षा के मूल सिद्धांत, श्री विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

शिक्षा का निजीकरण-समाधान या समस्या

• सिद्धार्थ मिश्र

सारांश- शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। हमारे देश में जनसंख्या का बढ़ता दबाव, कोशों की कमी की वजह से सरकार शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दे पा रही है। इसलिए सरकार ने इसे निजी क्षेत्र में सौपने का फैसला किया, जो शिक्षा के निजीकरण से सम्बन्धित है। शिक्षा के निजीकरण से आशय शिक्षा को निजी हाथों में सौंपना है। शिक्षा के निजीकरण से शिक्षा व्यवस्था में कुछ अनुकूल परिवर्तन आये है, वहीं दूसरी तरफ इसने गम्भीर समस्याओं को भी जन्म दिया है, जिनका यदि समय रहते समाधान नहीं किया गया तो यह देश की नींव को भी हिला सकती है। आधुनिक युग में खासतौर पर राज्य द्वारा उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद निजी निकायों को शैक्षणिक संस्थान खोलने की अनुमति दी गयी है। शिक्षा के ऊपर सरकार के पूर्ण एकाधिकार वाली स्थिति में बदलाव हुआ है, जिससे निजी संस्थाओं को फलने-फूलने का अवसर मिला तथा शिक्षा का निजीकरण होने से शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। शिक्षा के निजीकरण ने शिक्षा के स्तर पर सुधार कर शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया है।

मुख्य शब्द- अन्तर्निहित, निजीकरण, उदारीकरण, शैक्षणिक संस्थान, एकाधिकार, गुणवत्ता।

प्राचीन से ही शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग रही है क्योंकि शिक्षा मस्तिष्क का संवर्धन कर दक्षता प्राप्ति द्वारा जीवन को सन्तोषजनक बनाती है। शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण ओर तकनीकी दक्षता, शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट है। इस प्रकार यह कौशलो, व्यापारों या व्यवसायों, मानसिक, नैतिक और सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केन्द्रित है।

शिक्षा समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में कार्य करती है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 से अनुसार -"शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है, शिक्षा राष्ट्रीय सम्पन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है।" आज शिक्षा वह नींव है जिस पर आधुनिक समाज के स्तम्भ खड़े है। आज शिक्षा का सर्वव्यापीकरण हो गया है। आज अनौपचारिक एवं सस्ती शिक्षा आज अति विशिष्ट हो गयी है अधिकांश देशो में इसका राष्ट्रीयकरण हो गया है, लेकिन भारत जैसा विकासशील देश आर्थिक दबाव के कारण शिक्षा पर अधिक व्यय वहन नहीं कर सकता है।[1] हमारा शिक्षा पर व्यय हमारे सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2.8 प्रतिशत है जबकि विकसित देशो में सामान्यत: स्वीकृत मानदण्ड 6 प्रतिशत या उससे भी अधिक है। इसके फलस्वरूप शिक्षा यहां बड़े प्रचार से वंचित रही है और इसका उत्तर है, शिक्षा की निजीकरण।[2]

शिक्षा का निजीकरण का अर्थ शिक्षा के क्षेत्र में निजी संस्थाओं, कंपनियों के प्रवेश से है। यह प्रवेश स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा में सुधार, विकास व विस्तार आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए दिया गया था। तब से आज तक निजी क्षेत्र शिक्षा के क्षेत्र में अपना कभी

• अयोध्या, उत्तर प्रदेश

न समाप्त होने वाला अस्तिव स्थापित कर चुका है। यह पूर्णत: सत्य है कि कोई भी योजना या नीति अच्छे उद्देश्य से लागू की जाती है परन्तु उस योजना से जुड़े व्यक्ति अपनी सफलता, व सत्ता में वशीभूत होकर सामाजिक कल्याण को भूलकर स्वहितों की पूर्ति में लिप्त हो जाते है। यदि स्थिति शिक्षा के निजीकरण को लेकर हुई। शिक्षा के निजीकरण ने शिक्षा के स्तर में सुधार, विकास व फैलाव में बहुत मदद कर शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया है। इसे और बेहतर करने के लिए समाज, सरकार व निजी क्षेत्र को मिलाकर एक कमेटी बनानी चाहिए इससे शिक्षा का विकास होगा, लोग साथ मिलकर काम करेगे, इससे जो जिस क्षेत्र में मजबूत होगा, वह अपना योगदान उस क्षेत्र में करेगा। परन्तु निजीकरण की सफलता ने शिक्षा को मात्र आर्थिक रूप से समृद्ध वर्ग व अंग्रेजी शिक्षा विस्तार का रूप प्रदान किया है व बड़ी संख्या में जनसंख्या की इन विद्यालयों तक पहुंच बहुत ही सीमित है जिसमें सुधार की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा कोई वस्तु नहीं जिसे खरीदा या वेचा जाये।[3]

शिक्षा के निजीकरण की आवश्यकता इसलिए भी महसूस की जा रही है कि वर्षों से राज्य-प्रायोजित शिक्षा ने इस क्षेत्र को लगभग जनसेवा में तब्दील कर दिया और विशेषकर इसके प्रत्यक्ष लाभन्वितों (छात्रों) ने इसके महत्व को तरजीह नहीं दी है। अत: यदि शिक्षा देने के बदले उसकी सम्पूर्ण कीमत या आंशिक कीमत, शिक्षा शुल्क आदि के रूप में वसूल की जाती है, तो एक तो छात्र इसके महत्व को समझेगे, दूसरे इसे गंभीरता से लेंगे, जिससे उनकी और शिक्षा दोनों की गुणवत्ता बढ़ेगी।

भारत में सरकारी स्कूलों की खस्ता हालत को देखते हुए अभिभावक अपने बच्चों को अब निजी स्कूलों में भेज रहे है। अभिभावकों के निजी स्कूलों में भेजने के पीछे तीन कारण है। पहली यह निजी स्कूल बेहतर शिक्षा मुहैया कराते है, दूसरी सस्ती और तीसरी बात यह है कि बच्चों और उनके अभिभावकों के प्रति अधिक जवाबदेह होते है। अब प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा संस्थानों के निजीकरण किये जाने के क्या कारण है? इस पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है जिनमें से कुछ प्रमुख है। इनमें जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होना, सरकारी शिक्षा प्रणाली में कमी होना, निजी स्कूल बजट के हिसाब से भी सस्ते है, शिक्षा के नाम से आये हुये धन का दुरूपयोग, सुविधाओं की कमी, शिक्षा के लिए कोष का अभाव होना जबकि निजी स्कूल सरकारी स्कूलों के मुकाबले बेहतर और सस्ती शिक्षा मुहैया कराते है। सरकार इस वास्तविकता से आंख नहीं मूंद सकती है। इनसे बचने का सबसे आसान उपाय यह है कि सरकार छात्रों को फंड मुहैया कराए।[4]

किसी भी देश की आर्थिक व राजनैतिक ताकत उस देश के युवाओं के कंधो पर टिकी होती है। सदियों से युवा शक्ति के बल पर हम दुनिया में भारत का लोहा मनवाते आ रहे है, लेकिन आज देश की वहीं युवा शक्ति दो वक्त की रोटी के जुगाड़ के लिए दर दर की ठोकरे खाने पर मजबूर है और हालात इस कदर बिगड़ रहे है कि प्रतिदिन बढ़ती बेरोजगारी के कारण सबसे अधिक आत्महत्याओं का कलंक भी हमारे देश के माथे पर लगा हुआ है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों के ताजा आंकड़ों के मुताबिक प्रतिदिन 28-30 युवा खुद को काल के गाल में झोंक रहे है। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन, भारत सरकार और विभिन्न एजेसियों के ताजा सर्वेक्षण और रपट इस ओर इशारा करते है कि देश में बेरोजगारी का ग्राफ बढ़ा है। जिन युवाओं के दम पर हम भविष्य की मजबूत इमारत की आस लगाए बैठे है उसकी नींव की हालत दिन प्रतिदिन खोखली होती जा रही है और हमारी नीतियों के खोखलेपन को राष्ट्रीय पटल पर प्रदर्शित कर रही है। देश में बेरोजगारी के आंकड़े-चौकाने वाले है। पढ़े लिखे लोगों

में बेरोजगारी के हालात ये है कि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी के पद के लिए प्रबंधन की पढ़ाई करने वाले और इंजीनियरिंग के डिग्रीधारी भी आवेदन करते है। रोजगार के मोर्चे पर हालात विस्फोटक होते जा रहे है। हर तीन स्नातक में दो बेरोजगार है। देश में बेरोजगारी की समस्या के मूल कारणों पर यदि नजर डाला जाये, तो हम पाते है कि प्राय: लोग अन्य आर्थिक स्रोत के रूप में नौकरी को विशेष महत्व देते है। अतएव शिक्षित, अर्धशिक्षित और उच्चशिक्षित सभी वर्ग के लोग नौकरी को ही प्राथमिकता ज्यादा देते है। अत: नौकरी की समस्या हमारे बीच राष्ट्रीय समस्या बनती जा रही है। जिसका मुख्य कारण हमारे देश की शिक्षा प्रणाली है, जो कि युवा पीढ़ी को स्वावलंबी बनाने और उनमें आत्मविश्वास कायम करने में नाकाम रही है।[5]

एनुअल स्टेटस ऑफ एजूकेशन रिपोर्ट भारत में पिछले दस साल से जारी हो रही है, इस रिपोर्ट के अनुसार पांचवी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे दूसरी कक्षा का पाठ नहीं पढ़ पाते है। आठवीं के बच्चों को जोड़ना-घटाना, भाग देना नहीं आता है इस रिपोर्ट के अनुसार तीसरी कक्षा में पढ़ने वाले 42.3 प्रतिशत बच्चे कक्षा एक की विषय सामग्री पढ़ पाते है। कक्षा तीन के 27.7 प्रतिशत बच्चे दो अंकों वाला घटाना कर पाते है, जबकि कक्षा पांच के 26 प्रतिशत बच्चे ही सामान्य भाग दे पाते है सरकारी स्कूलों की हालत देखकर शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा मिला है। पढ़ाई का कमजोर स्तर व अकुशल प्रबंध संचालन व नये-नये प्रयोगों का अभाव, धन का अभाव, पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय स्तर के असमानता होना व सरकारी शिक्षा संस्थानों में शिक्षा के मानकीकरण का अभाव जैसे खेलकूद का मैदान न होना, आकर्षक भवन, विद्यालय एक ही कमरे में संचालित होना व पानी तथा शौचालय की व्यवस्था न होना तथा बच्चों को बैठने के लिए कुर्सी मेज आदि का इस्तेमाल न होना, शिक्षा कमीशनों (मुदलिअर कमीशन, राधाकृष्णन आयोग तथा कोठारी कमीशन) की अनुशंसाओं का अंशत: भी पालन न होना, लोगों में सरकारी शिक्षण संस्थाओं के प्रति आकर्षण व विश्वास का अभाव, सरकारी शिक्षा संस्थाओं में आधुनिक शिक्षा पद्धति का अभाव, बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कारों का अभाव, भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों को पोषित करने में आज भी शिक्षा पद्धति विफल साबित हुई है। ये कुछ कारण है जो शिक्षा को निजीकरण के लिए प्रोत्साहित करते है, लेकिन कुछ लोगों ने शिक्षा के निजीकरण को अपने लाभ का जरिया बना लिया है, उनकी कोशिश होती है कि वे अपनी शिक्षा रूपी दुकान को आधुनिक रूप से सजा-संवारकर लोगों के बीच पेश करें, ताकि इस आकर्षण में आकर लोग उनकी ओर आकर्षित होने लगे। भारत में सुप्रीम कोर्ट ने पिछले दिनों कहा है कि "शिक्षा को धंधा बनाने की अनुमति नहीं दी ज सकती" लेकिन निजी शिक्षण संस्थाओं ने इसका दुरूपयोग कर तमाम तरह के शुल्क के नाम पर शिक्षा को वसूली और मुनाफाखोरी का जरिया बना दिया है। देश के सुप्रीम कोर्ट ने इस पर रोक लगाते हुए दान के रूप में वसूली जाने वाली कैपिटेशन फीस को अवैध करार दिया है। निजी स्कूलों में दाखिले के इच्छुक बच्चों के अभिभावकों के लिए दान का खेल मुसीबल का सबब बन गया है। स्कूल में बच्चे का दाखिला करवाने से पहले तमाम तरह की फीस के अलावा दान के रूप में भारी-भरकम रकम ऐठते है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19 (1) जी के तहत शिक्षा मौलिक अधिकार है, इसलिए शिक्षा के नाम पर किसी भी व्यक्ति या संस्था को व्यवसाय करने की छूट नहीं दी जा सकती है।[6]

कहीं-कहीं मकानों के भीतर एक या दो कमरों में स्कूल चलाये जा रहे है। बगैर खेलकूद मैदानों के निजी विद्यालय कार्यरत है। जो बच्चों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक

है। एक-एक कक्षा में अधिक से अधिक संख्या में बच्चों को अध्ययन कराया जाता है। पर्याप्त संसाधन व मानक नहीं होते फिर भी इस संस्थानों को चलाने की मान्यता मिल जाती है, जो देश का भविष्य कहलाने वाले बच्चों से धोखा है। शिक्षा के निजीकरण का प्रभाव यह पड़ता है कि इन शिक्षण संस्थाओं में बहुत सी कमियां पाई जाती है। यहां पर ज्यादातर निजी शिक्षण संस्थाओं में मनमानी फीस वसूली जाती है तमाम तरह के शुल्क जिनको भवन फीस, कम्प्यूटर फीस, बिजली फीस आदि शामिल है। इनके अतिरिक्त अधिकतर निजी संस्थाओं के पास स्वयं के भवन व खेलकूद के पर्याप्त साधन नहीं है।[7]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शिक्षा जो कि देश की नींव के बीज होती है, उसके प्रति इस प्रकार रवैया नहीं होना चाहिए। बच्चे देश का भविष्य होते है और उनके प्रति हमारी नैतिक जिम्मेदारी होती है। इसके लिए ऐसे निजी शिक्षण संस्थाओं पर नकेल कसें जो कि शिक्षा नीति के मानदण्डों को पूरा नहीं करती और न ही बच्चों के भविष्य के प्रति जागरूक है और अच्छी निजी एवं सरकारी शिक्षण संस्थानों का विकास किया जाए जिसमें स्वस्थ वातावरण का विकास हो और शिक्षा के पावन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके साथ ही देश व समाज को सही दिशा मिल सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कुमार कृष्ण, 1998 शैक्षिक ज्ञान और वर्चस्व दिल्ली ग्रन्थशिल्पी www.essays
2. in hindi : com/education.
3. अग्रवाल जे.सी., 1968 स्वतंत्र भारत में शिक्षा का विकास-दिल्ली : आर्य बुक डिपो
4. रैना विनोद, 2009 शिक्षा का अधिकार कानून शिक्षा विमर्श, दिल्ली : नवम्बर-दिसम्बर
5. pravakta.com/privatization-and-commercialization-of-education-is-pushing.
6. शिक्षा अभिव्यक्ति (वार्षिक अंक) 3-4, 2004-05
7. मिश्र समीरात्मज, निबंध मंजूशां : द्वितीय संस्करण।

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

चयनात्मक प्राणायाम से छात्राओं के हीमोग्लोबीन के स्तर के प्रभाव का अध्ययन

• वनिता चंद्रात्रे

सारांश- इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह है कि ओम प्राणयाम, उज्जयी प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम का छात्राओं के हीमोग्लोबीन के स्तर पर होने वाला प्रभाव का परीक्षण करना है। नूपुर नर्सिग अकेडेमी, वड़ोदरा के 40 छात्राओं जिनकी आयु 18 से 23 थी, उन्हें सोद्देश्य नमूना चयन पद्धति से फरवरी 2019 में चयन किया था। उन्हें दो समूह में (1) प्रायोगिक समूह -20 (2) विभाजित करके ओम प्राणायाम, उज्जयी प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास रोज शाम को 30 मिनिट चार सप्ताह के लिये प्रायोगिक समूह को प्रशिक्षण देकर पूर्व और पश्चात का परीक्षण दोनो समूह के लिये पेथोलोजी पद्धति से व्रज पेथोलोजी, वड़ोदरा द्वारा हिमोग्राम अहेवाल तैयार करके, सोशल साइन्स द्वारा मान्यता प्राप्त स्टेटेस्टीकल पेकेज द्वारा युग्मित टी (Pair-test) परीक्षण किये गये थे। नियंत्रित समूह को कोई भी प्रशिक्षण नहीं दिया था। इससे परिणाम यह आया था टेबल- 1, 2, 3 के अनुसार टी- परीक्षण के लिये (t-test) प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह के हीमोग्लोबीन स्तर के पूर्व और पश्चात परीक्षण के तुलनात्मक आँकड़े दिखाई देते थे। प्रायोगिक समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर का औसत (Mean) और मानक विचलन (SD)के मूल्य का पूर्व परीक्षण 10.94 पाया गया है।

मुख्य शब्द- ओम प्राणायाम, उज्जयी प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम, हीमोग्लोबिन

परिचय- चयनात्मक प्राणायाम से छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर का प्रभाव, यह शोध अध्ययन था। इसमें छात्राओं की आयु 18 से 23 थी। इसमें ओम प्राणायाम (अ. यो. द. प्रथम, पान-89) उज्जयी प्राणायाम (हठरत्नावली 2/13-15) नाड़ीशोधन प्राणायाम (हठरत्नावली 3/86) यह स्वतंत्र चल (IV) और छात्राओं का हीमोग्लोबिन का स्तर सहायक चल (DV) था। कुछ पूर्व शोधपत्र की समीक्षा करने से योग (प्राणायाम सहित) का अध्ययन किया था। आयर्न, ऑक्सीजन, हीमोग्लोबिन के स्तर पर सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुआ था। (ज्येथी-2013) फेफडों की वायु प्रवाहित, वायुक्षमता, आंतरिक बल, कार्य क्षमता में वृद्धि हुयी थी। (सी. अशोक- 2010) हीमोग्लोबिन में वृद्धि होने से एन्टी तनाव का प्रभाव पेरासिस्पेथेटीक डोमीनन्स पर हुआ था। (मूलडून, अेट.अल.-2015) तनाव कम होने से ल्यूकोसीटस भी कम हुये थे। (किंग राय, अेनन-1999) सिम्पेथेटीक नर्वस सिस्टम पर प्रभाव पड़ने से रोगप्रतिकारक शक्ति में वृद्धि हुई थी। (मेथ्युज के.अे., अेट.अल.-1995) नाड़ीशोधन प्राणायाम से हीमोग्लोबिन में वृद्धि हुई थी। (डॉ. विजय कुमार -2003 परिक्षा के तनाव में प्राणायामक रने से लिपीड प्रोफाईल कम हुआ और लिम्फोसिट स्तर में वृद्धि हुयी थी। (स्वप्ना सुब्रमणीयन-2012) प्लेटलेट काउन्ट, क्लोटींग के समय में वृद्धि हुई थी। (पुरोहित, ओट.अल.-2011) लहू के ऑक्सीजन में वृद्धि हुई थी (क्रिष्ना शर्मा-2014) सुदर्शन क्रिया योग से हीमोग्लोबिन स्तर में वृद्धि हुई थी। (डॉ. कामाख्या कुमार-2018) अनेमिक रोगो में हीमोग्लोबीन की वृद्धि हुई थी।

• पीएच.डी. रिसर्च स्कालर लकुलीश योग युनिवर्सिटी हायर स्टडीज और रिसर्च एकेडेमी, छारोडी, गुजरात, भारत

(रामनाथ-2013) योग वृद्धिंगत, संरक्षणात्मक, उपचारात्मक, क्षमतावर्धक है। दवा के बिना, खर्च के बिना, योग जीवन का स्तर बढ़ाता है और संपूर्ण स्वस्थता प्राप्त होती है। हीमोग्लोबिन का स्तर भी बढ़ा था। (मदन मोहन - 2008)

उद्देश्य- इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह है कि चयनात्मक प्राणायाम से 40 छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर का प्रभाव का अध्ययन करना था। साहित्यिक सर्वेक्षण के अनुसार चयनात्मक प्राणायाम से हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाने के लिये उपयुक्त है, इसलिये संशोधन की परिकल्पना दिशात्मक है।

- दिशात्मक परिकल्पना (Directional Hypothysis) (H_1) चयनात्मक प्राणायाम का समारात्मक प्रभाव केवल प्रायोगिक समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर होगा।
- दिशात्मक परिकल्पना (H_2) - चयनात्मक प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव नियंत्रण समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर नही होगा।
- दिशात्मक परिकल्पना (H_3) - चयनात्मक प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव तुलनात्मक तरीके से प्रायोगिक और नियंत्रण समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर होगा।

वास्तव में फेंफड़ा और कोशिकाओं में ऑक्सीजन और कार्बन डाईऑक्साइड की लेन देन करने के लिये और रोग प्रतिकारक शक्ति के लिये हीमोग्लोबिन का स्तर उच्चतम होना चाहिये। इसलिये सर्वेक्षण के अनुसार और स्वास्थ्य पर सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिये ओम प्राणायाम , उज्जायी प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम का छात्राओं के हीमोग्लोबिन स्तर पर सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने के लिये इस संशोधन का अभ्यास किया गया था।

संशोधन की क्रियाविधि (Methodology)- नमूना और नमूना चयन (Sample & Sampling) इस अभ्यास के लिये नृपुर नर्सिंग एकेडेमी, बड़ोदरा के 40 छात्राओं को नमूना तरीके फरवरी - 2019 में 4 सप्ताह के लिये किया गया था। सोद्देश्य नमूना चयन पद्धति (Purposive Sampling Method) से उनका चयन किया था। उनकी आयु 18 से 23 वर्ष की थी।

अनुसंधान डिजाईन (Research Design) -

Research Design (Pre-Post/Experimental Group & Control Group Design)

संशोधन डिजाइन (पूर्व-पश्चात/प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह डिजाइन)

- $R, O_1 X O_2$ – Experimental Group (EG) प्रायोगिक समूह
- $R, O_3 O_4$ - Control Group (CG) नियंत्रित समूह
- R = संशोधन डिजाइन (पूर्व-पश्चात / प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह डिजाइन)
- O_1 = प्रायोगिक समूह का हीमोग्लोबीन स्तर का पूर्व परीक्षण
- X = प्रायोगिक समूह को हर दिन (रविवार छोड़ के) शाम को ओम प्राणायाम, उज्जयी प्राणायाम और नाड़ी शोधन प्राणायाम का 30 मिनिट के लिये प्रशिक्षण।

- O_2 = प्रायोगिक समूह का प्राणायाम के अभ्यास के चार सप्ताह के बाद हीमोग्लोबीन स्तर का पश्चात परीक्षण
- R = संशोधन डिजाइन (पूर्व-पश्चात / प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह डिजाइन)
- O_3 = नियंत्रण समूह का हीमोग्लोबीन स्तर का पूर्व परीक्षण
- नियंत्रण समूह को कोई भी प्रशिक्षण नही दिया गया था।
- O_4 = नियंत्रण समूह का हीमोग्लोबीन स्तर का पश्चात परीक्षण।

प्रक्रिया (Procedure) – 40 छात्राओं को दो समूह में (1) प्रायोगिक समूह - 20 (2) नियंत्रण समूह - 20 विभाजन करके ओम प्राणायाम (अ. यो. द. प्रथम, पान -89) 10 मिनिट, उज्जयी प्राणायाम (हठरत्नावली, 2 /13-15) 10 मिनिट, नाड़ीशोधन प्राणायाम (हठरत्नावली, 3 / 86) 10 मिनिट के अनुसार कुल 30 मिनिट अभ्यास रोज शाम को चार सप्ताह के लिये प्रायोगिक समूह को प्रशिक्षण देकर पूर्व और पश्चात का परिक्षण दोनो समूह के लिये पैथोलोजी पद्धति से ब्रज पेथोलोजी, वड़ोदरा द्वारा हिमोग्राम अहेवाल तैयार करके, सोशल साइन्स द्वारा मान्यता प्राप्त स्टेटेस्टीकल पेकेज (SPSS) द्वारा युग्मित टी (Pair t-test) परीक्षण किये गये। नियंत्रित समूह को कोई भी प्रशिक्षण नहीं दिया था। प्रायोगिक समूह के छात्राओं को प्राणायाम में यथाशक्ति धीरे-धीरे पूरक, कुंभक और रेचक करने के लिये सूचना दी थी और सभी छात्राओं को सामान्य आहार लेने के लिये सूचना दी गयी।

परिणाम -

टेबल-1 (टी-परिक्षण)

दिशात्मक परिकल्पना (H_1) (Directional Hypothysis) – चयनात्मक प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव केवल प्रायोगिक समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबीन के स्तर पर होगा। प्रायोगिक समूह के प्रशिक्षण पूर्व और पश्चात परीक्षण की सांख्यकीय गणना के आधार पर हीमोग्लोबीन के स्तर की तालिका निम्नवत् है।

प्रायोगिक समूह के प्रशिक्षण पूर्वक और पश्चात परीक्षण

परीक्षण	छात्राओं की संख्या	औसत मूल्य (Mean value)	मनांक विचलन (SD)	औसत प्रमाणभूल (SE_M)	स्वतंत्र संख्या (df)	टी-मनांक (t-value)	सार्थकता का स्तर (Level of Significants)
पूर्व परीक्षण	20	10.94	1.37	0.12	19	2.98	0.01
	20	11.3	1.28				

ग्राफ - 1

प्रायोगिक समू के प्रशिक्षण पूर्वाक और पश्चात परीक्षण

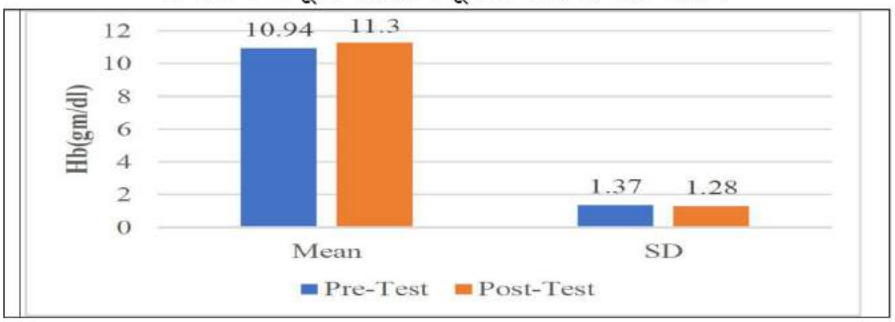

सारणी –1 के अनुसार हमें दिखाई देता है कि टी– परीक्षण के लिये प्रायोगिक समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर के औसत मूल्य का पूर्व परीक्षण 10.94 था और चार सप्ताह के प्राणायाम कके अभ्यास के बाद का पश्चात परीक्षण में वृद्धि होकर 11. 30 हो गया था। यह परीक्षण युगात्मक टी–परीक्षण द्वारा किया गया था। टी–मूल्यांक 2.98 और सार्थकता की कक्षा 0.01 थी। यह परिणाम सांख्यकीय और उच्चस्तरीय सार्थकता दर्शाता है। प्रायोगिक समूह के हीमोग्लोबीन स्तर का (SD) मानांक विचलन का पूर्व परीक्षण 1.37 और पश्चात परीक्षण 1.28 था। (df) स्वतंत्र संख्या 19 थी और (SE_M) औसत प्रमाणभूल 0.12 थी।

सारणी– 2 (टी– परीक्षण)

दिशात्मक परिकल्पना (H_2) - चयनात्मक प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव नियंत्रण समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर नही होगा। नियंत्रण समूह के प्रशिक्षण पूर्व और पश्चात परीक्षण की साख्यकीय गणना के आधार पर हीमोग्लोबिन के स्तर की तालिका निम्नवत् प्रदर्शित की जा रही है।

नियंत्रण समूह के प्रशिक्षण पूर्वक और पश्चात परीक्षण

परीक्षण	छात्राओं की संख्या	औसत मूल्य (Mean value)	मानांक विचलन (SD)	स्वतंत्र संख्या (df)	टी– मनांक (t-value)	सार्थकता का स्तर (Level of Significants)
पूर्व परीक्षण	20	11.45	1.15	19	1.36	No Significant
पश्चात परीक्षण	20	11.3	1.28			

ग्राफ – 2

नियंत्रण समूह के प्रशिक्षण पूर्वक और पश्चात परीक्षण

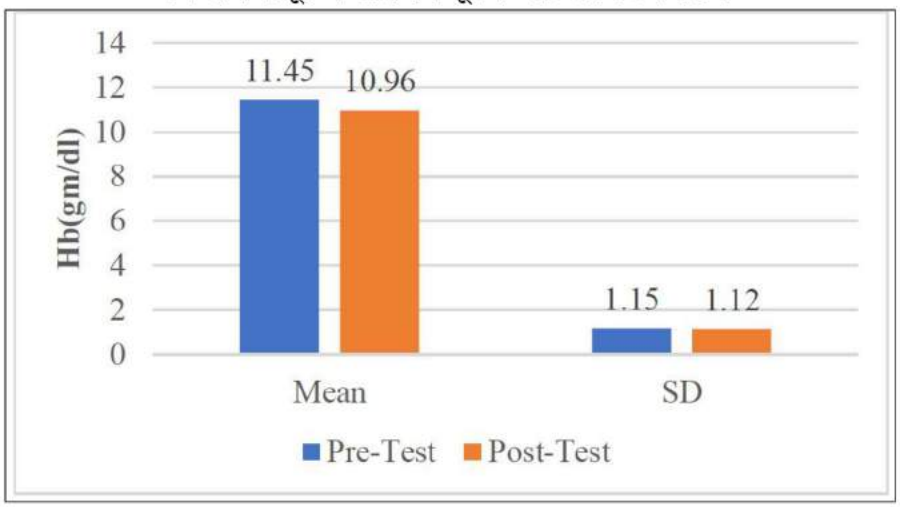

सारणी –2 के अनुसार टी– परीक्षण के लिये यह दिखाई देता है कि नियंत्रित समूह के (20) छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर के औसत मूल्य परीक्षण 11.45 और पश्चात परीक्षण 10.96 था। मानांक विचलन का पूर्व परीक्षण 1.15 और पश्चात परीक्षण 1.12 था।

स्वतंत्र संख्या 19 थी और टी – मूल्यांकन 1.36 आया था। नियंत्रित समूह को कोई अभ्यास दिया गया नहीं था इसलिये (No Significants) सार्थकता का स्तर प्राप्त नहीं हुआ था।

सारणी – 3 (टी – परीक्षण)

दिशात्मक परिकल्पना (H_3) - चयनात्मक प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव तुलनात्मक तरीके से प्रायोगिक और नियंत्रण समूह के छात्राओं के हीमोग्लोबिन के स्तर पर होगा। प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के पश्चात परीक्षण की सांख्यकीय गणना के आधार पर हीमोग्लोबिन के स्तर की तालिका निम्नवत् प्रदर्शित की जा रही है।

परीक्षण	छात्राओं की संख्या	औसत मूल्य (Mean value)	मानांक विचलन (SD)	स्वतंत्र संख्या (df)	टी-मनांक (t-value)	सार्थकता का स्तर (Level of Significants)
प्रायोगिक समूह	20	11.30	1.28	38	0.90	No Significant
नियंत्रण समूह	20	10.96	1.12			

ग्राफ – 3

प्रायोगिक समूह और नियंत्रण समूह के हीमोग्लोबीन स्तर के पश्चात परीक्षण

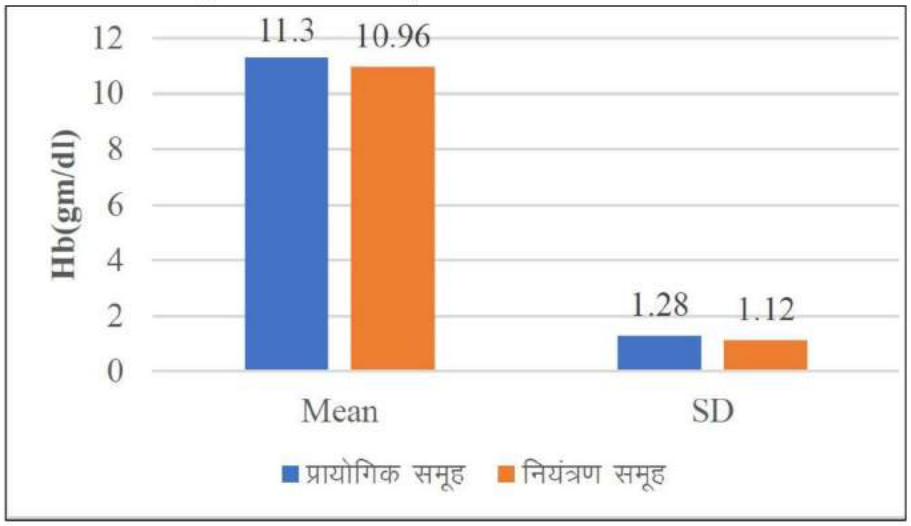

सारणी – 3 के अनुसार टी – परीक्षण के लिये प्रायोगिक समूह और नियंत्रित समूह के हीमोग्लोबीन स्तर के पश्चात परीक्षण के तुलनात्मक आंकड़े दिखाई देते है। प्रायोगिक समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर का औसत मूल्य का पश्चात परीक्षण 11.30 था और नियंत्रित समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर का औसत मूल्य का पश्चात परीक्षण 10.96 था। प्रायोगिक समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर का मानांक विचलन का पश्चात परीक्षण 1.28 था और नियंत्रित समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर का मानांक विचलन का पश्चात परीक्षण 1.12 था। स्वतंत्र संख्या 38 थी और टी – मूल्यांकन 0.90 था। नियंत्रित समूह को कोई अभ्यास दिया गया नहीं था इसलिये (No Significants) कोई सार्थकता का स्तर प्राप्त नहीं हुआ है।

इस तरह सारणी – 1, 2, 3 के अनुसार परिणाम यह प्राप्त हुआ है कि $P<0\text{-}01$ यह

सार्थकता का परिणाम प्राप्त हुआ है। प्रायोगिक समूह के 20 छात्राओं के हीमोग्लोबीन स्तर के औसत मूल्यांकन 10.94 से 11.30 तक बढ़ोतरी होने से हीमोग्लोबीन के सार्थकता का स्तर 0.01 प्राप्त हुआ है। $P<0.01$ यह परिणाम अनुकूल आदर्श और समाधान कारक प्राप्त हुआ था।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ओम प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम का अभ्यास करने से छात्रों की जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि हुई थी। $P<0$-01 उच्चत्तम स्तर की सार्थकता प्राप्त हुई थी। सामान्य स्वास्थ्य से उच्चतम स्तर का स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये यह प्राणायाम उपयुक्त है। अनेमिक रोगों के लिये भी यह एक चिकित्सा तरीके भी यह प्राणायाम कर सकते है। नियमित और दीर्घकालीन अभ्यास करने से परिणाम अधिक अच्छा होता है। योग एक सहायक चिकित्सा तरीके विविध क्लीनिकल कंडीशन में सूचित कर सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. अष्टांग योग दर्शिका, प्रथम पान नं. स्वामी राजर्षि मुनी, लाइफ मिशन ट्रस्ट, 2013
2. हठरत्नावली, 2/13-14, 3/86, श्रीनिवास भट्ट, ओम श्री डिवाईन पब्लिकेशन हरीयाणा 2018
3. Jyothi Chakrabarty et. al.2013, Effectiveness of pranayama on the levels of serum protein thiols and glutathione in cancer patients undergoing radiation therapy. Indian Journal Physio Pharmacol, Volume : 57, Issue :03, Page : 225-232
4. C Ashok, 2010 Impact of asanas and pranayama on blood oxygen saturation level, British Journal of Sports, Volume 44, Issue supply 1
5. Muldoon MF, et. al. 1995, Effects of acute psychological stress of serum lipid levels, hemoconcentration, and blood viscosity. Arch Intern Med, 155(6) : 615-620.
6. King Roy MD and Ann Brownstone, 1999, Neurophysiology of Yoga Meditation. International Journal of Yoga Theraphy, 9: 9-17.
7. Matthews KA, et al., 1995, Sympathetic reactivity to acute stress and immune response in women. Psychosom Med, 57: 564-71.
8. Dr Vijay Kumar Singh, November 2003, The Effect of Nadisodhan Pranayama on Blood Hemoglobin among healthy volunteers, International Journal of Yoga and Allied Sciences, Vol. 1, Issue – 1
9. Swapna Subramanian, 2012, Role of sudarshan kriya and pranayam on lipid profile and blood cell parameters during exam stress: A randomized controlled trial, ljoy International Journal of Yoga, Volume :5(1), Page : 21-27.
10. Purohit G, et. al., 2011, Effect of Yoga on various hematological parameters in young healthy individuals., Indian J Appl Basic Med Sci, 17: 53-6.
11. Dr. K. Krishna Sharma, 2014, The Effect of Yoga Therapy on Blood Oxygen Level, Indian Journal of Research, Volume : 3 Issue : 7

12. Sayyed A, et al. 2010, Study of lipid profile and pulmonary functions in subjects participated in Sudarshan Kriya Yoga. Al Ameen J Med Sci, 3 (1) : 42-9.
13. Dr. Kamakhya Kumar, 2018, Changes in Hemoglobin among House Wives through Yoga, International Journal of Yoga and Allied Sciences, Volume : 7, Issue : 2, Pages : 113-117.
14. Ramanath B et al., 2013 A randomized control study of yoga on anemic patients Int J Res Med Sci, 1 (3) : 240-242.
15. Madanmohan, et.al. Effect of six week yoga training on weight loss following step test, respiratory pressure, handgrip strength and handgrip endurance in young healthy subjects. Indian J of Physiol and Pharmacol, 2008; 52 : 164-70.

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

बिहार में बढ़ता कृषि उत्पादन एवं कृषि विकास की संभावनाए

• शैलेन्द्र मालाकार

सारांश- बिहार में कृषिगत उत्पादन एवं उत्पादकता में निरंतर वृद्धि तो देखी जा रही है परन्तु कृषकों की आय में न्यून इजाफा हो रहा है। बिहार के किसानों के उसकी उपज का न्यूनतम समर्थन मुल्य पर खरीदी नहीं हो पा रही है। अतः खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को प्राप्त करते हुए किसानों की दोगुनी आय के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है। बिहार में कृषि उपज के बेहतर भंडारण, सप्लाई चेन, मैनेजमेंट, मजबूत आपूर्ति, श्रृंखला, मजबूत कृषिगत आधारभूत ढ़ाचा, विपणन के द्वारा कृषकों को उसकी उपज का लाभकारी मुल्य मिलेगा, परिणाम स्वरूप कृषि में निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार बिहार में कृषि का सतत् एवं समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

मुख्य शब्द- बसावट, कृषि, उत्पादन, विकास

कृषि प्राथमिक आर्थिक गतिविधियों में शामिल एक मुख्य आर्थिक क्रिया है। मनुष्य के स्थायी बसावट के लिए कृषि ही मुख्य कारक है। फसलों की रोपाई से लेकर उसके तैयार होने तक में एक लम्बी अवधि लगती है। इस अवधि में फसल को जंगली पशुओं से बचाने एवं बेहतर देखभाल हेतु मनुष्य खेत के पास ही स्थायी रूप से रहने लगें और मानव अधिवास में स्थायी प्रवृति का विकास हुआ। बिहार के सकल घरेलु उत्पादन में कृषि की महती भूमिका है। वर्ष 2019–20 में बिहार के जीडीपी में कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों की भूमिका 18.7 प्रतिशत है। बिहार की 88.7 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है।[1] बिहार के कुल श्रमशक्ति का 75 प्रतिशत कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों में संलग्न है।[2] इस प्रकार बिहार में कृषि न सिर्फ भोजन उपलब्ध कराती है बल्कि अपनी भूमिका का विस्तार करते हुए बिहार की 75 प्रतिशत श्रमशक्ति को आय और जीविका प्रदान करती है। कृषि बिहार की अर्थव्यवस्था का आधार है। बिहार में कृषिगत उत्पादन में वृद्धि ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया है। लोगो की आय निरंतर वृद्धि सुनिश्चित हुई है जिसने माँग को बढ़ाकर बिहार की अर्थव्यवस्था में दो अंक की वृद्धि दर को प्राप्त किया है। कृषि बिहार के सकल घरेलु उत्पादन में निरंतर सकारात्मक वृद्धि को सुनिश्चित करने में निर्णायक भूमिका का निर्वहन कर रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य -

- बिहार में कृषिगत फसलों के उत्पादन प्रवृति का विश्लेषण करना।
- बिहार में कृषि विकास की योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण करना।
- बिहार में कृषि विकास की संभावनाओं का विश्लेषण एवं उपाय।

परिसंकल्पना-

1. कृषिगत उत्पादन पर प्राकृतिक कारकों का प्रभाव पड़ता है।
2. सरकारी योजनाएं एवं नीतियों से कृषि उत्पादन प्रभावित होती है।

• शोधार्थी, भूगोल विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

अनुसंधान क्रियाविधि- इस शोधपत्र में द्वितीयक आकड़ों का उपयोग किया गया है। आकड़ों का संग्रहण बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2020-21, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, जिला गजेटियर, आदि से किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र- बिहार भारत के उत्तरी पूर्वी भाग में स्थित एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक राज्य, जिसका कुल क्षेत्रफल 94.163 वर्ग किलोमीटर है। इसका भौगोलिक विस्तार $24020^{0}10^{00}$ से $27031^{0}15^{0}$ उत्तरी अक्षांस तथा देशांतरीय विस्तार $83019^{0}5^{00}$ से $88017^{0}40^{00}$ पूर्वी देशांतर तक है।

बिहार में कृषिगत उत्पादन में निरंतर वृद्धि दृष्टिगत हो रही है। वर्ष 2015-16 से 2019-20 की मध्यावधि में कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों का सकल राज्य घरेलू उत्पाद 4.5 प्रतिवर्ष की वार्षिक दर से बढ़ा है। हालाँकि सकल राज्य घरेलु उत्पादन में कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों का योगदान निरंतर कम हो रहा है इसकी मुख्य वजह कृषितर क्षेत्रों के बेहतर प्रदर्शन है। यद्यपि सकल राज्य घरेलू उत्पादन में कृषि एवं सहवर्ती क्षेत्रों का योगदान कम हुआ है परन्तु श्रमशक्ति के समायोजन में कृषि के उत्पादन में हो रही वृद्धि को नीचे की तालिका से समझा जा सकता है।

सकल राज्य घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा
(2015-16 से 2019-20) प्रतिशत

क्षेत्र	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19 (अनंतिम)	2019-20 (त्वरित)	वार्षिक चक्रवृद्धि दर प्रतिशत
कृषि, वन एवं मत्स्याखेट	21.2	21.7	21.4	20.0	18.7	4.5
फसल	12.3	12.7	12.4	11.1	9.7	1.6
पशुधन	5.7	5.6	5.7	5.8	5.9	9.1
वानिकी एवं काष्ठ उत्पादन	1.5	1.8	1.7	1.6	1.52	6.9
मत्स्याखेट एवं जल कृषि	1.7	1.5	1.7	1.6	1.54	6.6

टिप्पणी- (क) 2018-19 के आंकड़े अनंतिम अनुमान और 2019-20 के आंकड़े त्वरित अनुमान है।
(ख) वार्षिक चक्रवृद्धि दर की गणना 5 वर्षों (2015-16 से 2019-20) के लिए की गई है।

बिहार में कृषि उत्पादन और उत्पादकता की प्रवृति- विगत कुछ वर्षो में बिहार में खाद्यान्न एवं नकदी फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता में काफी सुधार हुआ है। उपजाऊ मृदा अनुकूल जलवायु, वृहद जल संसाधन, प्राद्यौगिकी सुधार, इनपुट संबंधी सहयोग और यांत्रीकरण के कारण दोनों प्रकार की फसलों की उत्पादकता बढ़ी है। बिहार में वर्ष 2015-16 में खाद्यान्न का कुल उत्पादन 145.08 लाख टन था जो 1.14 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़कर वर्ष 2019-20 में 163.80 लाख टन हो गया। वहीं अनाज उत्पादन वर्ष 2015-16 में 140.87 लाख टन से 1.29 प्रतिशत प्रतिवर्ष दर से बढ़ते हुए वर्ष 2019-20 में 160.45 लाख टन हो गया। अनाज के उत्पादन में इस वृद्धि का मुख्य कारण अनाजो की बढ़ती उत्पादकता है। अनाज उत्पादकता 2.04 प्रतिशत की दर से बढ़कर 2015-16 के 2320 किग्रा/हे. से 2019-20 में 2703 किग्रा. प्रति/हे. हो गया है। मोटे अनाजों के उत्पादन में बढ़ोतरी 4.73 प्रतिशत के वार्षिक वृद्धि दर से 2015-16 से 2019-20 की मध्यावधि में हुई। तिलहनों के उत्पादन में कमी आई है। वर्ष 2015-16 में तिलहनों का उत्पादन 1.27 लाख टन था जो 2019-20 में घटकर 1.25 लाख टन रह गया। तिलहनों की उत्पादकता में वृद्धि 1.52 प्रतिशत की वार्षिक दर से हुई तथा यह उत्पादकता

2015–16 के 1059 किग्रा./हे. से बढ़कर 2019–20 में 1099 किग्रा0/ हे. हो गई।

बिहार में मुख्य फसलों का उत्पादन स्तर

(2015-16 से 2019.20) हजार टन में

फसलें	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20	वार्षिक चक्रवृद्धि दर (:)
कुल खाद्यान	14508.03	18560.78	17802.78	16311.54	16379.88	1.14
कुल अनाज	14087.25	18099.11	17348.61	15858.11	16045.46	1.29
कुल चावल	6802.22	8238.77	8093.16	6155.53	6952.52	-2.45
बोड़ों चावल	725.21	949.37	903.29	615.67	727.61	-4.18
अगहनी चावल	5876.03	7065.07	7046.04	5403.58	6096.10	-1.93
गरमा चावल	200.98	224.33	143.83	136.28	128.81	-12.96
गेहूँ	4736.45	5985.84	6104.3	6465.91	5579.35	4.13
कुल मक्का	2517.1	3845.7	3120.77	3193.91	3495.40	4.82
खरीफ मक्का	692.7	624.3	535.88	464.14	434.88	-11.55
रबी मक्का	1105.14	2131.51	1645.56	2098.44	2279.17	15.40
गरमा मक्का	719.26	1089.89	939.34	631.33	781.35	-3.73
कुल मोटे अनाज	2548.58	3874.5	3151.15	3236.68	3513.60	4.73
जौ	13.9	16.26	16.47	28.39	10.20	-0.63
ज्वार	1.71	1.91	1.45	0.76	0.67	-24.32
बाजरा	4.64	4.05	4.97	3.532	3.57	-6.33
रागी	9.89	3.46	4.18	3.09	2.19	-26.84
कोदो-सावां	1.34	3.1	3.31	6.99	1.55	11.62
कुल दलहन	420.78	461.67	454.17	453.43	334.42	-4.66
कुल खरीफ दलहन	28.98	29.3	22.01	23.22	19.72	-9.54
ऊड़द	12.05	11.49	7.06	7.31	6.29	-16.08
भदई मूंग	8.34	8.33	5.53	5.32	4.64	-14.98
कुल्थी	7.21	7.63	7.98	8.97	7.46	2.32
घघरा	0.49	0.43	0.43	0.38	0.35	-7.82
अन्य खरीफ दलहन	0.89	1.43	1.02	1.25	0.99	0-85
कुल रबी दलहन	391.8	332.69	432.17	430.21	314.69	-1.80
अरहर (तूअर)	37.13	33.17	28.63	31.68	28.16	-5.82
चना	58.55	66.5	67.18	67.69	38.53	-7.87
मसूर	140.44	146.88	147.49	148.03	90.16	-8.41
मटर	17.94	16.74	16.94	17.15	18.06	0.37
खेसारी	50.99	55.18	50.31	51.38	33.29	-8.83
गरमा मूंग	86.02	111.55	120.19	113.16	105.41	4.30
अन्य रबी दलहन	0.73	2.35	1.43	1.12	1.10	0.72
कुल तिलहन	126.52	125.86	124.24	124.94	124.73	-0.36
अंडी	0.04	0.07	0.02	0.08	0.08	17.56
कुसुम	0.09	0.09	0.08	0.07	0.07	-7.53
तिल	2.39	1.78	1.38	1.41	1.14	-15.78
सूर्यमुखी	16.2	14.69	13.38	10.36	11.49	-9.85
सरसो-राई	94.39	97.68	98.49	103.95	89.35	-0.48
तीसी	12.91	10.56	10.31	8.2	6.97	-13.80
मुंगफली	0.5	0.99	0.58	0.87	0.86	9.97
कुल रेशेदार फसलें	1630	1571	1280	1085	802	-16.38

स्रोत-आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, बिहार सरकार

टिप्पणी - (क) वार्षिक चक्रवृद्धि दर (प्रतिशत) की गणना 5 वर्षो (2015–16 से 2019–20) के लिए की गई है।

(ख) जूट और मेसता की मात्राएं हजार गट्ठरों में लिखी गई है।

अनुकूल कृषि जलवायु स्थितियों को देखते हुए बिहार के कृषि क्षेत्र उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने और फसल विविधिकरण के माध्यम से आय में बढ़ोतरी की संभावना मौजूद है। हालांकि विगत पाँच वर्षो के प्रवृति से मुख्य फसलों के उत्पादन एवं उत्पादकता के मुल्यांकन से उत्पादन में स्थिरता लाने की जरूरत का संकेत मिलता है यह वद्धिमान जनसंख्या विशेषकर कमजोर तबकों के खाद्य और पोषण संबंधी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बिहार में कृषि विकास की संभावनाएँ- बिहार की स्थलाकृति मुख्यत: मैदानी है जो कि गंगा एवं उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ़ मृदा के निक्षेपण से बनी है। यहाँ समान्य मानसून वर्ष के दौरान औसतन 1027.6 मी.मी. वर्षा प्रतिवर्ष होती है। हिमालय से निकलने वाली सदानिरा नदियाँ वर्ष भर अपने जल से सिंचाई सुविधा प्रदान करती है। प्रतिवर्ष बाढ़ के दौरान उपजाऊ खादर मृदा का निक्षेपण बिहार के बाढ़ मैदान में होता है। उपर्युक्त कारणों से बिहार में प्रतिहेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि हुई है। एक अध्ययन के अनुसार बिहार में हर महीने प्रति हेक्टेयर 4236 रूपये की कमाई होती है जबकि पंजाब में ये कमाई प्रति महीने 3448 रूपये है। इसकी मुख्य वजह बिहार में पंजाब की तुलना में खेती में विविधता अधिक है। पंजाब में सिर्फ 11 प्रतिशत कृषि भूमि पर फल व सब्जियों की खेती होती है जबकि बिहार के कुल कृषि भूमि के 35 प्रतिशत पर फल व सब्जी की खेती होती है।

सरकार के प्रयास -

1. **सात निश्चय 2 के तहत हर खेत को पानी-** इसके तहत लघु जल संसाधन विभाग, कृषि विभाग, ऊर्जा विभाग और पंचायती राज विभाग के अधिकारियों की कुल 534 प्रभागीय संयुक्त तकनीकी सर्वेक्षण टीमें बनाई गई है जिनमें जल संसाधन मंत्रालय नोडल अभिकरण की तरह है।
2. **संयुक्त तकनीकी सर्वेक्षण-** 'हर खेत को पानी' कार्यक्रम के तहत सिंचाई प्रणालियों के विकास के लिहाज से असिंचित क्षेत्रों और संभावित जल निकायों तथा सिंचाई योजनाओं की पहचान के लिए जल संसाधन, लघु जल संसाधन, ऊर्जा, कृषि और पंचायती राज विभागों द्वारा संयुक्त रूप से तकनीकी सर्वेक्षण कार्य जारी है।
3. **जलवायु अनुकूल कृषि कार्यक्रम-** बिहार सरकार ने 2019-20 में राज्य के आठ जिलों यथा- नांलदा, नवादा, गया, भागलपुर, बाँका, मुंगेर, खगड़िया और मधुबनी में जलवायु अनुकूल कृषि की एक पायलट योजना शुरू की है
4. **बिहार राज्य बीज निगम लिमिटेड-** निगम का मुख्य कार्य बीज उत्पादन,बीज प्रसंस्करण, और बीज वितरण के लिए प्रोत्साहित करना है जिसके लिए उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन के शीर्ष अधिकारी जबाबदेह होते है अभि निगम के छ: केन्द्रो में बीज प्रसंस्करण का काम होता है जिनकी संयुक्त क्षमता 5.30 लाख क्विंटल प्रति वर्ष है।
5. **बिहार कृषि प्रबंधन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान (बामेती) -** बामेती राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थान है, जो राज्य में कृषि प्रसार सेवाओं मे नई प्रौद्योगिकी को

शामिल करने में निर्णायक भूमिका निभाती है।

6. **कृषि फसल उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए कृषि रोड मैप** III- 2017-22 के अन्तर्गत कृषि फसल उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है। इस संदर्भ में बिहार सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र के विकास हेतु 1,54,636.69 करोड़ रूपये खर्च का प्रावधान है।

निष्कर्ष- बिहार में कृषिगत उत्पादन एवं उत्पादकता में निरंतर वृद्धि तो देखी जा रही है परन्तु कृषकों की आय में न्यून इजाफा हो रहा है। बिहार के किसानों के उसकी उपज का न्यूनतम समर्थन मुल्य पर खरीदी नहीं हो पा रही है। अत: खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को प्राप्त करते हुए किसानों की दोगुनी आय के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है। बिहार में कृषि उपज के बेहतर भंडारण, सप्लाई चेन, मैनेजमेंट, मजबूत आपूर्ति, श्रृंखला, मजबूत कृषिगत आधारभूत ढ़ाचा, विपणन के द्वारा कृषकों को उसकी उपज का लाभकारी मुल्य मिलेगा, परिणाम स्वरूप कृषि में निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार बिहार में कृषि का सतत् एवं समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. बिहार आर्थिक सर्वेक्षण - 2021-21
2. कृषि भूगोल- प्रमिला कुमार
3. कृषि भूगोल - माजिद हुसैन
4. भारत का भूगोल - चतुर्भुज मेमोरिया

UGC Journal No. (Old) 2138,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 4.875, ISSN 0975-4083
Vol.- 20, Hindi Edition, Year-10, March 2021

बौद्ध धर्म में प्रतिमांकन

• बृजेश स्वरूप कटियार

सारांश- बौद्ध धर्म दर्शन का योगदान भी कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय रहा है। बौद्ध धर्म से अन्य धर्म भी प्रभावित हुए। इस प्रभाव के परिणाम स्वरूप हिन्दू धर्म में सत्य, अहिंसा, पवित्रता व सदाचार की बढ़ोत्तरी हुई जिससे आगे चलकर भक्ति के मार्ग का पथ प्रशस्त हुआ व अन्य धर्मों से भी मूर्ति पूजा का अत्यधिक विकास बौद्ध धर्म की ही देन है। निःसन्देह धर्म व दर्शन के क्षेत्र में बौद्धों का योग महत्वपूर्ण रहा है। भारत की राजनीतिक एकता में बौद्ध धर्म का योगदान महत्वपूर्ण है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत के सांस्कृतिक महत्व को बढ़ाने का श्रेय भी बहुत कुछ बौद्ध धर्म को ही है। बुद्ध व बोधिसत्व की पूजा व भक्ति की भावना के विकास से महायान बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का प्रादुर्भाव हुआ, इससे सर्वसाधारण को बौद्ध धर्म ने आकृष्ट किया जिससे लोकप्रियता में वृद्धि हुयी और भारतीय कला को प्रचुर प्रोत्साहन के फलस्वरूप भारतीय मूर्तिकला में नई शैलियों का जन्म हुआ।

मुख्य शब्द- धर्म, दर्शन, कला, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सदाचार

छठीं शताब्दी ई. पूर्व भारीतीय इतिहास में एक व्यापक धार्मिक व आध्यात्मिक क्रान्ति का युग था। इस शताब्दी में प्राचीन संसार के अन्य देशों जैसे- चीन, यूनान, फारस आदि में भी सुधार की लहरें दिखाई देती हैं। बौद्ध धर्म भी इसी प्रकार के वैदिक व अवैदिक विचारों के बीच हुए संघर्श और उससे उत्पन्न समन्वय का परिणाम है। बौद्धों के धर्म ग्रन्थ त्रिपिटक अपने वर्तमान रूप से सम्भवत: पहली शताब्दी ई. पूर्व में सिंघल में लिखे गये। महात्मा बुद्ध ने कहा है - 'कर्म ही जीवों का अपना है, कर्म ही उनकी विरासत है, कर्म ही उनका बंधु व कर्म ही उनका सहारा है।' भारत व भारत के बाहर बौद्ध धर्म के प्रचार के फलस्वरूप उसका बाह्य विकास हो रहा था, जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध साहित्य और सिद्धान्तों में पर्याप्त सम्बर्धन और परिवर्धन हुआ। बौद्ध धर्म के कारण भारतीय संस्कृति की श्री सम्पन्नता में काफी अभिवृद्धि हुई। बौद्ध धर्म की सबसे प्रमुख देन कला के क्षेत्र में है। यद्यपि भारतीय कला की परम्परा काफी प्राचीन है तथापि हमें सिन्धु घाटी की कला को छोड़कर भारत में कला के जो नमूने प्राप्त होते हैं उसमें अधिकांशत: बौद्ध कला के ही हैं। मूर्तिकला व शिल्पकलाओं का उद्भव ही सम्भवत: बौद्ध धर्म के प्रभाव के द्वारा ही हुआ।

एक लम्बे अरसे तक पुरातत्ववेत्ताओं का यह विश्वास रहा है कि बौद्ध प्रतिमा का उद्भव यूनानी रामी स्त्रोत से हुआ है। भारतीय मूर्तिकार में इतनी सजग कल्पना शक्ति न थी कि वह बुद्ध का निरूपण कर सके और कुछ इसका कारण यह भी था कि वह बुद्ध की आरम्भिक मूर्तियों में परिधान की समान्तर सलवटों का, जटाओं का और बिना संधि सीधी नाक का जो रूप था वह ठेठ यूनानी रोमी ढंग का था। बुद्ध मूर्ति के जल का या बुद्ध मूर्ति के सर्वप्रथम निर्माण का प्रश्न भारतीय धर्म और भारतीय कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखता है। बुद्ध की मूर्ति के निर्माण से पहले के भारत में धर्म और दर्शन के साथ-साथ भक्ति आन्दोलन एवं कला सृजन की दीर्घकालीन परम्परा थी, बुद्ध मूर्ति का जन्म गान्धार में हुआ या मथुरा में इस विषय पर मतभेद है। सामान्यत: मूर्ति निर्माण की भूमिका के रूप में धार्मिक मांग या इच्छा होती है।

• विभागाध्यक्ष, इंस्टीट्यूट ऑफ फाईन आर्ट्स, सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय, कानपुर

मूर्ति की कल्पना धार्मिक भावना की तुष्टि के लिए होती है।' प्रथम शताब्दी ई. पूर्व में भगवत धर्म का भक्ति आन्दोलन मथुरा में वेग से था, जिसमें भगवान वासुदेव और शंकर की पूजा मुख्य थी, यह बात प्र.श. महाक्षत्रप शोडास के कई लेखों से प्राप्त होती है, उस भक्ति धर्म आन्दोलन से बौद्ध भी प्रभावित थे, भक्ति आन्दोलन के फलस्वरूप जब चारों ओर मूर्ति पूजा मूर्ति निर्माण हो रहा था तो बौद्ध धर्म निरपेक्ष कैसे रह सकता था। इसकी कारण बौद्ध मूर्ति का निर्माण हुआ। 'गान्धार व मथुरा से प्राप्त बहुसंख्यक बुद्ध की मूर्तियों में एक भी कनिष्क से पूर्व काल की नहीं है।

बौद्ध कलाकारों ने जिन कलाकृतियों का निर्माण किया उसका सन्दर्भ व सौष्ठव साधारण नहीं है। छठवीं शताब्दी तक भारत की सबसे उत्तम कला बौद्ध कला हो रही है। चीन व जापान में बौद्ध धर्म के प्रवेश के कारण ही यहाँ की कला में बौद्ध का प्रभाव है तथा लंका, वर्मा तथा स्याम की कलाओं पर भी बौद्ध कला का प्रभाव दिखाई पड़ता है। बोरबोदूर का स्तूप भी बौद्ध है उसी प्रकार तिव्वत व नेपाल की धार्मिक कला भी पूर्णतया बौद्ध कला है। केवल कला ही नहीं साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण देन है। बुद्ध चरित नामक महाकाव्य तथा सारिपुत्र प्रकरण नामक नाटक पर भी बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है ।

मंजुश्री मूलकल्प तथा दिव्यावदान नामक ग्रंथ बौद्ध ग्रंथ ही हैं। बौद्ध साहित्यकारों ने संस्कृत भाषा में भी ग्रंथों का प्रणयन किया। बौद्धों के सम्पूर्ण साहित्य को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह प्रचुर व विशाल है। बौद्ध धर्म के उदय के फलस्वरूप भारत में एक नवीन दार्शनिक साहित्य का सृजन हुआ। जिनमें प्रतीत्य, समुत्पाद, शूयवाद, योगाचार, विज्ञानवाद, सौत्रान्तिक आदि कितनी ही दार्शनिक विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध सम्प्रदायों में मूर्ति के प्रभाव को स्वीकार कर लेना इस बात का द्योतक है कि ये अनार्य विचारधारा से प्रभावित थे। कुषाण वंश के सिक्कों पर यूनानी, ईरानी व हिन्दू देवताओं के चित्र प्राप्त होते हैं। कनिष्क काल में बुद्ध की मूर्तियाँ बनवायी गईं। जब से बौद्ध धर्म भारत की सीमा पार करके दूसरे देशों में गया तभी से उनके प्राचीन रूप में परिवर्तन होने लगा और उसमें भिन्न- भिन्न धर्मों के तत्व आ मिले। महायान पंथ के ऊपर विदेशी प्रभाव की अपेक्षा भागवत धर्म का प्रभाव अधिक स्पष्टतया परिलक्षित होता है। महायान में बुद्ध को परमात्मा समझा जाने लगा व लोग उनकी मूर्ति बनाकर पूजा करने लगे। डॉ. राय चौधरी के अनुसार कनिष्क के वंश ने भारतीय सभ्यता के लिए मध्य व पूर्वी एशिया का द्वार खोल दिया। इस समय विदेशों में विशेष तथा मध्य व पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म के साथ भारतीय संस्कृति का प्रचार होने लगा ज्यों – ज्यों बौद्ध उपासकों के हृदय में भक्ति भावना का संचार होता गया वे बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण करने लगे।

गान्धार कला से तात्पर्य मूर्तिकला की एक विशिष्ट शैली से है। इस कला के प्रमुख केन्द्र जलालाबाद, हपद्ध व वमिआ, स्वात घाटी एवं पेशाबर हैं। इनका विषय भारतीय है किन्तु उन पर यूनानी शैली की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। गांधार शैली की मूर्तियाँ कावुल खुतन तक उपलब्ध होती हैं इसके शिल्पकार ग्रीक थे। गांधार प्रदेश पर भारतीय, चीनी, ईरानी, यूनानी व रोमन संस्कृतियों का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। बाद में यह शैली मथुरा होती हुयी आंध्र तथा अमरावती तक पहुंची और इधर पाटलिपुत्र तक पहुँच गई' इस शैली की मूर्तियाँ बहुत सुन्दर व परिमार्जित हैं। इस शैली की मूर्तियाँ हिन्दूकुश मध्य एशिया से मथुरा तक मिली हैं। बुद्ध की मूर्ति का निर्माण कौशल भी इस कला की महान देन है। अशोक बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने पर ही चण्डाशोक से धर्माशोक बन गया था। अशोक ने 84 हजार स्तूपों

का निर्माण कराया, इस प्रकार बौद्ध वस्तुओं का निर्माण कराकर उसने बौद्ध धर्म का काफी प्रचार व प्रसार कराया।

मथुरा कला का सर्वाधिक विकास कनिष्क के समय ही हुआ। गुप्तकाल में भी इस कला में मूर्तियों का निर्माण होता रहा। मथुरा से प्राप्त कटख बुद्ध की मूर्ति प्राचीनतम तथा सुन्दर है। मथुरा कला पर कुषाण तथा गुप्त दोनों युगों का प्रभाव देखने को मिलता है। मथुरा की महाकाय बोधिसत्व मूर्तियों का विकास परखम यक्ष जैसी मूर्ति से हुआ। इस प्रकार भारतीय बुद्ध मूर्तियों पर मौर्य शुङ्ग मूर्तिकला का भी काफी गहरा प्रभाव है।

डॉ. अग्रवाल के अनुसार 'अनेक भारतीय परम्पराओं की समष्टि और चुनाव से खड़ी और बैठी हुयी बोधिसत्व मूर्तियों का आदिम निर्माण मथुरा से हुआ' लोरियान तंगाई से प्राप्त वेजोड़ मूर्ति कलकत्ता म्यूजियम में सुरक्षित है।

बर्लिन संग्रहालय में ध्यानमग्न बुद्ध की अत्यन्त शान्त मूर्ति है। लाहौर संग्रहालय में सुरक्षित बोधिसत्व की खड़ी मूर्ति है। इसी प्रकार इन्द्र शैल गुफा में समाधिया बुद्ध मूर्ति है। प्राचीन युग की यक्ष प्रतिमाओं तथा सांची व भरहुत की कला का प्रभाव मथुरा से प्राप्त मूर्तियों में स्पष्ट दिखायी पड़ता है। मथुरा शैली की थोड़ी सी ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिन पर गांधार कला की छाप व प्रभाव दिखाई पड़ता है।

कुशीनगर के शालवन तथा मुकुटबंधन चौत्य से कई बुद्ध मूर्तियां तथा अन्य अवशेष प्राप्त हुये जिस पर मथुरा का प्रभाव है। परिनिर्माण मन्दिर के भीतर बुद्ध की 20 फुट लम्बी लेटी हुयी प्रतिमा अप्रतिम कही जाती है। अनेक बौद्ध मूर्तियाँ प्रयाग संग्रहालय में हैं। हाल ही में दो वुद्ध की सुन्दर मूर्तियाँ अहिच्छत्रा से प्राप्त हुई हैं, जिन पर मथुरा शैली का प्रभाव है।

राय कृष्ण दास के अनुसार मोहन जोदड़ो की भूमि – स्पर्श मुद्रा में पद्मासन लगाए एक साधक की मूर्ति है जो बुद्ध की मूर्ति का निर्विवाद पूर्वरूप है। जिस पर आदिकाल की कला का प्रभाव है। शुंगकाल की प्रचुर मूर्तियाँ भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक मिलती हैं। सारनाथ की महाकाय बोधिसत्व की स्थापना कनिष्क के राज्यकाल के तीसरे वर्ष में हुई। उत्तर प्रदेश का दूसरा बड़ा केन्द्र जी मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है वह है। सारनाथ की बुद्ध मूर्ति जो पद्मासन बांधकर बैठे हुए भगवान बुद्ध की है। जिस पर गान्धार का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बिहार प्रान्त के भागलपुर जिले में सुल्तानगंज से एक ताम्र की बुद्ध मूर्ति प्राप्त हुई है जो अब इंग्लैण्ड में वरमिंघम के म्यूजियम में रखी है। इसी तरह बुद्ध की बहुत सी घटनाएं भी मूर्तियों द्वारा प्रदर्शित की गयीं। पत्थर को तराश कर जीवित रूप देने की कला में गुप्त काल के शिल्पी कुशल दक्ष थे। बौद्ध धर्म में इस समय अनेक देवताओं व बोधिसत्वों का पूजन प्रारम्भ हो गया और उसके सम्बन्ध में बहुत सी गाथाएँ बन गयी थीं। इन गाथाओं की अनेक घटनाओं को भी मूर्तियों द्वारा अंकित किया गया और वहुत सी छोटी–बड़ी मूर्तियां बनाई गई अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, मन्जुश्री आदि अनेक मूर्तियाँ इस समय में बनी।

डॉ. अग्रवाल के मत के अनुसार योगी के आदर्श रूप एवं परम्परा भारत में प्रचलित थी गान्धार में नहीं। अतः भारतीय परम्परा के अनुरूप प्रेरित होकर बुद्ध मूर्ति को मथुरा में जन्म दिया गया।

मनुष्य रूप में बुद्ध के प्रथम अंकन की मूर्ति का साक्ष्य अमरावती से प्राप्त होता है। जिस पर गान्धार शैली का प्रभाव है। मथुरा बामिया घाटी को काटकर दो बावन गजी बुद्ध मूर्तियाँ निर्मित हैं। बोधिसत्व हारीती की कुछ मूर्तियाँ चतुर्भुज भी है। डॉ. अग्रवाल ने हुविष्क तथा रामा की मूर्तियों को सर्वोत्कृष्ट माना है। गान्धार में गचकारी के मस्तक और बुद्ध व बोधिसत्व

मूर्तियां बहुत प्रसिद्ध है, मथुरा शैली की बुद्ध मूर्तियों में प्राचीनतम 'कटरा' बुद्ध की मूर्ति है।

गान्धार – शैली में जातक कथाओं व बुद्ध के जीवन सम्बन्धी कथाओं पर मूर्तियाँ बनायी गयीं। बौद्ध धर्म का प्रचार तूलिका की साधना के आधार पर ही हुआ, लेख व लेखनी का महत्व तो बाद में आया। जैसे–जैसे लोगों की बौद्ध धर्म के प्रति जिज्ञासा बढ़ती गयी वैसे–वैसे बौद्ध श्रवणों ने कला को धर्म प्रचार हेतु अपनाया। उन्होंने बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया व चित्रकला को धर्म प्रचार का माध्यम बनाया। 7वीं शताब्दी तक कलाकारों, पुजारियों के अनेक दल भारत से चीन पहुँचे जिससे सम्पूर्ण मध्य एशिया में बौद्ध धर्म कला का विस्तार हुआ। जापान की कला पर भी बौद्ध भावना का भव्य रूप उमड़ पड़ा। इस प्रकार का प्रभाव अजन्ता तथा बाघ के भित्ति चित्रों पर विद्यमान है। भारत का दूसरे देशों से सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि भारत की चित्रकला, जिसका विकास प्रथम शताब्दी ई. पूर्व का प्रभाव सुदूर पूर्वी तथा उत्तरी देशों पर पड़ रहा था। श्रीलंका की सिगिरिया गुफा पर भी बौद्ध कला शैली का परिपक्व रूप दिखाई पड़ता है। अजन्ता की चित्रावली को बुद्ध के प्रति समर्पण मानना उपयुक्त होगा।

बौद्ध धर्म दर्शन का योगदान भी कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय रहा है। बौद्ध धर्म से अन्य धर्म भी प्रभावित हुए। इस प्रभाव के परिणाम स्वरूप हिन्दू धर्म में सत्य, अहिंसा, पवित्रता व सदाचार की बढ़ोत्तरी हुई जिससे आगे चलकर भक्ति के मार्ग का पथ प्रशस्त हुआ व अन्य धर्मों से भी मूर्ति पूजा का अत्यधिक विकास बौद्ध धर्म की ही देन है। निःसन्देह धर्म व दर्शन के क्षेत्र में बौद्धों का योग महत्वपूर्ण रहा है।

भारत की राजनीतिक एकता में बौद्ध धर्म का योगदान महत्वपूर्ण है और अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत के सांस्कृतिक महत्व को बढ़ाने का श्रेय भी बहुत कुछ बौद्ध धर्म को ही है। बुद्ध व बोधिसत्व की पूजा व भक्ति की भावना के विकास से महायान बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का प्रादुर्भाव हुआ, इससे सर्वसाधारण को बौद्ध धर्म ने आकृष्ट किया जिससे लोकप्रियता में वृद्धि हुयी और भारतीय कला को प्रचुर प्रोत्साहन के फलस्वरूप भारतीय मूर्तिकला में नई शैलियों का जन्म हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. दिनकर कौशिक, काल व कला : राज कमल प्रकाशक प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
2. डॉ. श्याम शर्मा, प्राचीन भारतीय कला : वास्तुकला, मूर्तिकला, दिल्ली
3. सत्यकेतु, विद्यालंकार, प्राचीन भारत
4. शिव कुमार गुप्त, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
5. रतिभानु सिंह नाहर, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, किताब महल, इलाहाबाद
6. आर. शरण, प्राचीन भारतीय इतिहास : संस्कृति एवं पुरातत्व, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली
7. मानिक लाल गुप्त, भारतीय इतिहास, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स दिल्ली
8. अविनाश बहादुर वर्मा, भारतीय चित्रकला का इतिहास, (बरेली) प्रकाशन बुक 8 डिपो
9. नलिनाक्ष दत्त, उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ

Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered Under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

ISSN 0973-3914

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications,Rewa - 486001 (M.P.) and Printed at Lineage Offset Rewa - 486001 (M.P.)